TEXT CUT WITHIN THE BOOK ONLY

TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

PAGES MISSING WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180328

UNIVERSAL
LIBRARY

वृद्ध का नाम व्रजनन्दन श्रीवास्तव है। ये एक छोटे से ज़मींदार हैं—सालाना आमदनी बीस बाईस हज़ार रुपये की होगी। जिस गाँव की इस घटना का वर्णन हो रहा है उसका नाम कमलपुर है। यह आज़मगढ़ ज़िले में है। उक्त युवक, व्रजनन्दन का ज्येष्ठ पुत्र है—नाम है गोपीकान्त। यह वृद्ध की पहली स्त्री से उत्पन्न है। पहली स्त्री की मृत्यु होने पर व्रजनन्दन ने ढलती जवानी में फिर दूसरा ब्याह किया। यह स्त्री भी दो वर्ष के एक बालक को छोड़ अकाल में ही संसार से चल बसी। इसी के पुत्र का नाम मोतीलाल है। व्रजनन्दन वैष्णव-संप्रदायी थे। उनकी इच्छा थी कि इस लड़के का नाम नन्दकिशोर किंवा लक्ष्मीनारायण या ऐसा ही कुछ भगवान् के नाम पर रक्खें—किन्तु उनकी दूसरी स्त्री ने घोर आपत्ति करके मोतीलाल ही नाम रख दिया। इसके पूर्व, इस वंश में, विष्णु के नाम के सिवा कभी किसी दूसरे नाम को जगह न मिली थी। किन्तु 'वृद्धस्य तरुणी भार्य्या' ने इस नियम को न माना। वृद्धावस्था की सन्तान जान कर मोतीलाल पर व्रजनन्दन का स्नेह कुछ अधिक था। मोतीलाल की उम्र इस समय अठारह वर्ष की होगी। वह प्रयाग के कालेज में बी० ए० कक्षा में पढ़ रहा है।

भगवान् के नाम पर नामकरण न होने पर भी मोतीलाल ख़ूब निष्ठावान् और स्वधर्मप्रेमी है। नित्यकर्म्म, पूजा-पाठ किये बिना वह कभी जल ग्रहण नहीं करता। इसी उम्र में उसने

गोभी-गाजर खाना तक छोड़ दिया है। पर गोपीकान्त अपने घर में मछली और बन्धु-बान्धवों के घर मांस.मज्जे में ज़ाहिरा तौर से खाता है। जूता पहने ही जल पीता है और मुसलमान खानसामा के हाथ की बनाई चाय पीते भी लोगों ने उसे कई बार देखा है। कभी कभी बनारस या कलकत्ते जाकर साथियों में मिलकर दारू भी पी लेता है। इसी प्रकार की एक और अपकीर्त्ति की भी ख्याति है। एक और गुप्त विषय के सम्बन्ध में लोग जहाँ तहाँ कानाफूसी करते हैं। अभी हमने उसे छिपा रक्खा है—किन्तु ये सब बातें बहुत दिनों तक छिपी नहीं रहतीं। किसी समय नक्क़ारा बज ही जाता है।

दिन के तीसरे पहर एक बैलगाड़ी आकर सदर फाटक पर खड़ी हो गई। गाड़ी से मलिन वेश धारण किये सूखे मुँह मोतीलाल उतरा। भीतर प्रवेश करते ही गोपीकान्त ने आकर कहा—"भाई! तुम आ गये?" मोती ने उसके पैर छूकर सभयकण्ठ से पूछा—पिता जी कैसे हैं?

गोपीकान्त—अभी तक तो हैं। परन्तु मालूम होता है, रात नहीं कटेगी।

मोती खड़ा होकर चुपचाप आँसू बहाने लगा।

गोपीकान्त ने बड़े प्यार से भाई के आँसू पोंछकर कहा—मालूम होता है, तुमने कुछ खाया-पिया नहीं है।

"नही।"

"प्रयाग से कब चले?"

"आठ बजे।"

"कुछ जलपान कर लिया था न?"

"जी हाँ—पूजा-पाठ करके कुछ खा लिया था।"

इतने में वहाँ व्रजनन्दन की विधवा बहन—मोती की फूफू आकर खड़ी हुई। मोती के प्रणाम करने पर फूफू ने उसकी ठुड्डी हाथ से छूकर आशीर्वाद दिया और कहा—अहा, मेरे बेटे का बदन सूखकर आधा रह गया है। बेटा! हाथ-मुँह धोओ, कपड़े बदल डालो। मैं रसोइया से रसोई बनाने को कह आती हूँ। तब तक कुछ जलपान कर लो।

मोती—पहले पिता जी को देख आऊँ।

"बहुत ठीक समय पर आ गये। जो तुम आज न आते, कहीं कल आते, तो इन्हें देख पाते या नहीं, यह भगवान् जाने। अहा, भैया जब होश में आते हैं तभी पूछते हैं, "मोती आया? मेरा मोती आया'?"—यह कह कर फूफी आँचल से आँखें ढाँपकर रोने लगी।

जूता उतार कर, पैरों की आहट बचाकर दोनों भाई पिता की रोग-शय्या के समीप गये। मोती ने देखा, पिता की वह सूरत-शकल अब नहीं है। उनका वह विशाल शरीर सूख कर खटिया में लग गया है। सारे शरीर की हड्डियाँ निकल आई हैं।

मोती ने शय्या के पास जाकर चैतन्यरहित पिता के दोनों पैरों पर अपना सिर रक्खा। दस वर्ष की एक बालिका

हाथ में पंखा ले, वृद्ध के सिरहाने बैठकर हवा कर रही थी। सात वर्ष का एक बालक उनके पैर के तलुए को धीरे धीरे हाथ से रगड़ रहा था। मोती ने लड़के से कहा—तुम उठो, मैं इनके पैर दाबता हूँ।

कुछ देर में मोती की भौजाई उस कोठरी में आई। उसने मोतीलाल से कहा—चलो बाबू, तुम्हारे लिए रसोई बन गई।

मोती—ठहरो, मैं अभी नहीं खाऊँगा।

तब भावज, स्नेह-पूर्वक उसका हाथ पकड़ कर, कुछ ज़ोर के साथ उसे लिवा ले गई।

भोजन आदि के अनन्तर मोती फिर पिता के पास आकर उनकी सेवा करने लगा।

रात के नौ बजे व्रजनन्दन को होश हुआ। उन्हें करवट बदलते और आँखें खोलते देखकर गोपीकान्त ने कहा—पिता जी, मोती आया है।

वृद्ध—मोती, मेरा प्यारा बेटा मोती कहाँ है?

"मैं यहीं तो हूँ" कहकर मोती ने पिता का जीर्ण-शीर्ण हाथ अपने दोनों हाथों के बीच में रख लिया।

वृद्ध—मेरा कण्ठ बहुत सूख गया है। मोती, थोड़ा गङ्गाजल तो दे।

मोती झटपट उठ कर पिता के मुँह में गङ्गाजल देने लगा। जल पीने से वृद्ध को कुछ विशेष चैतन्य हो आया।

दो तीन बार दीर्घ निःश्वास त्याग कर उसने कहा—गोपी !

"हाँ पिता जी, मैं हाज़िर हूँ।"

"नन्दलाल कहाँ है ?"

गोपीकान्त के छोटे लड़के का नाम नन्दलाल था। उम्र उसकी तीन वर्ष की होगी। नन्दलाल को गोद में लिये उसकी माता शय्या के समीप आकर खड़ी हो गई। गोपीकान्त ने कहा—यह नन्दलाल आगया। सोया हुआ है।

व्रजनन्दन ने कहा—और बहू ?

मोती—वे सोये हुए नन्दलाल को गोदी में लिये सामने खड़ी हैं।

"शारदा कहाँ है ? उसका बेटा कहाँ है ?"

"भैया, मैं तो आपके पास ही बैठी हूँ। अपने भानजे विनोद के लिए क्या किये जाते हो ?"—कह कर बहन रोने लगी।

वृद्ध ने कहा—रोओ मत। सोच किस बात का है ? गोपी है, मोती है—वे ही तुम्हारे बेटे को सँभालेंगे।

कुछ देर चुप रह कर वृद्ध ने फिर गङ्गाजल माँगा।

जल पीकर कहा—तुम सभी मौजूद हो ?

गोपीकान्त—हाँ, पिता जी, हम सभी यहाँ मौजूद हैं।

तब वृद्ध धीरे धीरे एक एक बात अलग अलग उच्चारण करके कहने लगा—

"देखो, मेरे दिन पूरे हो गये। अब इस दुनिया से कूच करने में देर नहीं है। क्या तुम सभी लोग मिलकर मुझे भगवान् का नाम सुना सकोगे ? राधाकृष्ण—हरे कृष्ण—हरे मुरारे !"

सब रोने लगे। मोती ने कहा—हाँ पिता जी, मैं सुना सकूँगा।

व्रजनन्दन ने कहा—"अच्छा, पहले एक बात सुन लो। भगवान् का नाम सुनाने के पहले एक सांसारिक कार्य कर लें। इसके बाद तुम लोगों के मुँह से भगवान् का मधुर नाम सुनते सुनते, हँसते-बोलते रथ पर चढ़ कर वैकुण्ठ-लोक को चला जाऊँगा। गोपीकान्त, मोतीलाल—दोनों मेरे पास आओ। बेटा गोपी, तुमको मैंने पाल-पोस कर होशियार किया। ब्याह-शादी कर दी। ईश्वर की कृपा से तुम्हारे बाल-बच्चे भी हैं। किन्तु मोती अभी नाबालिग़ है। उसकी माँ भी स्वर्ग को चली गई। इसका कुछ ठीक ठाक मैं नहीं कर सका। बेटा मोतीलाल, मेरे परोक्ष में तुम्हारा बड़ा भाई ही तुम्हारा बाप और तुम्हारी भावज ही तुम्हारी माँ के स्थानापन्न होगी। मुझे जितना चाहते हो, जैसा कुछ मेरा भक्तिभाव करते हो वैसा ही अपने बड़े भाई का भी करना। मैं और भी एक विषय में सावधान किये देता हूँ। कलिकाल में भाई भाई में मेल नहीं होता। देखो, इस बात का ख़ूब स्मरण रखना जिसमें तुम दोनों भाइयों में कभी खटपट न हो। मैं जितनी सम्पत्ति छोड़े जाता

हूँ उसका अपव्यय न किया जाय तो उसके द्वारा तुम लोगों का समय सुख से कटेगा। दोनों भाई मिल कर एक जगह रहना, और एक साथ खाना पीना। किसी की बात में पड़ कर भाई से अलग न होना, स्त्रियों की बातों में न लगना। स्त्रियाँ घर बिगाड़नेवाली होती हैं। कितने ही घरों में देखा है कि भाई भाई में ख़ूब प्रेम है, किन्तु उनकी स्त्रियों ने बीच में पड़ कर उस भ्रातृप्रेम को नष्ट कर दिया। जुदा न होना। जो कुछ धन-सम्पत्ति है, उसमें हिस्सा-बाँट न करना। बाँटते बाँटते तो पहाड़ भी बिला जा सकता है। धर्म-पथ पर आरूढ़ रहना। प्राण से भी बढ़कर धर्म की रक्षा में तत्पर रहना, इससे तुम्हारे ऊपर भगवान् की कृपा रहेगी। जो मुझे कहना था, वह कह चुका। अब तुम लोग मुझे मीठा हरिनाम सुनाओ,—" कह कर बूढ़ा चुप हो रहा। कुछ देर के बाद मोतीलाल ने यों कहना आरम्भ किया—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
हरे मुरारे मधुकैटभारे गोविन्द गोपाल मुकुन्द सौरे!
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥

वृद्ध ने कहा—बेटा! संस्कृत में नहीं, हिन्दी में भगवान् का भजन गाकर सुनाओ। वही गीत—

"भजो रे मन राधे सुन्दर श्याम।"

तब पहले मोती पीछे गोपीकान्त, दोनों भाई, सुर में सुर मिला कर गाने लगे—

भजो रे मन राधे सुन्दर श्याम ।
यही नाम सर्वस्व हमारे सुखद सदा अभिराम ।
पाप-विनाशी पुण्य-प्रकाशी सकल मोद के धाम ॥

इस प्रकार भगवान् का नाम सुनते सुनते गहरी रात में वृद्ध के देह-पिञ्जर से प्राण-पखेरू उड़ गया ।

दूसरा परिच्छेद

पूर्वोक्त घटना को पाँच वर्ष हो गये। इतने में मोतीलाल ने कालेज की पढ़ाई समाप्त करके एम० ए०, एल-एल० बी० की उपाधि प्राप्त कर ली। भाई के अनुरोध से वकालत करने के लिए वह आज़मगढ़ में एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहा भी—किन्तु मुवक्किलों के न जुटने और वह पेशा पसन्द न होने के कारण घर लौट आया है। शास्त्रचर्चा और पूजा-पाठ में ही उसका अधिक समय कट जाता है।

इस बीच में गोपीकान्त ने भाई का विवाह कर देने की कई बार चेष्टा की। किन्तु मोती राज़ी ही न होता था। उसके दो कारण थे; प्रथम तो गृहस्थ-धर्म में अनिच्छा, दूसरे भाई से अलग होने की आशङ्का। मोती सोचता था कि मरते समय पिता जी आज्ञा दे गये हैं कि स्त्री की बात में पड़ कर भाई के साथ प्रेम-भङ्ग न करना। इसलिए उसने यही निश्चय कर रक्खा था कि ब्याह न करना ही अच्छा है। वह मन में कहता था, अभी तो यही ख़याल है कि भाई के विरुद्ध स्त्री हज़ार कहती रहे, पर उस बात को मैं कभी मानूँगा ही नहीं, किन्तु कार्य के समय, स्त्री के प्रेमपाश में फँस कर या जवानी के गर्व से मदान्ध होकर जो न करना चाहिए वही कर बैठूँगा। तब मेरी गति-मति

ऐसी ही बनी रहेगी, इसका क्या निश्चय है ? इन सब बखेड़ों के कारण उस मार्ग में न जाना ही अच्छा है।

मोतीलाल विवाह से स्वयं विमुख है, किन्तु गाँव के लोग—विशेष कर अड़ोस-पड़ोस की बूढ़ी स्त्रियाँ—कहा करती हैं, गोपीकान्त बाबू हृदय से नहीं चाहते कि उनके भाई का ब्याह हो। आख़िर हैं तो सौतेले ही भाई। वे क्यों ऐसा चाहेंगे ? सगा भाई होता तो क्या ऐसा होने पाता ! उसका ब्याह कभी का हो गया होता। लड़के को जहाँ तक लिखना-पढ़ना या पास करना चाहिए था, सब कर चुका है। जैसा गुण है वैसा ही सुन्दर रूप है। पूरी जवानी पर आगया है। अहा ! ऐसे सोने के चाँद को कुँवारा देखकर किसका जी नहीं दुखेगा ? कौन ऐसी मौसी, फूफी, चाची या और कोई अपनी होगी जिसकी छाती नहीं फटेगी ? हाय ! यदि आज वह बूढ़ा बाबू (व्रजनन्दन) जीता रहता तो—इत्यादि।

गाँव में कोई संकेत-लेखक न रहने पर भी उपर्युक्त सब बातें गोपीकान्त बाबू की स्त्री के कान तक पहुँच जाती थीं। इससे अधीर होकर वह अपने स्वामी को, देवर का झटपट ब्याह कर देने के लिए, दिक़ करने लगी। इस दफ़े गोपीकान्त इलाहाबाद में भाई के लिए एक वैवाहिक सम्बन्ध की बात स्थिर कर रहा है। लड़की का बाप बड़ा धनवान् है। उससे ख़ूब नक़द रुपया मिलने की आशा है। बड़े बड़े महाजनों के साथ उसका कारोबार है। बहुतेरे वकील बाबुओं से उसका सम्बन्ध है। विवाह

हो जाने पर वह जमाई को प्रयाग ले जायगा और हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने की विशेष रूप से सुविधा करा दे सकेगा। गोपीकान्त चाहता भी न था कि भाई निकम्मे की भाँति घर पर बैठा रहे। इससे उसकी कुछ हानि भी है। भाई इलाहाबाद में जाकर वकालत करे, तभी वह सुखी होगा। किन्तु कन्यावाले की एक बड़ी कड़ी शर्त है। वर ख़ूब सुन्दर होना चाहिए। इसके लिए जितना रुपया लगे, वे ख़र्च करने को तैयार हैं। आज ही वे लोग वर देखने आवेंगे। यदि उन्हें लड़का पसन्द आगया तो जैसे हो सकेगा वैसे गोपीकान्त अपने भाई को ब्याह करने के लिए राज़ी करेगा।

कुँवार का महीना है। आकाश और धरती में सूर्य की विमल किरणें खेल रही हैं। अन्दर महल के बाग़ में, तालाब के किनारे, एक पेड़ के नीचे कुशासन पर मोतीलाल बैठा है और बढ़िया चश्मा लगाये योगवाशिष्ठ ग्रन्थ को मन लगाकर पढ़ रहा है। बग़ल में, कुशासन के ऊपर, काँच की नसदानी रक्खी है। उसकी पीठ पर सुनहले अक्षरों में लिखा है—हरिनाम सत्य। मोती जहाँ बैठा था उसके समीप ही तालाब के पानी में कितने ही कमल खिले थे। उन पर भ्रमर गूँज रहे थे। जल में हंस तैर रहे थे। किन्तु इन रमणीय दृश्यों पर मोतीलाल की तनिक भी दृष्टि न थी। वह अपने पढ़ने ही में मग्न था।

पूर्व परिच्छेद में हम लोगों ने मोतीलाल को बालक के

रूप में देखा था। अब इन पाँच वर्षों में वह पूर्ण रूप से युवा हो गया है। होंठ के ऊपरी भाग पर मूँछ की श्याम रेखा अपूर्व शोभा दे रही है। हजामत की हुई दाढ़ी का अग्र भाग मानसिक दृढ़ता का परिचय दे रहा है। दोनों आँखें धीरता और गम्भीरता से भरी हुई हैं। संकुचित रेखाओं से समावृत ललाट पर चिन्ता का चिह्न झलक रहा है।

बहुत देर होगई। मोतीलाल के कान में सहसा यह शब्द आ पड़ा—छोटे भैया।

पुस्तक पर से नज़र उठा कर मोतीलाल ने पीछे की ओर घूमकर देखा। एक बारह वर्ष का लड़का कह रहा है—"छोटे भैया।" लड़के का नाम विनोदचन्द्र है। यह मोतीलाल का फुफेरा भाई है।

"छोटे भैया, घर चलिए।"

मोती ने कुछ ख़फ़ा होकर पूछा—क्यों ?

"बड़े भैया बुलाते हैं।"

"ज़रा ठहर कर आऊँगा। अभी जाओ।"

लड़के ने कहा—नहीं, अभी चलिए। बैठक में न मालूम कौन दो आदमी आये हैं। बड़े भैया ने मुझसे कहा है—जा, तू अपने 'छोटे भैया' को झट से बुला ला, देर न हो।

यह सुनकर मोतीलाल कुछ देर तक बालक के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देखता रहा, फिर बोला—क्यों! दो आदमी क्यों आये हैं ?

वे क्यों आये हैं—यह लड़का जानता था। किन्तु बड़े भैया ने मना कर दिया था, इसी से उसने कहा—"क्या जानें।" किन्तु उसके कण्ठस्वर से झूठ बोलने की-सी ध्वनि निकल पड़ी।

मोतीलाल ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—छिः छिः विनोद! तू झूठ बोलता है? छिः छिः।

लड़का चुपचाप खड़ा रहा। उसे चुप देखकर मोतीलाल ने कहा—तूने पोथी में नहीं पढ़ा है कि झूठ बोलना बड़ा दोष और भारी पाप है? पिता का सत्य पालने के लिए रामचन्द्र राजकुमार होने पर भी वन को गये थे। क्यों, नहीं पढ़ा है? पूर्वकाल के हिन्दू सत्य के आगे प्राण को भी तुच्छ समझते थे। उन्होंने खुशी से जान दे दी, पर झूठ न बोले। क्या तुमने यह कभी नहीं सुना? तुम भी वही हिन्दू-सन्तान हो, इसे क्यों भूल गये? झूठ बात बोलने की भीरुता और कायरपन ने तुझे आज कलङ्कित कर दिया। आह! बड़े दुःख की बात है! बड़ी लज्जा का विषय है विनोद, छिः छिः छिः।

इस वाक्य-बाण से व्यथित होकर लड़का रो पड़ा। उसकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मोतीलाल की तीव्र दृष्टि को सह्य न कर सकने पर वह दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर सिसक सिसक कर रोने लगा।

"रो, जो पाप किया है उसे आँखों के पानी से धोकर फिर पवित्र हो। पाप की कालिमा केवल आँखों के जल से ही धोई जाती है और वह किसी भी तरह नहीं धुलती।" यह कहकर

मोतीलाल ने फिर योगवाशिष्ठ में चित्त लगाया। लड़का संकोच से सिर झुकाकर चला गया।

कुछ काल बीता। दूर से पायज़ेब की झनझनाहट सुनाई दी। मोतीलाल ने सिर उठाकर उस ओर देखा कि भतीजी प्रभावती आ रही है। देखकर फिर उसने पढ़ने में मन लगा लिया।

वाक्यहीन पुतली की भाँति नीची नज़र किये प्रभा पास में आ खड़ी हुई।

कुछ देर बाद पुस्तक पर से नज़र उठाकर मोती बोला—प्रभा, क्या है ?

प्रभा—काका, ज़रा घर चलिए, बाबू जी बुलाते हैं।

"क्यों बुलाते हैं ?"

"दो जने आये हैं।"

"वे कौन हैं ?"

"यह तो मैं नहीं जानती—वे बैठक में बैठे हैं।"

मोतीलाल ने मन ही मन कहा—"हूँ !" फिर बालिका की नैतिक परीक्षा लेने की इच्छा से उसने पूछा—वे दोनों कहाँ से आये हैं ?

"प्रयागराज से।"

"क्यों ?"

इस पर बालिका ज़रा भी दुविधा में नहीं पड़ी। उसने

साफ़ साफ़ कह दिया—"आपको देखने के लिए।" विनोदचन्द्र के तिरस्कार की बात उससे छिपी नहीं थी।

मोतीलाल ने भौं सिकोड़ कर कहा—क्यों, क्या देखेंगे ? मैं बाघ हूँ या भालू ?

प्रभा ने मुस्कुराकर कहा—आपके ब्याह की बात तय करने आये हैं।

प्रभा के मुँह पर यह हँसी देखकर मोती का जी जल उठा। बड़ों के आगे प्रभा की यह ढिठाई, यह चपलता, यह ओछापन एकबारगी असह्य है। इसी से वह लाल आँखें करके कठोर स्वर से बोला—प्रभा !

काका का रोष-भरा भाव देख प्रभा ने हतबुद्धि होकर सभय दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"प्रभा ! तू हँसी क्यों ?"

बालिका कुछ न बोली। किन्तु उसकी दोनों आँखों में उदासी छा गई।

मोतीलाल गम्भीर भाव से यों कहने लगा—तेरे चाचा के ब्याह की बात क्या तेरे लिए हँसी-मज़ाक की बात है ? क्या तू अब भी नहीं जानती कि बड़ों के आगे कैसा व्यवहार करना चाहिए ? क्या इस सम्बन्ध में तेरी माँ तुझे कभी कोई शिक्षा नहीं देती ? कभी कभी तुझको रामायण, महाभारत पढ़ते देखता हूँ। क्या तूने रामायण महाभारत से यही उपदेश पाया है ? धिक्कार है तेरी बुद्धि को !

प्रभा के विशाल नेत्रों में आँसू भर आये। वह काँपते हुए धीमे स्वर में बोली—मैं तो आपके ब्याह की बात से नहीं हँसी।

"तो किस बात से हँसी ?"

"आपने कहा—'मैं बाघ हूँ या भालू'—यह सुनकर मेरे मन में आया कि बाघ भालू क्या कभी आँख में चश्मा लगाकर पोथी पढ़ता है ? इसी से मुझे हँसी आगई।" यह कहते कहते प्रभा की आँखों से आँसू टपकने लगे।

बालिका की अवस्था देखकर मोतीलाल का हृदय कुछ द्रवित हुआ। क्रोध को रोककर उसने फिर योगवाशिष्ठ के पृष्ठ पर दृष्टि डाली।

किन्तु प्रभा गई नहीं, खड़ी रही। आँचल से आँखें और मुँह पोंछ कर वह चुपचाप चाचा से उत्तर पाने की अपेक्षा करने लगी। उसे वहाँ अड़ी देखकर मोतीलाल ने कहा—"जाओ न, खड़ी क्यों हो रही ?" इस दफ़े उसका स्वर पहले की भाँति कठोर न था।

प्रभा—चलिए काका।

"मुझे पढ़ने क्यों नहीं देती हो ?"

"फिर पढ़िएगा, अभी तो चलना ही होगा।"

"मैं बार बार सबसे कह चुका हूँ कि मैं ब्याह नहीं करूँगा। तो फिर क्यों मुझे देखने आये हैं ?" यह कह कर मोती पुस्तक में मन लगाने की वृथा चेष्टा करने लगा।

प्रभा—काका, मैं यह नहीं जानती। आपको जो कहना

हो वह अभी पिता जी से चलकर कह आइए। चलिए, उठिए।

"जाकर क्या करूँगा ? फ़ायदा ही क्या होगा ?"

"काका, एक बार चलिए।"

तब मोती ने चश्मा खोल कर पाकेट में रख लिया। नसदान से थोड़ा-सा नास ले पुस्तक बग़ल में दबा, हाथ में आसन लेकर वह उदास मुँह से प्रभा के साथ साथ घर की ओर चला।

तीसरा परिच्छेद

बाबू जी की बैठक आज खूब गुलज़ार है। इलाहाबाद से जो दो बाबू वर देखने को आये हैं उनमें से एक तो कन्या का छोटा चाचा है—नाम है वीरेश्वरसहाय; और जो साथ में आया है वह इनका कोई सम्बन्धी नहीं, मित्र है। इनका नाम श्यामानन्द है। ये इलाहाबाद के किसी गैर सरकारी स्कूल में अध्यापक का काम करते हैं। पूर्वकाल में नवयुवक वर को देखने के बहाने मोटे हिसाब से उसकी परीक्षा लेने की चाल थी। इस वर के सम्बन्ध में यद्यपि कन्यावाले जानते हैं कि लड़के ने एम० ए०, एल-एल० बी० पास किया है और यह बात सरकारी गैज़ेट में भी छप चुकी है, इसलिए परीक्षा लेने की कोई आवश्यकता नहीं; इसके सिवा ऐसे सुयोग्य वर का परीक्षक मिलना भी कठिन है, तथापि कन्या के पिता ने साथ में एक विद्वान् व्यक्ति को भेजना अच्छा समझा है।

वीरेश्वर बाबू और पण्डित श्यामानन्द जी बैठक में बैठे हैं, गोपीकान्त उनके पास बैठ कर बातें कर रहे हैं। मुहल्ले के दो एक रईस और बन्धुवर्ग भी आ जुटे हैं। हुक्के के धुवें से सारा कमरा आमोदित हो रहा है। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ साथ तरह तरह की गपें उड़ रही हैं। सबके मुँह से गप के गोले छूट रहे हैं। केवल अध्यापक महाशय चुपचाप

बैठे हैं। वे बीच बीच में सुँघनी सूँघ लेते हैं, और दूसरों की विनोदवार्ता सुनकर मीठी हँसी से सबको अपने हृदय की सरसता का परिचय दे रहे हैं।

समय हो गया, पर अब भी मोतीलाल नहीं आया। यह देख गोपीकांत स्वयं उठकर अन्दर गया। आँगन में प्रवेश करते ही देखा, आगे आगे उसकी कन्या प्रभावती, पीछे पीछे बग़ल में पोथी दबाये और हाथ में कुशासन लिये मोतीलाल आ रहा है। भाई को देखते ही गोपीकान्त ने कहा—"अब तक कहाँ थे? एक बार कमरे में चलो। मैं कब से तुम्हें बुला रहा हूँ, आदमी पर आदमी भेज रहा हूँ। इसका तुम्हें ज़रा भी ख़याल नहीं।"

मोतीलाल ने जब से सुना है कि उसको देखने के लिए इलाहाबाद से लोग आ रहे हैं तब से उसका जी जल रहा था। मन के क्रोध को यथासम्भव छिपाकर वह विनीतभाव से बोला—भाई जी, बैठक में जाने का ऐसा क्या विशेष प्रयोजन है?

"हाँ, प्रयोजन है। इलाहाबाद से दो सज्जन आये हैं, उनसे वार्तालाप करना होगा।"

"क्या वे मेरे ब्याह की बात करने आये हैं?"

कुछ देर चुप रहकर गोपीकान्त ने कहा—हाँ।

"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं ब्याह नहीं करूँगा, तो क्यों मुझको—"

बात काट कर गोपी बाबू ने कहा—बड़ी मुश्किल है! उन्होंने तुमको देखा कि तुम्हारा ब्याह हो गया, यह तो नहीं है। अभी सिर्फ़ तुमको देखने आये हैं। उनकी प्रतिज्ञा है कि वर देखने में ख़ूबसूरत और सुश्रीक हो तो वे उसे लड़की देंगे। वे रुपये की परवा नहीं करते। चाहे जितना रुपया लगे, वे ख़र्च करने को तैयार हैं।

यह सुनकर मोती का विमुख मन और भी विमुख हो गया। कन्या के धनगर्विष्ठ पिता उसको गाहक की नज़र से देखने आये हैं। पसन्द होगा तो लड़की के लिए ख़रीदेंगे, चाहे जितना रुपया लगे। पसन्द न होने पर, तिरस्कार के साथ सिर हिलाकर, चले जायँगे।

भाई को चुप देखकर गोपीकान्त ने कहा—वे बहुत बड़े आदमी हैं। हमारे सदृश सात ज़मींदारों की सम्पत्ति चाहें तो एक दिन में ख़रीद ले सकते हैं। यदि वे तुमको पसन्द करें तो समझो कि तुम्हारे सौभाग्य का दिन पलट आया। इलाहाबाद के बड़े बड़े वकीलपेशा लोग उनके हाथ में हैं। उन्होंने कहा है, तुमको ले जाकर जानसेनगञ्ज में एक तिमंज़िला मकान देंगे। जोड़ी गाड़ी देंगे और ऐसा प्रबन्ध करेंगे जिससे हाईकोर्ट में छः महीने के भीतर भीतर तुम्हारा नाम विख्यात हो जाय। असल बात तो यह है कि वे तुमको पसन्द करें तो सब कुछ हुआ ही समझो। चलो, एक बार बैठक में चलो।

जो आग धीरे धीरे सुलग रही थी उसमें गोपीकान्त ने, बिना

जाने समझे, पूर्वोक्त वचनरूपी घी डाल दिया। उनकी हर एक बात मानो मोतीलाल के हृदय में बर्छी की भाँति चुभने लगी। अपने मानसिक वेग को रोक कर मोतीलाल ने कहा—भाई जी, मुझे क्षमा करो, मैं अभी नहीं जाऊँगा।

"क्यों ?"

"अभी मेरा जी अच्छा नहीं है।"

गोपीकान्त ने खिसिया कर कहा—आज-कल तुम्हारी यह क्या टेव पड़ गई है। जब तब कहा करते हो 'जी अच्छा नहीं है।' नहीं अच्छा है इससे क्या? इसी अवस्था में सब काम हो ही रहा है। ये लोग कितनी दूर से आये हैं। इनके साथ बैठकर कुछ बातचीत करो—तुमसे क्या यह भी न हो सकेगा ? वे कुछ ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं। उनकी ज़मींदारी में एक मैनेजरी ही का काम मिल जाय तो हम लोग अपना सौभाग्य समझें। चलो उठो।

धधकती हुई आग में बारम्बार सूखी लकड़ी डाली गई। मोतीलाल ने दाँतों से होंठ काट कर काँपते हुए स्वर में कहा—अच्छा, चलिए। किन्तु फलाफल के लिए मैं ज़िम्मेवार नहीं।

भाई को लेकर गोपी बाबू बैठक में जा पहुँचे। वीरेश्वर बाबू को दिखाकर कहा—"यही बाबू साहब हैं, इन्हें प्रणाम करो।" मोतीलाल ने उक्त बाबू के हृष्टपुष्ट गोल मुखमण्डल की ओर देखा। उनकी छाती पर लटकती हुई सोने की चेन

पर और दोनों हाथों की उँगलियों में चार पाँच रत्न-जटित अँगूठियों पर लक्ष्य किया। फिर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और कुछ दूर पर जा बैठा।

उक्त बाबू जी ने मोतीलाल के मुँह की ओर देखकर कहा—आपका नाम क्या है?

मोती ने अपने चश्मे के भीतर से प्रश्नकर्ता के ऊपर तीव्र दृष्टिरूपी दो अग्निबाण फेंक कर कहा—मेरा नाम मोतीलाल श्रीवास्तव। मेरे पिता का नाम महामहिम ईश्वरसम परमपूज्य श्रीयुत व्रजनन्दन जी था। बीस पुरुषों तक के नाम मेरे कण्ठस्थ हैं। और जो कुछ पूछना हो पूछिए, किन्तु मैं ब्याह नहीं करूँगा।

इस अनभिलषित उत्तर से कमरे भर के सभी लोग सन्नाटे में आ गये। जो हुक्क़ा पी रहे थे उनके हुक्क़े की गुड़गुड़ाहट बन्द हो गई। गोपीकान्त ने लज्जा से सिर झुका लिया।

बाबू महाशय सभा की निस्तब्धता भङ्ग करके बोले—ओफ़, मैं यह नहीं जानता था।

मोतीलाल उन्हें नमस्कार करके खड़ाऊँ चटकाता हुआ घर से बाहर हो गया।

जिनके हाथ में हुक्क़ा था उन्होंने फिर धीरे धीरे तम्बाकू पीना आरम्भ किया। वीरेश्वरसहाय ने कहा—इस तरह बुलाकर हम लोगों का अपमान करना क्या अच्छा है?

गोपीकान्त ने कहा—मैं क्या कहूँ, मैं तो कुछ कहने लायक़

भी न रहा। मैंने तो अच्छा सोच कर ही इस काम में हाथ डाला था। आप बड़े लोग हैं। सोचा था, यह विवाह होने से लड़के के हक़ में अच्छा होगा। किन्तु देखता हूँ, समय ऐसा आ गया है कि अपने भाई का उपकार करने की चेष्टा करना भी भारी मूर्खता है।

एक पड़ोसी रईस ने कहा—बहुत दिनों से सुनता आता हूँ, "विद्या ददाति विनयम्।" इतना लिख पढ़कर मोतीलाल ऐसा उद्धत हो गया, यह बड़े दुःख की बात है। हम लोगों ने जो बहुत नहीं लिखा पढ़ा, यह एक प्रकार से अच्छा ही किया।

अध्यापक ने कहा—असल बात नहीं जानते! आज-कल स्कूल-कालेजों में विद्या तो ख़ूब पढ़ाई जाती है, किन्तु उसके साथ नीति की शिक्षा कुछ भी नहीं दी जाती। यह उसी का फल है।

वीरेश्वरसहाय बोले—अच्छा तो अब हमको जाने की आज्ञा दीजिए।

गोपीकान्त ने कहा—बेर बहुत हो गई। स्नान भोजन करके जाते तो अच्छा होता।

"क्षमा कीजिए; अब यहाँ घड़ी भर भी ठहरने को जी नहीं चाहता। बड़ी ही लज्जा मालूम होती है। हम आपको कुछ दोष नहीं देते—सब हमारे भाग्य का दोष है। स्टेशन के समीप हमारे एक मित्र हैं, वहीं जाकर स्नान भोजन करेंगे। अरे—कोचवान, कहाँ गया?"

गोपीकान्त के भी मन की अवस्था ऐसी न थी कि इन आगत व्यक्तियों को ज़िद करके रोक ले। उसके मन में यही होता था, एक बार मोती से भेंट हो तो मैं उसे ख़ूब फटकारूँ। क्रोध से उसका कण्ठ रुँधा जाता था। साँस जल्दी जल्दी चल रही थी।

गाड़ी जुतने पर दोनों बाबू रवाना हुए। पड़ोसी लोग भी इस घटना की बातें करने के दुःसह आवेग को हृदय में रोक कर धीरे धीरे पैर उठाते हुए अपने अपने घर की ओर गये।

गोपीकान्त भूखे बाघ की भाँति भाई की खोज में चला।

चौथा परिच्छेद

मोतीलाल महल के भीतर प्रवेश कर एकबारगी दो-मंज़िले पर अपने सोने की कोठरी में चला गया। उसकी फूफी, भौजाई और प्रभावती आदि ने उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा। भौजाई ने दिल्लगी के तौर पर कुछ पूछना चाहा था; किन्तु मोती बाबू के मुँह और आँखों का भाव देखकर वह चुप हो रही।

कुछ ही देर बाद गोपीकान्त भीतर आया। वह फूफी को देखकर बोला—मोती कहाँ गया ?

"ऊपर गया है। क्यों, क्या हुआ ? उन लोगों ने मोती को पसन्द कर लिया ?"

"यह पीछे कहूँगा" कह कर गोपीकान्त कोठे पर गया। इधर-उधर खोज-ढूँढ़ कर अन्त में मोती के शयन-गृह में प्रवेश करके देखा, खुली खिड़की के पास खड़ा होकर वह अन्यमनस्क भाव से आकाश की ओर देख रहा है। खिड़की के नीचे बाग़ है—बाग़ के बीच में पेड़ों से घिरा हुआ एक तालाब है।

गोपीकान्त ने कमरे में प्रवेश करके द्वार बन्द कर दिया। भाई के पास खड़े होकर उसने खिड़की की राह से तालाब की ओर झाँक कर देखा। घर की रसोई बनानेवाली पानी में उतर कर स्नान कर रही है और सूने में संकोच-रहित हो, अपने

शरीर को मल मल कर धो रही है। यह पाचिका एक ब्राह्मण की कन्या अनाथा, नवयौवना विधवा है। गोपीकान्त ने एक बार तालाब की ओर और एक बार भाई की ओर सन्दिग्ध भाव से देखा। इसके बाद रूखे स्वर से कहा—मोती, तुम्हारा मतलब क्या है?

भाई की ओर एक बार देखकर, बिना कुछ उत्तर दिये, मोती चुपचाप खड़ा रहा।

ज्येष्ठ भाई ने फिर पूछा—तुम्हारा अभिप्राय क्या है, कहते क्यों नहीं?

मोती ने स्थिर भाव से कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगा—यह तो बहुत दिन पूर्व ही आपको सूचित कर चुका हूँ।

"माना कि ब्याह न करोगे, किन्तु घर पर आये हुए सज्जनों का अपमान तुमने क्यों किया? वह अपमान उनका नहीं, मेरा हुआ। मुझी को तुमने अपमानित किया है।"

मोती चुप हो रहा। गोपीकान्त क्रुद्ध होकर बोला—जवाब क्यों नहीं देते?

मोती ने कहा—आपको अपमानित करना मेरा उद्देश्य नहीं था।

"यह उद्देश्य न था तो तुम्हारा क्या उद्देश्य था? क्या तुम उनका अपमान करना चाहते थे? जो सज्जन आदरपूर्वक घर पर बुलाये गये थे उनका उद्धतभाव से तिरस्कार करना ही तुम्हारा उद्देश्य था? इतने दिनों से तुमने यही सीखा पढ़ा है?

यही तुम्हारे विद्या पढ़ने का फल है ? यही तुम्हारी शिष्टता का आदर्श है ? छिः छिः । धिक्कार है तुम्हारी समझ को।"

मन के क्रोध को प्राणपण से दबा कर मोती ने शान्तभाव से कहा—उन लोगों ने क्या हमारा अपमान नहीं किया ?

गोपी बाबू ने मुँह फुला कर कहा—उन्होंने हमारा क्या अपमान किया ? हमारे सदृश सामान्य अवस्थावाले आदमी के घर में लड़की देने का जो प्रस्ताव किया था इससे हमारा सम्मान हुआ या अपमान ?

मोती ने लम्बी साँस लेकर कहा—कहिए, आपको कैसे समझाऊँ ?

"मुझे कैसे समझाओगे ? खोलकर सब बात कहने ही से मैं समझ सकता हूँ। हिन्दी मेरी मातृभाषा है—यदि हिन्दी में कहोगे तो कुछ समझ भी सकूँगा। क्या तुम मुझे ऐसा मूर्ख, ऐसा दिहाती, ऐसा निर्बोध समझते हो कि मैं एक सीधी-सी बात भी नहीं समझ सकता ? तुमने कालिज में पढ़कर बहुत कुछ पास किया है—मैंने सेकेन्ड क्लास ही तक पढ़ा है। किन्तु यह तो शेक्सपियर नहीं, मिल्टन नहीं, वेदान्त भी नहीं, और धर्मशास्त्र भी नहीं हैं; फिर क्यों नहीं समझ सकूँगा ? एक बार कुछ कह कर देखो भी तो; मैं समझता हूँ या नहीं। इसमें क्या तुम्हारा गौरव घट जायगा या तुम्हारी विद्या का ह्रास होगा ?"

इतने में पाचिका (रसोई बनानेवाली) स्नान करके,

जल से भरा पीतल का घड़ा बग़ल में लिये, हिलती डोलती हुई पेड़ों की छाँह से होकर आ रही थी। समीपवर्ती होने पर, एक बार झरोखे की ओर दृष्टि करके, उसने अपने खुले हुए सिर के ऊपर कपड़ा डाला। यह गोपीकान्त बाबू की दृष्टि से छिपा न रहा।

मोती ने कहा—आप कहते हैं, हमारे सदृश अवस्थावाले के घर में उन्होंने लड़की देना चाहा था। देना क्या चाहा था? वे आये थे मुझको देखने और पसन्द करने के लिए। जैसे मैं बाज़ार की कोई बिकाऊ चीज़ या घोड़ा होऊँ जो मेले में बिकने के लिए आया होऊँ! पसन्द आवेगा तो पूरा दाम देकर ख़रीद लेगा। कहिए, यह क्या अपमान नहीं है?

गोपीकान्त कुछ नरम होकर बोला—तुम चाहे जो कहो, परन्तु इसमें अपमान की कोई बात नहीं है। विवाह स्थिर होने के पहले लड़केवाले लड़की को और लड़कीवाले लड़के को देखते हैं—यह प्रथा तो बहुत दिनों से चली आ रही है। पसन्द होने या न होने ही के लिए तो घरदेखी वरदेखी होती है। जब दोनों को पसन्द हो जाता है तभी ब्याह की बात पक्की होती है। इसमें अपमान क्या है?

मोती कुछ न बोला। झरोखे के पास ही बाहर एक झंखाड़ आम का पेड़ है। उस पर बैठ कर बहुतेरे पक्षी किलोलें कर रहे हैं। एक बन्दर उस पेड़ पर कूद कर, डाल पकड़ कर झूलने लगा। सारे पक्षी उड़ कर भाग गये। कुछ देर चुप रह

कर भाई ने कहा—तुम विवाह नहीं करोगे, क्या यही तुम्हारी प्रतिज्ञा है ?

"जी हाँ।"

"क्यों नहीं करोगे, कुछ सुनूँ भी तो ?"

"इच्छा नहीं।"

"यह तो तुम्हारी विचित्र इच्छा है"—कहकर गोपीकान्त चारपाई पर बैठ गया और कहने लगा—तुम्हारी यह इच्छा तो संसार से निराली है। जो संसारी मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहना चाहेगा उसके लिए विवाह करना ही धर्म है। क्या तुम नहीं जानते कि हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार होता है ? इधर तुम पूरे धार्म्मिक भी बनते हो !"

मालूम नहीं बेचारा मोती आज किसका मुँह देखकर उठा है, सबेरे से ही खटपट होना आरम्भ हुआ है। एक भी बात उसके लिए प्रीतिकारक न हुई। धैर्य धारण करके चलना उसके लिए कठिन हो उठा। तथापि जहाँ तक उससे हो सका, वह अपने मानसिक वेग को रोक कर बोला—संसारी लोगों को विवाह अवश्य ही करना चाहिए—यह मेरी धारणा नहीं है।

गोपीकान्त ने ज़रा स्वर बिगाड़ कर कहा—अच्छा, मान लिया कि तुम विवाह नहीं करोगे, किन्तु विवाह न करके तुम अपने चरित्र को शुद्ध तो रख सकोगे न ?

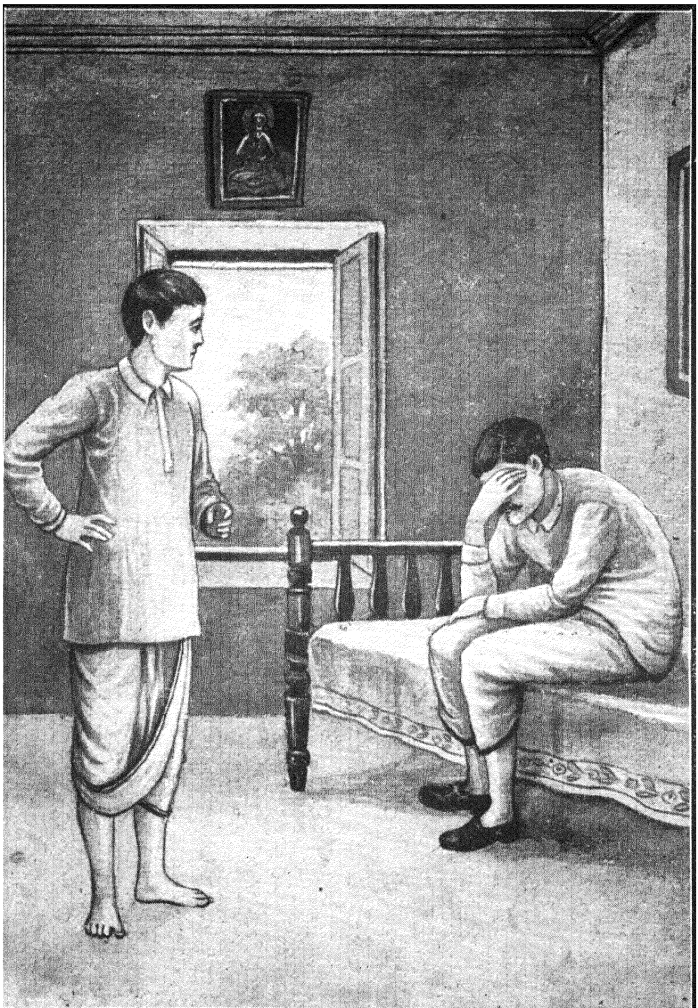
मोतीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। यह प्रश्न

ही उसे अपमानजनक जान पड़ा। उसे चुप देखकर गोपीकांत ने कहा—

"तुम .खूब लिखे-पढ़े हो, बहुत विद्या हासिल कर चुके हो, और हम मामूली लिखे-पढ़े हैं। किन्तु उम्र में हम तुमसे बेशक बहुत बड़े हैं। तुम्हारी अपेक्षा हमें संसार का विशेष परिचय है। संसार के सम्बन्ध में तुमसे हमने बहुत अधिक ज्ञान लाभ किया है,—यह हम दावे के साथ कह सकते हैं। तुम्हारे सदृश संसारी नवयुवक के लिए विवाह करना बहुत ज़रूरी है। यदि तुम संसार को लात मार कर संन्यासी हो जाते, गृहस्थाश्रम में नहीं रहते, तो दूसरी बात थी। किन्तु गृहस्थाश्रम में रह कर उसका नियम पालन नहीं करोगे, इसका कुफल अवश्य फलेगा। मेरी तरह यदि तुम विवाह करोगे तो उससे तुम्हारे धर्माचरण में हानि न होगी। अगर अविवाहित रहोगे तो उसी में हानि होने की विशेष सम्भावना है। विवाह करके भी कितने ही लोग निष्कलङ्क नहीं रह सकते। तुम ब्याह न करके भी यदि अपने चरित्र को शुद्ध रखने की बात कहो तो यह तुम्हारी धूर्तता है। नहाने के घाट पर स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखने की अपेक्षा विवाह कर लेना कहीं अच्छा है।"

आख़िरी बात सुनकर मोतीलाल की कोपाग्नि भभक उठी। वाक्य-संयम का ज्ञान खोकर उसने सहसा कह डाला—भाई साहब, सभी को अपने समान न समझिए।

इस बात से गोपी बाबू ने चारपाई से उतर क्रोध से गरज



बाहर कमरे में जाकर देखा कि एक अधेड़ अपरिचित व्यक्ति मौजूद है।—पृ० ३५

कर कहा—बस—जितना बड़ा मुँह हो उतनी ही बड़ी बात बोलनी चाहिए।

मोती ने धीरतापूर्वक कहा—आप क्यों झूठमूठ मुझे आँख दिखा रहे हैं! मैं सब जानता हूँ।

गोपी बाबू फिर कड़क कर बोला—क्या जानते हो?

"जो जानता हूँ, वह कहकर मैं अपने मुख को दूषित नहीं करूँगा किन्तु आप सावधान हो जायँ। अगर आप अपनी इच्छा से बुरे संसर्ग का त्याग न करेंगे तो उसके प्रतिकार का भार मुझे अपने ऊपर लेना होगा।"

गोपीकान्त कुछ सन्देह में पड़ गया। मोती क्या जानता है, मेरा कौन हाल जानता है—यह कुछ भी वह नहीं समझ सका। साँप के डर से अँधेरे घर में मनुष्य जैसे बड़ी सावधानी से पाँव रखता है, उसी तरह सावधानतापूर्वक स्वर को कोमल करके गोपी ने कहा—क्या तुम मेरे अभिभावक हो या गुरुजन, जो ऐसी बात कह रहे हो?

"नहीं; न मैं आपका गुरुजन हूँ और न अभिभावक ही। मैं तो आपका छोटा भाई हूँ। छोटे भाई को अधर्मपथ से रोकने के सम्बन्ध में बड़े भाई का जैसा अधिकार है वैसा ही अधिकार बड़े भाई के सम्बन्ध में छोटे भाई को भी है।"

गोपी बाबू जैसे कुछ भी चिन्तित न हुआ हो, कुछ भी शङ्कित न हुआ हो, ठीक ऐसे ही भाव को बना करके बोला—वाह! यह नया ही शास्त्र सुनता हूँ। तो तुम क्या करना चाहते हो?

मोती ने गम्भीरतापूर्वक कहा—अभी कुछ स्थिर नहीं किया है। यदि आप सहज ही अच्छे मार्ग पर नहीं आवेंगे तो मुझे कुछ कठोर उपाय का अवलम्बन करना होगा।

युवक के चेहरे पर दृढ़ प्रतिज्ञा का भाव देखकर गोपीकान्त का मुँह एक अनिश्चित शोच से विवर्ण हो गया। फिर समीपवर्ती पलँग पर बैठ कर बाँयें हाथ से अपनी दोनों आँखों को ढक कर, सताये हुए साधु की भाँति, कहने लगा—

यह होगा ही! क्यों नहीं होगा? कलिकाल है न। इस समय सब उलटा ही तो होता है। पूर्वकाल में छोटा भाई बड़े भाई को पिता और गुरु के तुल्य समझ कर उसकी भक्ति करता था। अब छोटा भाई बड़े को धर्मोपदेश देता है, उसे धार्मिक बनाने की चेष्टा करता है, तथा अनेक प्रकार से उसे शुद्ध करता है। यह न हो तो फिर कलिकाल क्या कहलावेगा। पहले गुरु-निन्दा करना महापाप समझा जाता था। गुरु की निन्दा करने से लोगों की जीभ कट कर गिर जाती थी। अब छोटे बड़े का विचार ही उठ गया। सभी अपने आप प्रधान हो गये। मैंने भूल की जो तुमसे कुछ कहा। लो अब जाता हूँ। तुम्हारा समय व्यर्थ नष्ट न करूँगा। पापी के संसर्ग में रहने से तुम्हें पाप लग जायगा" यह कह कर गोपीकान्त पलँग से उतर, किवाड़ खोल कर चलता हुआ। द्वार की बाईं ओर नीचे उतरने की सीढ़ी थी। देखा, उसकी स्त्री उसी सीढ़ी से झट झट पैर उठाती हुई नीचे उतर रही है।

बाहर कमरे में जाकर देखा कि एक अधेड़ अपरिचित व्यक्ति मौजूद है। नई धोती, नया अँगरखा, नई चादर और नया जूता पहने है। बग़ल में नया छाता, एक हाथ में बैग और दूसरे हाथ में हुक्का लिये है। उसके सिर के अग्रभाग के बाल उड़ गये हैं। मूँछ-दाढ़ी के बाल वैसे घने नहीं, पर कोई कोई पके हैं। रङ्ग काला है। गोपी बाबू को देखते ही उसने धरती में सिर टेक कर प्रणाम किया।

गोपी बाबू—तुम कौन हो ?

आगत व्यक्ति ने उत्तर दिया—हुज़ूर! ताबेदार का नाम रौनक़लाल है।

"घर कहाँ है ?"

"ग़ाज़ीपुर ज़िले में।"

"किस मतलब से आये हो ?"

दोनों हाथ जोड़कर, दीनता-भरे स्वर से उस व्यक्ति ने कहा—हुज़ूर से परवरिश पाने के मतलब से आता हूँ।

"कौन काम कर सकते हो ?"

"ज़मींदारी सरिश्ते का सभी काम कर सकता हूँ।"

गोपी बाबू की ज़मींदारी में एक नौकर की जगह ख़ाली थी। उसने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा, अभी कचहरी में जाकर ठहरो और स्नान-भोजन करो। फिर इस विषय में जो कहना होगा तुमसे कहूँगा।" यह कह कर, एक नौकर को साथ दे, आगत व्यक्ति को कचहरीवाले घर में भेज दिया।

पाँचवाँ परिच्छेद

यहाँ कुछ दिन पूर्व की कई एक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

भोर का समय है। इलाहाबाद के बड़े क़ैदख़ाने के भीतर, फाटक के पास पन्द्रह क़ैदी इन्तज़ारी में खड़े हैं। वे आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं। उन लोगों का मन खूब प्रसन्न है। क़ैदख़ाने से आज उन सबों के छुटकारा पाने का दिन है। जेलर के आते ही ये लोग छुट्टी पा जायँगे।

सात बज गये। जेलर साहब आ पहुँचे। द्वाररक्षक, पहरा देनेवाला सिपाही सहसा ठिठक कर खड़ा हो गया। कन्धे से बन्दूक़ उतार कर उसने झुक कर फ़ौजी क़ायदे से उन्हें सलाम किया। फाटक-जमादार झटपट फाटक का ताला खोल कर जेलर को भीतर ले आया।

जेलर के भीतर आने पर मातहत कर्मचारी लोग काग़ज़-पत्र हाथ में लेकर उनके पास आये।

आज जिन क़ैदियों के क़ैद से छूटने का दिन है उनके नाम की लिस्ट हाथ में लेकर जेलर ने, उपस्थित प्रत्येक क़ैदी के गले से लटकती हुई काठ की चकती पर खुदे हुए नम्बर और तारीख़ को बड़ी सावधानी से मिला कर देखा। फिर बग़ल-वाली एक कोठरी में उन सबको ले जाकर, अँगूठे की छाप

लेकर, प्रत्येक को उसकी पोशाक लौटा दी। जेल में आने के समय ये इन कपड़ों को पहने आये थे। सभी को अपने अपने घर तक का, तीसरी श्रेणी का, रेल-भाड़ा और ख़ुराकी दी गई। फाटक खोल दिया गया, और वे सब क़ैदख़ाने से बाहर निकले।

इनमें एक आदमी का नाम रौनक़लाल था। उसकी उम्र पैंतालीस वर्ष की होगी। पूस महीने में इसको जेल हुआ था—इसी से इस भादों मास की गरमी में भी इसके गले में ऊनी गुलूबन्द, देह में बनात का कोट, और उसके ऊपर एक काले रङ्ग की सर्ज की चादर थी।

बाहर आकर रौनक़ चारों ओर साकांक्ष दृष्टि से देखने लगा। उसे आशा थी कि शायद कोई आत्मीय उसे लेने के लिए आया होगा। कितनों ही के आये भी थे, किन्तु उन आगत व्यक्तियों में रौनक़ ने अपना एक भी आत्मीय नहीं देखा। तब उसने एक लम्बी साँस लेकर फाटक के ऊपर बने हुए सरकारी मकान पर दृष्टि डाली। जेलर उसी में रहता था। उन दिनों जेल के ऊँचे दर्जे के कर्म्मचारियों को दो एक क़ैदी, घर का काम-धन्धा करने के लिए, दिये जाते थे। छः सात महीने से जेलर के घर पर रौनक़ बर्तन माँजने और चौका आदि देने के काम में नियुक्त था। और क़ैदियों को पत्थर तोड़ना, चक्की चलाना, और बाग़ की ज़मीन को जोतना, काड़ना आदि अनेक परिश्रम-साध्य काम करने पड़ते थे, किन्तु रौनक़लाल दो-चार बर्तन मलकर ही छुट्टी

पा जाता था। इसके सिवा महीने में उसे कुछ मिल भी जाता था। कभी कभी कुछ प्रसाद भी पाता था। नौकरों से मेल करके उसने एक हुक्का मँगा रक्खा था। काम करते समय अवसर पाकर वह बड़ी गुप्त रीति से तम्बाकू पी लेता था। जेल के क़ैदियों को यह सब सुयोग मिलना बहुत दुर्लभ है। इसलिए एक बार ऊपर जाकर उसने मालकिन (जेलर की स्त्री) और अन्यान्य लोगों से भेंट कर लेना चाहा।

रौनक़ बाहर की सीढ़ी से ऊपर गया। रसोईघर के पास खड़ा होकर बोला—मालकिन।

"क्या है रौनक़—आज तुम्हारी रिहाई हुई?" कहती हुई जेलर की स्त्री घर से बाहर आई।

"हाँ मालकिन—आपके आशीर्वाद से।"

"अच्छा हुआ। आज ही घर जाओगे?"

"जी हाँ।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"ग़ाज़ीपुर ज़िले में।"

"घर पर तुम्हारे कौन कौन हैं?"

"स्त्री और दो लड़कियाँ थीं। अब इस छः वर्ष के भीतर कौन है और कौन नहीं, यह भगवान् जानें।"

जेलर की स्त्री ने कहा—हैं, सब हैं। घर जाने पर तू सबको देखेगा। तुझे देखकर उन्हें अत्यन्त हर्ष होगा।

इतने में जेलर के लड़के और लड़कियाँ वहाँ आकर खड़ी

होगईं। आज रौनक़लाल को जेल से छूटा हुआ देखकर सभी खुश हुए।

जेलर की स्त्री ने कहा—देख,—छः वर्ष में तूने छुटकारा पाया है। अब, देखना, फिर कभी चोरी-डकैती नहीं करना।

"चोरी-डकैती तो मैंने कभी नहीं की। हाँ, फ़ौजदारी की थी।" यह कहकर रौनक़ सीना तान कर मन्द मन्द हँसने लगा।

दो एक बातों के बाद रौनक़ ने मालकिन को प्रणाम करके जाने की आज्ञा माँगी।

मालकिन ने कहा—अभी न जाओ तो क्या होगा। भोजन करके उस वक्त चले जाना।

"माँ, इसके लिए आप चिन्ता न करें। आपही का दिया खाता हूँ। त्रिवेणी-स्नान करके माधव जी का दर्शन करूँगा—वहीं कुछ जलपान करके स्टेशन जाकर गाड़ी पर सवार हो जाऊँगा।" यह कह कर रौनक़ चल पड़ा।

रौनक़लाल का घर ग़ाज़ीपुर ज़िले में गंगा के किनारे वीरपुर गाँव में था। वहाँ के ज़मींदार बाबू शिशुपालसिंह इसे बहुत चाहते थे। ज़मींदारी के काम में मानो रौनक़ ही उनका दाहिना हाथ था। ऐसा कोई बुरा काम नहीं जो मालिक की आज्ञा से रौनक़ पूरा न कर सके। दंगा करने में, जाल करने में, झूठा मुक़द्दमा खड़ा करने में, बात न माननेवाली रैयत का सर्वस्व लूटने में, न्याय चाहनेवाली प्रजाओं के घर जलाने में रौनक़

सिद्धहस्त था। कोई मामला मुक़द्दमा दायर होने पर पैरवी का सम्पूर्ण भार उसी के ऊपर रहता था। वह कुछ कुछ क़ानून भी जानता था। फ़ौजदारी और दीवानी आदि क़ानून की हिन्दी-पुस्तकें रौनक़ नित्य देखता रहता था। उसको कुछ यह पहले ही पहल क़ैद की सज़ा नहीं हुई है। एक दफ़े लठैतों को साथ ले एक रैयत का सर्वस्व लूट लेने के अपराध में उसे डेढ़ वर्ष क़ैद की सज़ा हुई थी। यह दस बारह वर्ष की बात है। इस बार उसे जेल होने का कारण यह है कि एक पड़ोसी ज़मींदार के साथ सरहदी तकरार के सबब एक भयानक दंगा हो गया था। उसमें विरुद्ध पक्ष के दो आदमियों का ख़ून हो गया था। घोड़े पर सवार, सरेआम नंगी तलवार हाथ में लिये रौनक़लाल ख़ुद अपनी सेना की पीठ पर था। अपराध साबित होने पर वह दौरा सुपुर्द किया गया। हाकिम ने उसे दस वर्ष द्वीपान्तर-वास की आज्ञा दी। अपील करने पर हाईकोर्ट के दयालु जज ने उस दण्ड के बदले छः वर्ष सपरिश्रम कारावास का हुक्म दिया था।

यथासमय रौनक़ देश को लौटा। गाँव में प्रवेश करके पहले ही सुना कि उसके पूर्व प्रभु शिशुपालसिंह, कोई छः महीने हुए, संसार से बिदा हो गये। उनका बेटा धर्मपालसिंह अब पिता की गद्दी पर है।

रौनक़ ने अपने पुश्तैनी मकान की जगह पर जाकर देखा कि घर गिर पड़ा है। टूटी-फूटी ईंटों का ढेर लगा है। उस

पर कितने ही जङ्गली पेड़-पौधे उपज गये हैं। चौखट, किवाड़, कड़ी, शहतीर आदि लकड़ियाँ खींच खींचकर महल्ले के लोगों ने जला डाली हैं। पूछने पर लोगों से मालूम हुआ कि उसको जेल होने के एक वर्ष बाद उसकी स्त्री अन्न न मिलने के कारण दोनों लड़कियों को लेकर बाप के घर चली गई। कुछ दिनों में वहाँ पर वह मर गई। मामा ने किसी तरह उन दोनों लड़कियों का ब्याह कर दिया है—बाबू शिशुपालसिंह ने भी उस ब्याह में कुछ सहायता की थी।

इस अनिष्ट घटना की ख़बर सुनकर रौनक़ सिर पर हाथ रख हताश हो बैठ गया। कहाँ जाय, क्या खाय, इसका कहीं कुछ ठिकाना नहीं। आख़िर गाँव में उसका एक दूर का नातेदार था—नाम था रसिकलाल—उसी के घर में उसने आश्रय लिया।

दो एक दिन के बाद उसके मन में आया—और लोगों ने भी सलाह दी—कि पुराने मालिक बाबू शिशुपालसिंह के पुत्र धर्मपाल-सिंह के पास जाकर सारी अवस्था जताने पर वे अवश्य ही कुछ सहारा देंगे।

जेल होने से पहले, रौनक़लाल की अपने मालिक के बेटे धर्मपाल से बहुत कम भेंट मुलाक़ात थी। उस समय वह अधिक-तर प्रयाग में रहकर कालेज में पढ़ता था। जब कभी वह तातील में घर आता था तब भी रौनक़ को मुफ़स्सिल में रहने के सबब, उससे भेंट करने का अवसर नहीं मिलता था। इसलिए उसके

स्वभाव की आलोचना करने का सुयोग रौनक़लाल को कभी नहीं मिला। साधारणतया वह जानता था कि इस ज़माने के शिक्षित युवक देवता, गुरु और पुरोहित के प्रति विशेष भक्ति न रखने पर भी लोगों के साथ नैतिक व्यवहार करने में बड़े प्रवीण होते हैं। इसी से उसे कुछ चिन्ता हुई कि नई शिक्षा से शिक्षित ज़मींदार के पास जाकर दरबार करने से कोई फल होगा या नहीं। किंतु पेट की आग बड़ी तीव्र होती है। एक दिन रास्ते में धर्मपाल बाबू को देखकर रौनक़ ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके अपना परिचय दिया।

धर्मपाल बाबू—परिचय देने की ज़रूरत नहीं। मैं तुमको जानता हूँ। कब घर आये ?

"घर आये यही तीन चार दिन हुए हैं। हुज़ूर के पास एक बार आने की बड़ी लालसा लगी थी, परन्तु आने का साहस नहीं होता था।"

"मुझसे कोई काम है ?"

"हुज़ूर से कुछ प्रार्थना करनी है।"

"अच्छा तो किसी दिन आ जाना।"

"एकान्त में बातचीत करने की सुविधा होती है।"

"वही होगा। दिन को तीन चार बजे किसी दिन आ सको तो मज़े में बातचीत होगी।"

दूसरे दिन तीन बजे देवी-देवताओं का स्मरण करके रौनक़ ज़मींदार साहब से मिलने चला। धर्मपाल बाबू उस समय एक

कमरे में छोटी टेबल के नज़दीक कुरसी पर बैठकर "प्राचीन भारत में बन्दूक़ थी या नहीं" इस सम्बन्ध में एक गम्भीर गवेषणापूर्ण पुरातन तत्त्व-विषयक प्रबन्ध लिख रहे थे। उस समय वहाँ और कोई नहीं था। इस प्रबन्ध की रचना में उन्हें अँगरेज़ी की एक पुस्तक और एशियाटिक सोसाइटी की लेखमाला से मदद लेनी पड़ी थी। रौनक़ को देखकर उन्होंने लिखना बन्द करके काग़ज़-क़लम को मेज़ पर रख दिया। नीचे दरी बिछी थी, उसी पर बैठकर रौनक़ बोला—"सरिश्ते के सब कामों की देख-भाल आप स्वयं करते हैं, यह बहुत अच्छी बात है। स्वर्गीय मालिक भी यही करते थे। ऐसा न करते तो सम्पत्ति की इतनी उन्नति कैसे होती? हाँ, अभी किस महाल के काग़ज़ात का मुलाहज़ा हो रहा था?"

बाबू ने मुस्कुरा कर कहा—नहीं, अभी मैं ज़मींदारी का काग़ज़ नहीं देखता था; एक निबन्ध लिख रहा था।

चेहरे पर हर्ष और आश्चर्य का भाव लाकर रौनक़ ने कहा—सही है! काव्य करना क्या सबसे हो सकता है? पहाड़पुर के दीवान जी में अद्भुत सामर्थ्य था। भगवती की स्तुति के वे ऐसे बढ़िया बढ़िया गीत बनाते थे जिन्हें सुनकर लोग भक्ति से विह्वल हो रो देते थे। हुज़ूर किस विषय का काव्य बना रहे थे?

काग़ज़ उलटाते उलटाते बाबू ने कहा—यह गीत कवित्त नहीं है। मैं पुरातन तत्त्व का एक निबन्ध लिख रहा था।

"कौन तत्त्व ?"

"पुरातन तत्त्व।"

"सरकार ! समझ में नहीं आया। यह नया ही शब्द सुन रहा हूँ।"

ज़मींदार बाबू ने कहा—पुराने समय की खोज को ही पुरातन तत्त्व कहते हैं। जैसे यह थोड़ा-सा लिखा है 'प्राचीन भारत में बन्दूक़ थी या नहीं'। मैंने इस निबन्ध में साबित किया है—थी—बल्कि राजा दशरथ के समय में भी लोग तोप-बन्दूक़ चलाना जानते थे।

रौनक़—हुज़ूर ! यह क्या कहते हैं ? नहीं, नहीं। राजा दशरथ के ज़माने में बन्दूक़ कहाँ थी ? बन्दूक़ तो शायद ये अँगरेज़ ही यहाँ लाये हैं। वे लोग तो धनुष-बाण से काम लेते थे। यही तो मैंने रामचरित में और अनेक नाटकों में भी देखा है।

बाबू मन ही मन कुछ ख़ुश होकर बोले—नहीं, प्राचीन भारत में बन्दूक़ थी। रामायण में उसका प्रमाण मिलता है। अयोध्या नगरी का वर्णन करते समय वाल्मीकि ने लिखा है—

"सर्वयन्त्रायुधवती शतघ्नी-शतसंकुला" अर्थात् अन्यान्य अस्त्रों के साथ एक सौ शतघ्नियाँ थीं। शतघ्नी तोप के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। जो एक बार चलाये जाने पर सैकड़ों मनुष्यों का संहार करे वह 'शतघ्नी' है।

यथासाध्य मुँह फैलाकर रौनक़ अचम्भे का भाव दिखाता हुआ बोला—महाराज ! आपने तो मुझे एकबारगी चुप कर

दिया। ताबेदार के पास अब कोई जवाब ही न रहा। ऐं! इतने दिन हम लोगों में यह कोई न जानता था! इसी से तो कहता हूँ, रावण के समान वीर—जिसके पास राक्षसों की ही सेना थी—उसे तीर-धनुष से मार डाला—यह कभी हो सकता है? तोप, बन्दूक़ ज़रूर थी। इतने दिनों तक यह बात कोई नहीं जानता था। जानेगा कहाँ से? अधिकांश लोगों की दौड़ तो भाषा-रामायण ही तक है। हुज़ूर की तरह सब लोग संस्कृत-रामायण थोड़े ही पढ़े हैं? संस्कृत जानकर भी ऐसा निबन्ध लिखना कितने मनुष्य जानते हैं? वाह! वाह! ऐसा ही होना चाहिए। लिखने-पढ़ने की चर्चा रखना बहुत ही अच्छा है। आज-कल तो बड़े बड़े लोगों का यही सिद्धान्त है। जिन लोगों ने अच्छा इल्म हासिल किया है उन लोगों को क्या अब खसरा, खतियान, जमावासिलबाक़ी की बही लेकर सिर खपाना अच्छा लगता है? खूब पक्का होशियार नौकर रख लेने ही से काम चल जाता है। जितने बड़े बड़े ज़मींदार हैं वे सभी आज-कल कलकत्ते की सैर करते हैं। उन्होंने कितनी ही सभायें स्थापित की हैं, कितने ही व्याख्यान दिये हैं और ज्ञान की कितनी ही बातों का प्रचार किया है। कोई कोई तो लाट साहब के कौंसिल के मेम्बर तक हो गये हैं। लाट साहब के पास कौंसल की भाँति स्पीच देते हैं—देश के कितने ही उपकार करते हैं। हुज़ूर ने ख़ासी विद्या लाभ की है, यदि कलकत्ते जाकर कुछ चेष्टा करें तो आप भी कौंसल हो सकते हैं।

सुनहले चश्मे के भीतर से धर्मपालसिंह कुतूहल के साथ रौनक़लाल की ओर देखने लगे। थोड़ी देर चुप रह कर बोले—तुमको मुझसे क्या कहना था ?

रौनक़लाल सिर नीचा करके नह से शतरञ्जी का सूत उधड़ते उधड़ते कहने लगा—

"मैं क्या कहूँगा, आप तो सब जानते ही हैं। मैं जन्म से ही आपके घर का पला हूँ, आप ही का आश्रित हूँ। अपने मुँह से कहना तो डींग मारना है, आपने सुना ही होगा, मैं बूढ़े सरकार का दहना हाथ था। मुझसे बिना सलाह लिये वे कभी कोई काम नहीं करते थे और मैंने भी उनके लिए क्या नहीं किया। यही जो छः वर्ष जेल काट कर आया हूँ, सो किसके लिए ? विलासपुर को तो आप जानते हैं ?"

धर्मपालसिंह—विलासपुर ? वह कहाँ है ?

"विलासपुर आप ही के इलाक़े में है। दुर्गापुर से क़रीब एक मील होगा।"

"होगा, मुझे याद नहीं आता।"

"उस विलासपुर गाँव को महेश चौधरी ने नीलाम में ख़रीद लिया था। भला एक मौरूसी जायदाद को एक आदमी झट ख़रीद ले, क्या यह कभी बरदाश्त हो सकता था ? इस गाँव से सालाना पाँच छः सौ रुपये की आमदनी थी। हमने कौशल से किया क्या—इस विलासपुर के उत्तर कुछ दूर छोटे क़ौम-वालों की दस-पाँच घर की बस्ती थी, हमने उसी को असल

विलासपुर क़ायम किया और लोगों में ज़ाहिर कर दिया कि यही नीलाम हुआ है। और जो असल विलासपुर था उसे दुर्गापुर का एक अंश क़ायम कर दिया। इतना ही नहीं, तेरह चौदह वर्ष की खसरा-बही सब बदल डाली। इसके बाद दारोग़ा को मिला कर १४५ धारा की कार्रवाई करवा दी।"

धर्मपाल बाबू ने कहा—सो क्या ?

ज़मींदार के बेटे की इस अज्ञता से मन ही मन आश्चर्य मान कर रौनक़ ने कहा—आप तो जानते ही होंगे, फ़ौजदारी के क़ानून की १४५ धारा में लिखा है—यदि किसी ज़मीन के दख़ल की बात लेकर दो व्यक्तियों में विवाद हो और शान्ति-भङ्ग की सम्भावना हो तो पुलिस की रिपोर्ट देखकर और दख़ल का सबूत लेकर मैजिस्ट्रेट एक पक्ष का दख़ल साबित करके दूसरे पक्ष से कहेगा 'यदि तुम्हारा हक़ उस ज़मीन पर आता है तो तुम अदालत जाओ, दारोग़ा ने रिपोर्ट दी दख़ल हमारा ही है। उधर मुक़द्दमा दायर हुआ इधर वे लोग मालगुज़ारी वसूल करने आये। हम लोग लाठी, गड़ाँसा, तलवार लेकर मुजाहमत करने गये। खूब मारपीट हुई। उस पक्ष के दो आदमी जान से मारे गये। हम लोगों ने दोनों लाशें छीन कर दो घुड़सवारों को थाने दौड़ा दिया और उन्हें यही इज़हार लिखाने को सिखला दिया कि 'दूसरे फ़रीक़ ने हमारी तरफ़ के दो आदमियों को जान से मार डाला है।' दो घुड़-सवारों को क्यों भेजा, यह तो आप समझ ही गये होंगे ?

धर्मपाल बाबू ने कहा—क्यों ?

"आपकी उम्र नई है, इसी से आप ये सब छक्के-पंजे नहीं जानते। ज़मींदारी चलाने के लिए बहुत पेचीदी बुद्धि की ज़रूरत है। यदि कोई दंङ्गा-फ़साद हो जाय तो जिस पक्ष का इज़हार थाने में पहले लिखाया जाय उसी पक्ष को अदालत में बड़ी सुविधा होती है। जैसे हो थाने में पहले पहुँचना ज़रूरी है। अगर एक ही आदमी थाने में भेजा जाय और दैवयोग से रास्ते में उस पर कोई विपद् आ पड़े, वह बीमार हो जाय, तो दूसरे पक्ष का आदमी थाने में पहुँच कर इज़हार लिखा सकता है। इससे मुक़द्दमा कमज़ोर होने का भय है। इसी लिए दो आदमी भेजे गये। जो हो, थाने में हमीं लोगों का इज़हार पहले पहुँचा। दारोग़ा को बहुत रुपया घूस देकर अपना मुक़द्दमा सच और विपक्षी का मुक़द्दमा झूठ कहकर आख़िरी रिपोर्ट दिलाई। उसी की तरफ़ के मुजरिमों का चालान हुआ। किन्तु धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म होती है—उस पक्ष के सभी लोगों की रिहाई होगई। उलटा मुझी पर मुक़द्दमा चलाया गया। हमीं लोगों को जेल हुआ। ओफ़! इन छः वर्षों में जो कष्ट भोगा है वह आपको क्या बताऊँ। किन्तु आपका नमक खाया था, आप लोगों के लिए जान हाज़िर है, जेल जाना क्या बड़ी बात है। ज़रूरत होने पर फिर जेल जाने को तैयार हूँ। इसमें रौनक़ कभी पीछे पैर देनेवाला नहीं।"

इतना कहकर रौनक़ चुप हो रहा। आशा थी, उसकी वीरता, बुद्धि-कौशल और आत्मत्याग के इस ज्वलन्त वर्णन से धर्मपाल एक-दम हाथ में आ जायगा। किन्तु उसका वैसा कुछ भाव न देखकर वह किञ्चित् निराश हुआ।

धर्मपाल कुछ और ही बात सोचते हुए अपने लिखित प्रबन्ध के पन्ने उलटा रहे थे। उन्हें चुप देखक रौनक़ ने कहा—जेल से आकर देखा, मेरा घर-बार सब गिर पड़ा है। कहीं बैठने को जगह नहीं रही। अत्यन्त शोचनीय अवस्था में पड़ गया हूँ। अब हुजूर यदि कोई काम मेरे हाथ में दें तभी मेरा गुज़ारा हो सकता है।

धर्मपालसिंह—देखो, अब वह ज़माना नहीं है। ज़मींदारों के ऊपर इन दिनों सरकार की बड़ी कड़ी नज़र रहती है। अब दंगा-फ़साद करने में कुशल नहीं है। इसी से मैंने इलाक़े के सब लठैतों को जवाब दे दिया है। क़ानून और अदालत की मदद से जहाँ तक जो हो सकेगा, उसी पर सन्तोष करूँगा।

रौनक़ छोड़नेवाला शख़्स न था। बोला—इस सम्बन्ध में भी आप इस अधम का जोड़ा नहीं पावेंगे। मालिक के समय में मामले-मुक़द्दमे की जितनी कार्रवाइयाँ होती थीं, सबका भार मेरे ही ऊपर था।

धर्मपाल—मामला-मुक़द्दमा देखने के लिए अलबत्ता एक अच्छा आदमी मुझे चाहिए। एक लॉ-एजेन्ट नियुक्त करने का

इरादा है। तुम मामले-मुक़द्दमे का काम अच्छी तरह कर सकते हो?

यह सुनकर रौनक़ का हृदय उत्साह से फूल उठा। वह बड़ी उमङ्ग के साथ कहने लगा—

"यह बात मैं अपने मुँह से क्या कहूँ? मालिक मुझसे जब तब कहा करते थे—'रौनक़, अगर तुम अँगरेज़ी जानते तो वकील होते, फिर तो जैकसन साहब भी तुमसे हार मानते।' मैं अपनी तारीफ़ अपने ही मुँह से क्या करूँ। मेरा काम ही मेरी तारीफ़ का पक्का सबूत है। एक दफ़े की बात कहता हूँ। हुज़ूर के ब्याह के समय सभी गुमाश्तों के नाम एक परवाना जारी हुआ कि हर एक रैयत से सालाना फ़ी रुपये लगान पर एक आने के हिसाब से वसूल करके भेज दें। हलीमपुर में हरिदास एक धन-जन-सम्पन्न ग्वाला था। वह सरकारी रिआया था। गुमाश्ता उससे चन्दा माँगने गया। उस कमबख़्त ने कहा—'जाओ, चन्दा नहीं दूँगा। यह सब बेक़ानूनी है। ज़मींदार की ज़मीन जोतता हूँ सो मालगुज़ारी देता हूँ। चन्दा वसूल करनेवाले वे कौन हैं?'—यह सुनकर मालिक तो मारे क्रोध के एक-दम आग-बबूला हो गये। उन्होंने मुझको बुलाकर कहा—'रौनक़, उस साले बदमाश को तुम बरबाद कर सकते हो? उसकी इतनी हिमाक़त? छोटा मुँह बड़ी बात। मुझे क़ानून को धमकी दिखाता है? साले की सारी सम्पत्ति लूट कर उसके घर में आग लगा सकते हो?' मैंने

हाथ जोड़कर कहा—'धर्मावतार! आपका हुक्म पाने से मैं क्या नहीं कर सकता हूँ। किन्तु इससे भी बढ़कर मैं ऐसा उपाय करता हूँ जिससे वह पाजी आपका इलाक़ा छोड़कर भाग जायगा। बढ़िया बढ़िया ज़मीन वह बहुत थोड़ी जमाबन्दी में दबाये हुए है। उस ज़मीन का यदि दूसरे किसान के साथ बन्दोबस्त कर दिया जाय तो बहुत ज्यादा मालगुज़ारी वसूल हो सकेगी।' आख़िर सोच-विचार कर मैंने उसके नाम का सोलह सौ बासठ रुपये का तमस्सुक बनाया।"

धर्मपाल—जाल किया।

"हाँ, हुजूर जो कहें। ज़मींदारी की रक्षा करने के लिए यह सब न हो तो काम कैसे चले?"

"इसके बाद।"

"इसके बाद उस तमस्सुक का मुक़द्दमा दायर हुआ। पेशी के तीन चार दिन पहले ही से मैं सब साक्षियों को सपरिश्रम तालीम देने लगा। उस तरफ़ से जो जिरह होगी उसका उत्तर भी सोच सोचकर उनको सिखा दिया था। कहाँ बैठकर तमस्सुक लिखा गया; कै बजे लिखा गया; दावात-क़लम कौन लाया; क़लम कैसा था; लिखनेवाला किस ओर मुँह करके बैठा था; कातिब की उम्र क्या थी; उसका रङ्ग कैसा था; पहले मसविदा बना लिया या एकबारगी लिखा; किस रंग का कुरता पहिरे था, सिर पर टोपी थी या मुरैठा इत्यादि प्रश्नों का एक-सा उत्तर सब गवाहों को सिखा पढ़ाकर ठीक

किया। मुक़द्दमा खूब मार्के के साथ चला। सब गवाहों को मैंने पहले ही सिखा दिया था—पूछने पर कहना कि 'हरिदास ने लकड़ी के क़लम से सही की थी।' प्रथम साक्षी ने यही कहा। दूसरा गवाह जिरह करने पर हतबुद्धि हो गया, वह कह बैठा कि लोहे के क़लम से सही की थी।—मन में कहा, बस, मामला बिगड़ गया। धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। किन्तु झट एक बात सूझ गई। चटपट बाहर गया जहाँ बड़ के पेड़ के नीचे और सब गवाह बैठे थे। उन्हें मैंने सिखा दिया कि अगर पूछें तो कहना, लकड़ी के भोंथरे क़लम के मुँह में लोहे का निब लगाकर हरिदास ने दस्तख़त किया था। उसका वकील भी गधा था। दो साक्षियों में इतना बड़ा फ़र्क़ पाकर उसे यहीं छोड़ देता। सो नहीं, उसने तीसरे साक्षी से भी यही प्रश्न किया। जिस जिससे पूछा गया, सबों ने वही उत्तर दिया। वकील का मुँह काला होगया। मुझे डिगरी मिली। वह रुपया नहीं दे सका। उसका घर-द्वार, खेत-बाड़ी, सब नीलाम करा कर गले में हाथ दे उस बदमाश ग्वाले को अपनी ज़मींदारी से निकाल दिया।"

धर्मपाल—क्या उसकी ओर से दस्तख़त भी तुम्हीं ने बनाया था!

"हाँ हुजूर। हरिदास गोप के जवाबदावे पर और वकालत-नामे पर उसका जो हस्ताक्षर (दस्तख़त) था उससे हाकिम ने मिला कर देखा तो ठीक एक-सा मिल गया।"

धर्मपाल बाबू ने आश्चर्यभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। फिर पूछा—क्या तुम दूसरे के दस्तख़त की ठीक नक़ल कर सकते हो ?

रौनक़ ने उत्साहपूर्वक कहा—जी हाँ—हूबहू। आप दस्तख़त कीजिए, मैं उसकी नक़ल किये देता हूँ।

धर्मपाल ने एक काग़ज़ लेकर उस पर अपना नाम लिख दिया। रौनक़ ने उसे अच्छी तरह ध्यान से देखा और पाँच मिनट के भीतर बजिन्स नक़ल कर दी। यह देखकर धर्मपालसिंह स्तब्ध हो गये। रौनक़ ने समझा, बाबू साहब का मन इस बार ज़रूर कुछ पिघला है।

कुछ क्षण के अनन्तर धर्मपालसिंह बोले—आश्चर्य की बात है। तुमने यह विद्या कैसे सीखी ?

अपनी प्रशंसा से संकुचित होकर मीठी हँसी हँसता हुआ रौनक़ बोला—हुज़ूर! यह मेरी एक ईश्वरदत्त शक्ति है। मैंने इसे सीखा नहीं।

कुछ देर चुप रहकर रौनक़ ने पूछा—तो हुज़ूर का हुक्म क्या होता है ?

धर्मपालसिंह ने कहा—अच्छा, एक सप्ताह के बाद आओ, तब हुक्म दूँगा।

"जो आज्ञा धर्मावतार" कह कर रौनक़ उठा और बाबू को सलाम करके प्रसन्न मुख से घर गया।

उसके चले जाने पर धर्मपाल बाबू ने अपने दीवान को बुला

भेजा। दीवान के आने पर पूछा—हल्लीमपुर के हरिदास ग्वाले को आप जानते हैं ?

"जी हाँ।"

"अब वह कहाँ रहता है ?"

"उसकी जगह-ज़मीन सब हमने एक डिगरी के द्वारा नीलाम करा कर ख़रीद ली थी। इसके बाद वह हमारा इलाक़ा छोड़ कर आज़मगढ़ ज़िले में अपने मामा के घर रहने लगा है।"

"आप उसका पता ठिकाना जानते हैं ?"

"जी हाँ।"

"अच्छा, उसके उस मुक़द्दमे के काग़ज़ात मेरे पास अभी भेज दीजिए।"

मुक़द्दमे के काग़ज़-पत्र देखकर दूसरे दिन सबेरे धर्मपालसिंह ने दीवान को हुक्म दिया—एक विश्वस्त कर्मचारी भेजकर हरिदास को छः दिन के भीतर बुलवा दीजिए। और देखिए, यह बात किसी पर ज़ाहिर न होने पावे।

छठा परिच्छेद

रौनक़ बड़ी गम्भीरता से पैर उठाता हुआ घर आया। रसिकलाल ने पूछा—कहो, रौनक़, क्या हुआ? बाबू का स्वभाव कैसा है?

रौनक़—छिः छिः। लिखा पढ़ा आदमी भी कहीं ऐसा जन्तु होता है?

"कैसा?"

"यह तुम्हारा धर्मपाल बाबू, कहते हो बहुत कुछ पास वास कर चुका है—किन्तु ज़मींदारी के काम में बिलकुल ही बैल है। ज़मींदार की ओर से जितने लठैत नियुक्त थे उन सबको इसने बरतरफ़ कर दिया। कहा है कि क़ानून और अदालत से जहाँ तक जो हो सके वही अच्छा है। दङ्गा-फ़साद करके प्रजा-शासन करना ठीक नहीं।"

रसिक ने कहा—"प्रजा के ही हितार्थ ऐसा किया है।"

रौनक़ ही ही कर हँस उठा। बोला—प्रजा के लिए नहीं—प्रजा के हितार्थ नहीं। हाँ, वकील-मुख़्तारों का इसमें ख़ूब बन आवेगा। मान लो, एक रैयत के पास मालगुज़ारी बाक़ी है, मालिक उपद्रव करने नहीं देता, आख़िर अदालत की शरण लेनी पड़ेगी। बूढ़े मालिक के समय में प्यादे भेज उसे हाथ बाँधकर

पकड़वा मँगाते थे और जूते के हाथ से मालगुज़ारी वसूल कर लेते थे। पैसे दो पैसे की चूना-हल्दी ख़र्च करने ही से किसान की पीठ का दर्द जाता रहता था। इसमें ज़मींदार की आधी पाई भी ख़र्च नहीं होती थी। अब सुशिक्षित पुत्र की अमलदारी में क्या होगा जानते हो? मान लो, एक किसान के पास तीन वर्ष का तीस रुपया लगान बाक़ी है। उसके लिए सदर में जाकर मुन्सिफ़ी में नालिश दायर करनी होगी। वकालतनामे के लिए पहले ही दो रुपये चाहिए; आठ आना वकील के मुहर्रिर की तहरीर के हुए, कोर्टफ़ीस दो रुपये नौ आने और पेशकार साहब को एक रुपया। गवाह-ख़र्च अलग ही रहा। मज़कूरी सम्मन तामील करने आवेगा तो उसे एक रुपया, नहीं तो आठ आना अवश्य देना होगा। इसके बाद पेशी के दिन किसान अपनी गृहस्थी का काम छोड़ कर कचहरी को दौड़ा गया। मुख़्तार अगर ईमान के पूरे मिल गये तो उन्होंने राय दी—'जवाब दे दो कि मैं साल ब साल कौड़ी कौड़ी लगान देता आया हूँ; ज़मींदार का पटवारी रुपया हड़प कर लेने की नीयत से रसीद-फ़ारख़ती नहीं देता था।" अब और भारी बखेड़ा खड़ा हुआ। कदाचित् रैयत हार गई तो मय डैमेज मुक़द्दमे का जायज़ ख़र्च और डिगरी सब मिलाकर तीस रुपये की जगह साठ पैंसठ रुपये हुए। प्रजा ने हल, बैल बेच कर डिगरी अदा कर दी—नहीं तो जगह ज़मीन सब नीलाम पर चढ़ गई। कहो बाबू यह अच्छा या वह? दो जूते मार कर लगान वसूल करना

बेहतर है या इतना बड़ा झंझट उठाना ? रैयत के हक़ में भी दो जूता खाना सर्वस्व गँवाने की अपेक्षा कहीं अच्छा है।

रसिकलाल ने कहा—दृष्टान्त तो तुम खूब सोच कर अपने मन के मुताबिक़ ढूँढ़ लाये हो, किन्तु यह तो कहो कि ज़मींदार क्या सिर्फ़ बाक़ी मालगुज़ारी के ही लिए प्रजा के ऊपर अत्याचार करता है ? कितने लोगों को भगा कर उसका घर-बार ज़ब्त कर लेता है—कितनी ही प्रजाओं की ज़मीन छीन कर अपने क़ब्ज़े में कर लेता है—जितना पाना चाहिए उससे अधिक रुपया कितनी ही प्रजाओं से ज़बरदस्ती, ज़ोर ज़ुल्म करके, वसूल कर लेता है। क्या यह सब प्रजा की भलाई के लिए किया जाता है ? ऐसे अत्याचारों से प्रजा का क्या उपकार होता है—बता सकते हो ? अच्छा, इन बातों को जाने दो—कहो, तुमको बाबू साहब से कुछ आशा मिली ?

"हाँ मिली है—परन्तु बहुत चतुराई दिखाने और अपने कला-कौशल की परीक्षा देने के बाद।"

"कैसी परीक्षा ?"

तब रौनक़ ने खूब बढ़ा चढ़ा कर, धर्मपाल बाबू के साथ जो बातचीत हुई थी उसका कुछ अंश सुनाकर कहा—मामले मुक़द्दमे में मेरी बुद्धि की विलक्षणता देखकर ही बाबू का मन द्रवित हुआ। जब वे क़ानून और अदालत के ऊपर ही सब निर्भर करेंगे तब मुन्शी रौनक़लाल के न रहने से उनका काम नहीं चलेगा। मालूम होता है, यह आप अच्छी तरह समझ गये।

रसिकलाल ने कहा—अच्छा हुआ। बहुत समय से तुम इस घर से प्रतिपालित हुए हो। इस अवस्था में अब कहाँ जाओगे? किन्तु बूढ़े मालिक के समय में जैसे तुम दोनों हाथों से लूटते थे वैसा इसके समय में नहीं कर सकोगे। यह बड़ा ही होशियार लड़का है। बारह रुपया महीना देकर कालेज में पढ़ा है, आईन क़ानून सब जानता है।

"आईन क़ानून? इस विषय में तो बिलकुल ही कोरा है"—कह कर रौनक़ मुट्ठी बाँध अँगूठे को बार बार हिलाने लगा। फिर बोला—"इसी को होशियार कहते हैं! विलासपुर के दख़ल के सम्बन्ध में जब मैंने दंगा होने की बात कही तो बाबू साहब पूछ बैठे, विलासपुर कहाँ है? छिः छिः अपने इलाक़े में कहाँ कौन मौज़ा है, यह भी अभी तक नहीं जानते हैं। दिन भर बैठे बैठे निबन्ध लिखने से क्या होगा। पुराने समय में बन्दूक़ थी या नहीं, दशरथ महाराज के पास कितनी तोपें थीं, इन बातों की गवेषणा में समय बिताना कौन-सी होशियारी है? सत्ययुग-त्रेता की बात ढूँढ़ेंगे और घर की बात जानेहींगे नहीं। विलायत में कहाँ क्या है, इसका नक़शा हृदय-पट पर लिखा है और अपनी ज़मींदारी में कहाँ क्या है, इसकी ख़बर ही नहीं।" कह कर रौनक़ फिर अँगूठा हिलाने लगा।

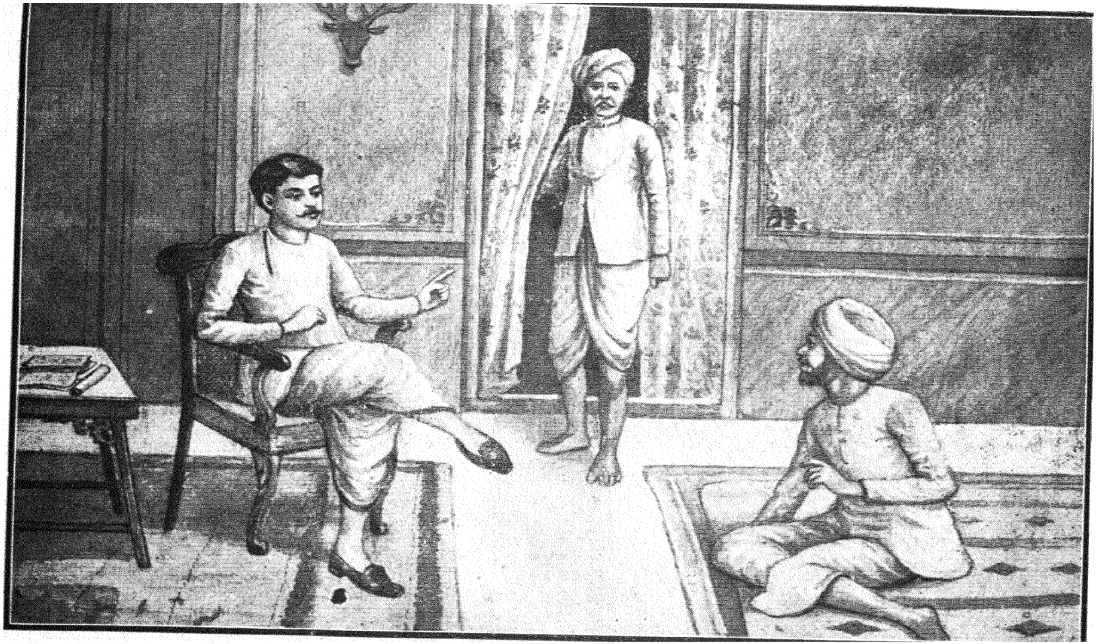
रसिकलाल ने कहा—ख़बर नहीं—ख़बर रक्खेगा, ज़रूर रक्खेगा—अभी छः महीने से ही तो ज़मींदारी का काम देखना आरम्भ किया है। उसे तुम सहज ही नहीं ठग सकोगे।

"नहीं ठग सकूँगा ? अच्छा बाज़ी रक्खो। मैं कहता हूँ, बूढ़े सरकार के समय में जो काम किये हैं उनसे बढ़कर इसके समय में करूँगा—कम नहीं करूँगा। रोग समझ कर दवा की जाती है। बहाल होते ही पहले हाथ जोड़ कर यही कहूँगा—हुज़ूर, धर्मावतार! आपसे एक निवेदन है। बाबू कहेंगे—क्या ? मैं कहूँगा—'हुज़ूर ! आपके पिता जी के समय में मुझे पाँच ही रुपया महीना मिलता था। बाल-बच्चे खानेवाले थे। पाँच रुपये में कैसे पेट भरता ? इसी से जान-बूझ कर अन्याय से उपार्जन भी करना पड़ता था। रैयत से ज़बरदस्ती कुछ ज्यादा कर वसूल करके खाता था। सदर में मुक़द्दमा दायर करने जाता तो वकील-मुख़्तारों को जो फ़ीस देता था उसमें से कुछ कुछ दस्तूरी मिलती थी। वह क्या वे अपने घर से देते थे ? ज़मींदार से ही लेकर मुझे देते थे। क्या करता, पेट माननेवाला नहीं। किन्तु हुज़ूर की अमलदारी में जैसा कड़ा इन्तज़ाम देख रहा हूँ उससे उपाय नहीं सूझता कि कोई अधर्म करके कुछ पैसा हासिल कर सकूँ। इसलिए प्रार्थना है कि मेरा ऐसा मासिक नियत कर दिया जाय जिससे ताबेदार धर्ममार्ग पर रह कर अपना पेट भर सके।' यह सुन कर बाबू साहब प्रसन्न हो एक-दम घुल जायँगे। वे पचास, नहीं तो चालीस रुपया वेतन मुझे अवश्य देंगे।"

रसिकलाल ने कहा—बूढ़े मालिक के समय में तो तुम इससे भी ज्यादा रुपया कमाते थे।

"सुनो, इससे यह मत समझो कि मैं उतने ही मासिक पर निर्भर रहूँगा? मासिक तो हुआ मेरी ऊपर की आमदनी। इसके सिवा वकील की फ़ीस से जो कमीशन पाता था वह मेरा हक़ कहाँ जायगा? वकील से पहले सैकड़े पीछे पचीस रुपया कमीशन मिलता था। अब वकीलों की संख्या इतनी बढ़ गई है—वकीलों में मामलों के लिए इतनी चढ़ा-ऊपरी हो गई है कि अब यदि फ़ीस का आधा कमीशन लेना चाहें तो वे ख़ुशी से दे सकेंगे।"

सात दिन के बाद बाबू ने आने को कहा था। ये सात दिन रौनक़ के लिए सात युग हो गये। वह सबसे यह कहता हुआ घूमने लगा कि "बाबू साहब ने उसे पचास रुपया मासिक पर मामले-मुक़द्दमे की पैरवी के लिए बहाल किया है। इधर काम आरम्भ करने का मुहूर्त अच्छा नहीं बना, इसलिए बाबू साहब के हाथ-पैर जोड़कर, किसी तरह उन्हें राज़ी करके, सात दिन की छुट्टी ली है। सात दिन के बाद उनकी सेवा में रहना ही होगा।" उसने जिससे रुपया क़र्ज़ माँगा उसी ने डर से उसे क़र्ज़ दे दिया। इस प्रकार उसने पचास साठ रुपया जमा किया। इधर उसकी भविष्य-योग्यता और उन्नति की सम्भावना देखकर रसिकलाल के घर में भी उसका आदर बढ़ गया। समय पर जलपान मिलने लगा। भोजन में घी, दूध और शक्कर की मात्रा बढ़ गई। इस बीच में एक दिन आज़मगढ़ जाकर रौनक़ ने वकीलों से भी भेंट की। अपनी असाधारण पद-प्राप्ति



बग़लवाली कोठरी से परदा हटाकर हरीदास ग्वाला झट आ पहुँचा।—पृ० ६२

का वर्णन करके कहा—शीघ्र ही कई एक बड़ी बड़ी नालिशें दायर होंगी। हर एक वकील से पूछा—अर्ज़ीदावे का मसविदा तैयार करने के लिए अगले रविवार को आने से वकील साहब को फ़ुरसत रहेगी न? उठते समय किसी वकील से कहा—एक जोड़ा धोती ख़रीदने की ज़रूरत थी; किसी से कहा—एक जोड़ा जूता मोल लेना है; किसी से कहा—कोट सिलवाने की बड़ी आवश्यकता है; और किसी से कहा—छाता नहीं ख़रीदने से नहीं बनेगा—किन्तु क्या करें घर से आते समय जल्दी में रुपया लाना भूल गया। कुछ रुपया उधार मिल जाता तो रविवार को लौटा देता। इस तरह प्रत्येक वकील से कुछ कुछ रुपया लेकर जूता, कुरता, धोती, छाता आदि ख़रीद कर रौनक़ घर लौट आया।

इधर सप्ताह बीता। नौकरी मिलने पर गाँव की सिद्धेश्वरी भगवती को जोड़ा बकरा बलि देने की मन्नत करके रौनक़लाल ज़मींदार के यहाँ गया।

पूर्वकथित कमरे में धर्मपालसिंह कुरसी पर बैठे थे। रौनक़ उन्हें प्रणाम करके, विनीत भाव से, नीचे फ़र्श पर बैठ गया।

दो एक बात होने के अनन्तर धर्मपालसिंह एक बंडल खोल कर उस तमस्सुक की नक़ल और उसके सम्बन्ध के और काग़ज़ात निकाल करके कहने लगे—वाह! तुम्हारी क्या बहादुरी है! सरिश्ते से कितने ही काग़ज़ात मँगाकर उनकी पीठ पर हरिदास

के किये हुए कई एक दस्तख़तों से मिलान कर देखा तो तमस्सुक की सही हूबहू मिल जाती है।

रौनक़ आनन्द से फूल कर बोला—ये सब दस्तख़त देखकर ही तो मैंने तमस्सुक पर वह जाली सही की थी।

धर्मपाल—जिस समय तुमने जाल किया था उस समय के पाँच साल पहले यह स्टाम्प पेपर बिका था। इस पर मोल लेने की वही तारीख़ देखता हूँ। तुमने इतना पुराना काग़ज़ कहाँ पाया?

"हर साल, दर्जन के दर्जन अनेक मूल्य के स्टाम्प पेपर ख़रीद कर घर में रख देता था। कौन जानता है, किस समय कितने वर्ष के पुराने काग़ज़ की ज़रूरत हो पड़े।"

"अच्छा, और रोशनाई? नई रोशनाई से लिखा था न? अदालत को सन्देह नहीं हुआ?"

रौनक़ ने मुस्कुरा कर कहा—उसका भी उपाय है। काग़ज़ लिख कर कुछ दिन तक बिना साफ़ किये हुए चावलों के बीच रखना पड़ता है। चावलों का मैल लग कर स्याही और काग़ज़ का रङ्ग बदल जाता है। दोनों मुद्दत के पुराने-से दीख पड़ते हैं।

धर्मपाल बाबू ने मुस्कुरा कर धीमे स्वर से पुकारा—हरिदास।

बग़लवाली कोठरी से परदा हटाकर हरिदास ग्वाला झट आ पहुँचा।

धर्मपाल ने कहा—क्यों जी रौनक़, यही वह हरिदास है ?

रौनक़ का मुँह पीला पड़ गया। उसकी आँखें भयभीत हो गईं। जल्दी जल्दी साँस चलने लगी। सारा शरीर पसीने से भीग गया। उसे मालूम हुआ, मानों एक बे-सोची हुई विपद् उसे निगलने के लिए दौड़ी आ रही है।

धर्मपालसिंह ने कहा—पहचानते हो न, यह वही हरिदास है जिसका सर्वस्व जाल करके नीलाम करा लिया था ?

रौनक़ हतबुद्धि होकर कष्ट से बोला—जी हाँ।

धर्मपाल ने कहा—हरिदास, हम लोगों के द्वारा तुम्हारे ऊपर जो अत्याचार हुआ है उसके लिए मैं बहुत दुखी हूँ। यदि तुम्हारा जी चाहे तो फिर आकर मेरी ज़मींदारी में रहो। मैं तुम्हारा सब प्रबन्ध कर दूँगा। अपनी तरफ़ से घर बनवा दूँगा।

हरिदास ने बड़े विनीत भाव से कहा—"हुज़ूर बड़े ही दयालु हैं, हुज़ूर ग़रीब के माँ-बाप हैं। मेरी उम्र यदि और भी दस वर्ष कम होती, तो वहाँ से आकर इस रामराज्य में रहने लगता। किन्तु अब बूढ़ा हो गया हूँ। वहाँ कुछ ननिहाल की सम्पत्ति भी मिली है। उसी से किसी तरह बाल-बच्चों का निर्वाह कर रहा हूँ। इस उम्र में गृहस्थी हटा कर आना बड़ा ही कष्टकर होगा" कह कर हरिदास हाथ जोड़ कर खड़ा होगया।

धर्मपालसिंह ने पूछा—अब तुम कहाँ रहते हो ?

"आज़मगढ़ ज़िले के शङ्करपुर गाँव में।"

"वहाँ का ज़मींदार कौन है ?"

"कमलपुर के लाला साहब। वे दो भाई हैं। बड़े गोपीकान्त बाबू ही ज़मींदारी देखते हैं।"

"अच्छा, यदि तुमको सुभीता है तो वहीं रहो। हम लोगों के द्वारा जो तुम्हारी क्षति हुई है उसकी यत्किञ्चित् पूर्ति के लिए तुम्हें ५००) देता हूँ। ख़ज़ानची के नाम यह हुक्मनामा लिख दिया है। कचहरी से रुपया लेकर घर चले जाना।"

हरिदास ने आनन्द से विह्वल होकर धर्मपाल की चरण-रज ली।

तब धर्मपाल ने रौनक़ की ओर मुँह करके कहा—"इस जीवन में तुमने अनेक बुरे काम किये हैं। मैं तुम्हें अभी पुलिस के हाथ में दे देता किन्तु तुम हाल ही में छः वर्ष जेल काट आये हो। इसी से अभी तुमको छोड़ दिया। परन्तु तुम्हें यही हुक्म है कि तुम चौबीस घंटे के भीतर मेरा इलाक़ा छोड़कर चले जाओ। जो कभी सुन पाऊँगा कि तुम मेरे इलाक़े की भूमि को अपवित्र कर रहे हो तो हरिदास ग्वाले से तुम पर जाल करने की नालिश दायर करा दूँगा। मेरे सामने तुमने जो जो बातें स्वीकार की हैं, मैं ख़ुद उसकी गवाही दूँगा।" इसके बाद हरिदास की ओर घूम कर बोले—"क्यों जी, मेरी चिट्ठी पाकर तुम नालिश दायर कर सकोगे न ?"

"जी हाँ, यदि जीता रहूँगा तो आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा।"

"अच्छा, तो अब तुम दोनों आदमी जा सकते हो।"

रौनक़ ने घर लौट कर कहा—बाबू लोगों का स्वभाव बड़ा ही विचित्र होता है। एक हफ़्ते तक मुझे बिठा रक्खा। आज वहाँ जाकर दो घंटे तक उनके इन्तज़ार से बैठा रहा तो भी बाबू से भेट न हुई।

खा-पीकर रौनक़ चटाई पर लेट रहा, पर नींद न आई। रात गहरी होने पर जब सब लोग सो गये तब, धीरे धीरे उठ कर जो कुछ थोड़ा बहुत अपना असबाब था उसकी गठरी बाँध, कन्धे पर रख पैदल ही गाँव छोड़ कर भाग चला। उसके मन में निश्चय होगया कि संसार में सबसे बढ़कर उसका दुश्मन हरिदास ग्वाला है। बाबू के न कहने पर भी, वह जब चाहे, जाल का मुक़द्दमा दायर कर सकता है। अगर बाबू नालिश करें तो हरिदास ही औवल गवाह होगा। हरिदास जब तक ख़ुद आकर न कहेगा कि इस तमस्सुक पर मेरा दस्तख़त नहीं है तब तक मुक़द्दमा साबित न होगा। इस-लिए शत्रु का दबाना आवश्यक है और इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए, हरिदास के ज़मींदार, कमलपुर के गोपीकान्त बाबू की मातहती में रहकर काम करना ही उत्तम उपाय है।

यह समाचार पाठक पहले ही पढ़ चुके हैं कि रौनक़ ने कमलपुर पहुँचकर गोपीकान्त बाबू से भेंट की है।

सातवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू की स्त्री का नाम मनोरमा है। उम्र उसकी तीस वर्ष की होगी। उसके एक बेटा और एक बेटी है। बेटे का नाम है नन्दलाल। वह कोई आठ वर्ष का होगा। बेटी का नाम प्रभावती है। पाठकों ने उसे पूर्व परिच्छेद में देखा ही है।

मनोरमा का स्वभाव बड़ा ही कोमल है। रुष्ट होते उसे प्रायः कभी किसी ने नहीं देखा। मन में कोई दुःख होने पर वह उसे मन में ही छिपा रखती है—मुँह पर नहीं लाती। परम आत्मीय व्यक्ति को छोड़ दूसरा कोई उसके हृदय की गुप्त वेदना की बात नहीं जानता। हर्ष में भी यही हाल है। शुभ अवसर में वह उतावली नहीं होती। हर्ष का कारण उपस्थित होने पर भी आनन्द से फूल नहीं जाती।

घर में गोपीकान्त बाबू की फूफी रहती है—वही घर की मालकिन है। मनोरमा उसकी अधीनता में रहकर चलती है। हृदय से उसकी भक्ति करती है। किसी दिन ऐसा भाव प्रकाश नहीं करती कि वह ज़मींदार की गृहिणी है और पति की फूफी उसकी आश्रिता है।

मनोरमा उस दिन सीढ़ी से नीचे उतर, एक कोठरी में गई और शीतल-पाटी बिछाकर लेट गई। लेटे लेटे आकाश-पाताल की कितनी ही बातें सोचने लगी। देवर ने जो कहा

उसका क्या अर्थ है ? स्वामी ने जो देवर को कुछ उलटी सीधी बातें कही थीं उन्हीं का क्या अर्थ था ? देवर ने तो कुछ खुलासा कहा नहीं, "यदि आप बुरी संगत न छोड़ेंगे"—कैसी संगत ? किसकी संगत ? बुरा कौन ? क्या कोई दुश्चरित्र व्यक्ति उनका साथी मिल गया है ? कौन साथी ?—मनोरमा ने बहुत सोच विचार कर देखा, पर किसी बात का कुछ अन्त न पाया। गाँव में उनके मित्रों में तो एक कामिनीकान्त और एक कुमुद-चन्द्र हैं। यही दोनों बैठक में आकर प्रायः उनके साथ चौसर खेलते हैं। किन्तु कभी तो कुछ गड़बड़ बात सुनने में नहीं आती एक मित्र और हैं, वे सुमेरपुर के ज़मींदार हैं। गत वर्ष दोलोत्सव के समय वे बाग़वाले मकान में तीन चार दिन ठहरे थे। वे जब तक वहाँ रहे, मेरे स्वामी भी उन्हीं के साथ रहे। एक दिन के लिए भी घर नहीं आये। ग़प सुनी गई थी कि एक दिन नशे में चूर होकर सीढ़ी से उतरते समय सुमेरपुर के ज़मींदार तलमला कर गिर पड़े, जिससे उनके सिर में सख़्त चोट लगी थी। डाक्टर बुलवाया गया था। किन्तु यह तो नहीं सुना कि उनके साथ मिलकर स्वामी ने कोई अनुचित कर्म्म किया है। दोलोत्सव के बाद और भी दो तीन दफ़े सुमेरपुर के बाबू वाटिका-भवन में आकर रहे थे। किन्तु उनके आने से मेरे पति प्रसन्न तो नहीं, अप्रसन्न अवश्य होते थे। काशी और कलकत्ते के बाबू लोग अपने अपने बाग़ों में जाकर अनेक प्रकार के मनमाने काम करते हैं—मनोरमा इस बात को जानती थी।

वह मन ही मन प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन्! यदि यह अपवाद सत्य ही हो तो तुम मेरे स्वामी के ऊपर दया करो। उन्हें अच्छी बुद्धि दो—उनका कल्याण करो, जिसमें यह लज्जा की बात प्रकट न हो। उनका यह कलङ्क धो डालो। उनकी रक्षा करो—रक्षा करो।

इसी समय नूपुर झमझमाती हुई बेटी प्रभावती उस कोठरी में आई। माँ को उस अवस्था में देखकर वह बोल उठी—माँ, क्या तुम्हें दर्द होता है।

मनोरमा—नहीं बेटी, मुझे कुछ नहीं होता।

"तो तुम्हारा मुँह ऐसा उदास क्यों देखती हूँ? दोनों आँखें डबडबाई हुई क्यों हैं?"—कहते कहते प्रभा माँ के घुटने से सट कर बैठ गई। दया, प्रेम और भय से भरे हुए नेत्रों से वह उसके मुँह की ओर देखने लगी।

मनोरमा बड़े प्यार से बेटी के कन्धे पर हाथ रख कर बोली—मेरा जी आज अच्छा नहीं है। तूने अभी तक नहाया क्यों नहीं? बहुत बेर हो गई।

प्रभा ने मन में कहा कि आज सबेरे काका ने जो ब्याह करने में अनिच्छा प्रकट करके बाबू जी के साथ झगड़ा किया है, उसी से शायद माँ का मन ख़राब हो गया है। "आज मैं स्नान नहीं करूँगी। सिर्फ़ देह धो डालूँगी। तुम अब देरी मत करो, झटपट स्नान कर डालो।" कह कर उसके जूड़ा में उँगली डाल कर बाल खोलने लगी।

इतने में फुफिया सास पहुँची। उसने कहा—बहू, बहू, तुम अब तक बैठी ही हो—दो पहर हो गये। अब भी स्नान करने नहीं गईं ? आज नहाते खाते कितनी बेर होगी, उसका ठीक नहीं। झटपट स्नान करके कुछ खाकर पानी पी लो।

इस समय नन्दलाल दौड़ कर माँ की गोद में आ बैठा। उसके गले से लिपट कर बोला—माँ, मेरे कुत्ते को एक रोटी दोगी ? वह बड़े चाव से रोटी खाता है।

बेटे-बेटी की प्रेमभरी बातों ने मनोरमा के दुःखित हृदय में कुछ शान्ति उत्पन्न की। तब उसने उठ कर स्नान-भोजन आदि किसी तरह किया।

गोपीकान्त आज बाहर के ही कमरे में भोजन करके वहीं आराम करने लगा। दिन भर अन्दर नहीं गया।

साँझ होने पर गोपीकान्त बाबू ने शयन-गृह में आकर कपड़े बदल डाले। उसी समय मनोरमा आकर बोली—क्या कहीं टहलने जाते हैं ?

गोपीकान्त—हाँ, बग़ीचेवाले मकान में जाता हूँ।

"आज एकाएक—ऐसे असमय में ?"

"स्वास्थ्य ठीक नहीं है। दो एक दिन वहीं रहकर जी बहलाऊँगा।"

मनोरमा ज़रा चुप रह कर बोली—तो मुझे भी साथ ले चलिए न ?

गोपीकान्त ने आश्चर्य के साथ कहा—तुम बाग़ीचेवाले

मकान में चलोगी ? तुम्हारा यह कैसा विचार है ? तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?

"आपके पास रहूँगी। आपका शरीर अच्छा नहीं है इसलिए आपकी सेवा-शुश्रूषा करूँगी।"

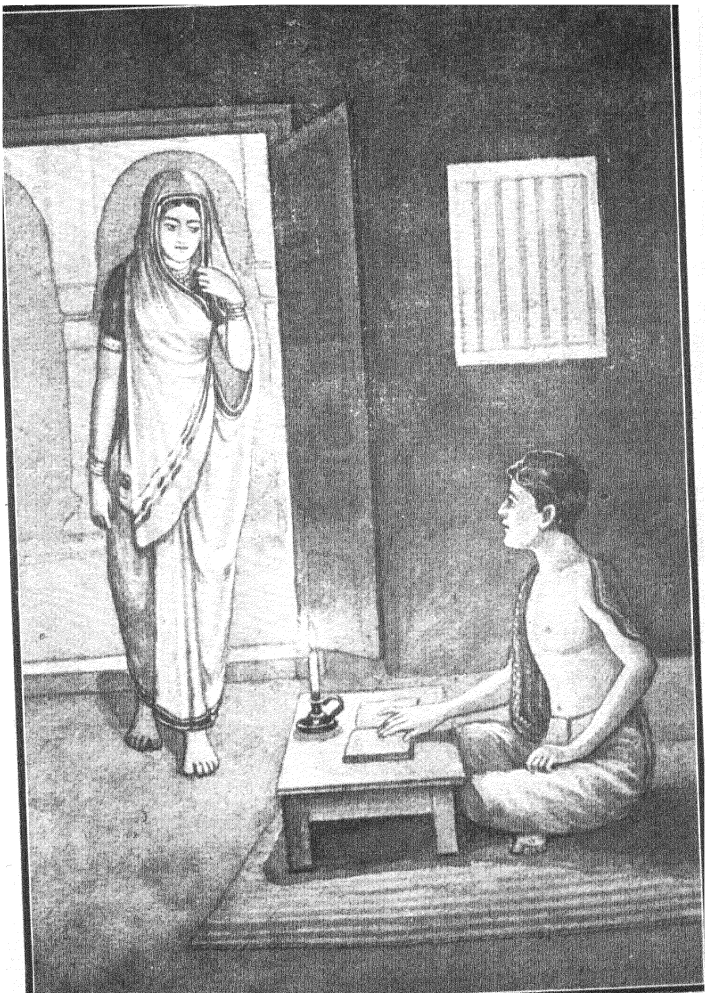
गोपी बाबू के मुँह पर उदासी छा गई। उसने कहा—नहीं, नहीं, हिन्दू घर की बहू-बेटियाँ क्या कभी बाग़ीचे के बँगले में जाती हैं ? क्या तुम मेम साहिबा हो गईं ?

मनोरमा—क्यों ? क्या बाग़ीचेवाले मकान में हिन्दू स्त्रियों का जाना मना है ? स्वामी के साथ स्त्री जहाँ चाहेगी जायगी—इसमें दोष क्या है ?

गोपीकान्त विषम दृष्टि से स्त्री के मुँह की ओर देखकर सोचने लगा—मामला क्या है ? फिर कुछ कड़ी आवाज़ में कहा—नहीं, तुम नहीं जा सकतीं।

किन्तु उसकी स्त्री ने किसी तरह उसका साथ छोड़ना नहीं चाहा। आख़िर गोपीकान्त ने, पुरुष को जैसा चाहिए वैसा क्रोध के साथ, गरज कर—"मेरा हुक्म तुम्हें मानना पड़ेगा। तुम हर्गिज़ नहीं जा सकती हो" कहा और वहाँ से चला गया।

उसके चले जाने पर मनोरमा बड़ी देर तक उस कोठरी में अकेली बैठी रही। फिर उठकर, आँखें पोंछकर धीरे धीरे मोतीलाल की कोठरी के सामने जा खड़ी हुई। देखा कि मोतीलाल सायंकालिक कृत्य करके बत्ती बालकर पढ़ने का ठीक



आँखें पोंछ कर धीरे धीरे मोतीलाल की कोठरी के सामने जा खड़ी हुई।—पृ० ७२

ठाक कर रहे हैं। मनोरमा वहाँ जाकर संकुचित भाव से बोली—छोटे बाबू, मैं यहाँ बैठूँ ?

"बैठिएगा ? अच्छा आइए, बैठिए" कह कर मोतीलाल ने अपनी चटाई के नज़दीक ही भावज के लिए एक आसन बिछा दिया।

भौजाई ने बैठकर पूछा—उस समय भाई के साथ क्या क्या बातें हो रही थीं ?

"किस समय ?"

"प्रयाग के उन सबों के चले जाने पर, ऊपर के कमरे में दरवाज़ा बन्द करके।"

मोतीलाल ने एक बार भौंह सिकोड़ कर दूसरी ओर देखा, फिर कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगा, इस पर भैया ने क्रोध किया था।

"और क्या क्या बातें हुई थीं ?"

"इसी सम्बन्ध की बातें थीं।"

मनोरमा कुछ देर चुप रही। "छोटे बाबू! मैं आपसे एक बात पूछती हूँ, उत्तर दीजिएगा ?"—कहते कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये।

"भाभी, कौन बात ?"

"आपने अपने भाई से क्या कहा था कि 'मैं सब जानता हूँ, यदि आप बुरी संगति न छोड़ेंगे तो,—"

यह बात सुन कर मोतीलाल सँभल कर बैठा और उत्तर दिया—भाभी, ये बातें आपसे किसने कही हैं ?

"किसी ने नहीं कहीं—मैंने अपने कान से सुनी हैं।"

"कैसे सुनीं ?"

"जब बातचीत हो रही थी तब मैं किवाड़ के पास बाहर खड़ी थी। नहीं—नहीं, आप आँख लाल मत कीजिए—उपदेश देने की ज़रूरत नहीं। आप जो कहिएगा वह मैं जानती हूँ। आप यही कहेंगे कि इस तरह छिप कर दूसरे की बात सुनना अन्याय है, इत्यादि। किन्तु मैं तो आपकी तरह लिखी पढ़ी नहीं हूँ, आपकी भाँति धर्म-अधर्म की बात नहीं जानती। आपका ऐसा मुझमें मानसिक बल नहीं है। आपके भाई जब क्रोध से आँखें लाल किये हुए, पागल की तरह, तलमलाते हुए आपको ढूँढ़ने ऊपर आये तब भी मैंने बाहर का कुछ हाल नहीं सुना था। प्रयाग से आये हुए व्यक्ति को आपने क्या कहा और क्या नहीं कहा, यह मैंने कुछ भी नहीं जाना। इसलिए मेरे मन में यह बात जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। इसी से वहाँ जाकर चुपचाप खड़ी हो मैं सुनने लगी। आप लोग जो कहते हैं कि छिप कर किसी की बात सुनना पाप है, सो उस पाप का दण्ड भी मुझे हाथों हाथ मिल गया है। जब से मैंने वह बात सुनी है तब से मेरे मन में शान्ति नहीं। मेरे हृदय में तब से मानों आग लग रही है। असल बात आपको कहनी ही होगी।"

मोतीलाल दूसरी ओर देखने लगा। कुछ बोला नहीं।

भौजाई कुछ देर अपेक्षा करके बोली—चुप क्यों हो रहे ?

मोतीलाल ने कुछ कड़ा स्वर करके कहा—भाभी, मैं कुछ न बतलाऊँगा।

मनोरमा ने फिर कहना आरम्भ किया—"आपने उनसे कहा था—'बड़ा भाई यदि बुरे मार्ग पर चले तो उसे रोकने का अधिकार छोटे भाई को है।' अच्छा, अगर यही बात है तो क्या स्त्री का यह अधिकार नहीं कि वह ऐसा काम करे जिससे स्वामी सच्चरित्र हो। बतलाइए, क्या हुआ है। जानने पर मैं प्राणपण से उसके प्रतीकार की चेष्टा करूँगी। मुझसे कोई बात मत छिपाइए। मैं सिर्फ़ कुतूहलवश यह बात आपसे नहीं पूछती।" यह कहते कहते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

बेचारा मोतीलाल बड़ी विपद् में पड़ा। जिस अभिप्राय से भौजाई उसके पेट की बात जानना चाहती है वह स्वीकार करने योग्य है।

किन्तु स्त्री के सामने स्वामी के अधःपतन की बात कहने की उसकी प्रवृत्ति किसी तरह नहीं हुई। इसलिए उसने कहा—भाभी, इसमें मुझे क्यों लपेटना चाहती हो ? आपको जो कुछ समझना-बूझना हो वह आप भैया से समझ लें। यही अच्छा होगा। वे कहाँ हैं ?

आपके भाई, अभी कुछ देर हुई, बाग़ीचे गये हैं।

मोतीलाल चौंक कर बोला—"अयँ ! बाग़ीचेवाले मकान

में गये हैं !" उसका जी क्रोध से जल उठा। आज सबेरे वह घटना हो जाने पर भी भैया फिर आज वहाँ गये ! एक दिन भी वे वहाँ की गैरहाज़िरी नहीं सह सके ? मोतीलाल की इच्छा हुई कि वह भौजाई को साथ ले वज्र की भाँति वाटिका-भवन में जा गिरे, तभी अपराधी को उचित दण्ड मिले।

भौजाई ने कहा—क्यों छोटे बाबू, इस तरह आप चौंक क्यों उठे ? वहाँ क्या किसी विपद् की सम्भावना है ?

"भाभी, मुझसे मत पूछो" कह कर मोतीलाल उठ करके कोठरी से बाहर हो गया।

तब मनोरमा, बत्ती बुझा कर, वहीं धरती पर बाण से बिंधी हुई हरिणी की भाँति लोट लोट कर रोने लगी।

———

आठवाँ परिच्छेद

रौनक़लाल गोपीकान्त बाबू की अधीनता में नाज़िर के काम पर बहाल होकर थोड़े ही दिनों में ताड़ गया कि बड़े बाबू का मन छोटे भाई के ऊपर प्रसन्न नहीं है। उनके सामने कोई मोतीलाल की प्रशंसा करता है तो वे भौं सिकोड़ लेते हैं और शिकायत करता है तो ख़ुश होते हैं। इस बात पर वह रोज़ लक्ष्य करने लगा कि दोनों भाइयों में बातचीत प्रायः बन्द है। एक को देखकर दूसरा दूर ही से खिसक जाता है। पता लगाने पर रौनक़ को मालूम हुआ कि पहले दोनों भाइयों में किसी तरह का मनमुटाव न था—ख़ूब सद्भाव देखा जाता था। मोती बाबू व्याह करने को राज़ी नहीं होते और उन्होंने लड़कीवाले को अपमानित करके बिदा कर दिया था—यह बात रौनक़ ने उसी दिन सुनी थी जिस दिन वह आया था। किन्तु इस बात पर उसे किसी तरह विश्वास नहीं हुआ कि इस एक ही कारण से इतने दिनों तक भाई भाई में वैमनस्य रहेगा। उसने सोचा, इसके भीतर अवश्य कोई न कोई गूढ़ कारण है। और रौनक़ यह भी नहीं समझ सका कि मोतीलाल के सदृश एक नवयुवक को—जिसको भोजन-वस्त्र की कुछ भी कमी नहीं है—विवाह करना इस तरह अस्वीकृत क्यों है। उसके अपवित्र संकीर्ण हृदय में नाना प्रकार के सन्देह उत्पन्न होने लगे।

रौनक़ ने सोचा, इस रहस्य का भेद खोले बिना अभिप्राय सिद्ध न होगा। भीतरी सब समाचार जाने बिना वह गोपीकान्त के ऊपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकेगा। उसका ख़याल था कि समय पाकर वह गोपीकान्त को अपनी मुट्ठी में कर लेगा; उसका प्रिय कर्म्मचारी होकर अपना कार्य-साधन करेगा और अपने कण्टक को दूर करेगा। यदि यह न हुआ तो क्या वह पन्द्रह रुपया मासिक और दोनों साँझ दो सेर चावल के लिए ही यहाँ पड़ा रहेगा? अतएव भीतर की बात को जैसे हो, जान लेना ज़रूरी है। इस कार्य की सिद्धि के लिए भीतर महल की किसी दासी को हाथ में कर लेना सबसे बढ़िया उपाय है। यह रौनक़ जानता था। इसलिए वह कुछ दिन इसी फ़िक्र में लगा रहा।

कमलपुर गाँव के बीच में गोपीकान्त बाबू का मकान है। मकान के सामने, सड़क के उस किनारे, एक तालाब है—उसके चारों ओर पक्के घाट बँधे हैं। तालाब के उस पार एक बहुत बड़ा मन्दिर है। उसमें नन्द के दुलारे बाँसुरीवाले श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति है। मन्दिर की बाईं ओर कुछ दूर तक मैदान है। वहाँ रोज़ दोनों शाम हाट लगता है। तालाब के किनारे एक छोटा-सा कच्चा घर है। वह चारों ओर टट्टी से घिरा है। टट्टी पर अनेक प्रकार की जंगली लतायें चढ़ गई हैं। उसके साथ एक करेले की बेल भी फैली थी। उसके पीले पीले फूलों से वह अंश बड़ा सुहावना लगता था। इस घर में पहले एक

रैयत रहती थी—वह घर छोड़कर भाग गई। दूसरी जगह कहीं सुभीता न होने पर रौनक़ ने, बाबू साहब से कहकर, यही घर अपने रहने के लिए ले लिया है। हवेली की दासियाँ पोखर के किनारे किनारे, रौनक़ के डेरे के सामने से होकर, कभी कभी बाज़ार को जाती थीं; किसी दिन साँझ को श्रीकृष्ण जी के मन्दिर में घी-बत्ती या पूजा की कोई और सामग्री देने जाती थीं। रौनक़लाल दरवाज़े के बाहर खड़ा होकर, हुक्क़ा हाथ में लिये, तम्बाकू पीते पीते उनकी गति-विधि जाँचा करता था।

रौनक़ ने गुप्त खोज से मालूम किया कि गोपीकान्त के महल में बसन्ती नाम की एक पुरानी दासी है और उसी का प्रताप सबसे बढ़कर है। वह जाति की ग्वालिन है। उसने यह भी पता लगा लिया कि वह बालविधवा है। गोपालपुर में उसका ब्याह हुआ था। यह गाँव कमलपुर से तीन ही चार कोस दूर है। विधवा होने के कुछ ही दिन बाद बसन्ती बाबू साहब की हवेली में नौकर हो गई। उसके नैहर में कोई नहीं है। ससुराल में भी कोई उसकी खोज-ख़बर लेनेवाला नहीं। रौनक़ ने छिपकर इस बसन्ती को देखा। उसका चेहरा देखकर अच्छी तरह समझ गया कि औरत बड़ी ही सीधी है। मुँह उसका गोल है। अन्यान्य दासियाँ हँसी में उसे चकोतरा नीबू कहती थीं। कपार के बीच में एक गोदना का दाग़ है। रङ्ग गेहुँआ है। उम्र चालीस वर्ष के क़रीब होगी। उसे देखकर रौनक़ ने स्थिर किया कि यह अच्छा शिकार हाथ लगा है। इसे एक बार फन्दे में

फँसा सकूँ तो यह आप ही मेरे हाथ की कठपुतली बन जायगी। इसलिए किस उपाय से बसन्ती मेरे पास आ सकेगी, इसी चिन्ता में रौनक़ का चित्त डूबा रहता था।

जब सम्पूर्ण रूप के षड्यन्त्र का भाव रौनक़ के सिर पर नाचने लगा तब वह मालिक से एक दिन की छुट्टी लेकर गोपालपुर गया। वहाँ गुप्त रूप से उसने बसन्ती की ससुराल का सब वृत्तान्त, ससुराल के लोगों का नाम, उनके जन्ममृत्यु की तारीख़ और जानने योग्य जितनी अन्यान्य बातें थीं वे सब लिख लीं।

दूसरे दिन दस बजे रौनक़ तालाब में स्नान कर जब घर आ रहा था तब देखा कि महल की एक दासी अपनी बग़ल में टोकरी दबाये बाज़ार से लौटी जा रही है। उसे देखते ही रौनक़ ने कहा—क्या तुम बाबू साहब के महल की नौकरानी हो ?

इस अप्रत्याशित प्रश्न से वह औरत ठिठक कर खड़ी हो गई। बोली—हाँ, क्यों ?

"तुम कौन ठाकुर हो ?"

"मैं मल्लाहिन हूँ।"

"अच्छा मैं तुमसे पूछता हूँ, बाबू साहब के महल में कोई अहीरिनी है ?"

"हाँ, है—दो अहीरिनियाँ हैं। कहिए क्या उनसे कुछ काम है ?"

"गोपालपुर को तो तुम जानती होगी। उस गोपालपुर में हमारे बहुतेरे सम्बन्धी हैं। मैंने सुना था, उन्हीं के घर की कोई औरत इस हवेली में दासी का काम करती है। वह बेचारी बहुत ही कम उम्र में विधवा हो गई थी। स्वामी के घर जाने का भी सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी कोई औरत हवेली में काम करती है?"

"हाँ, करती है। बसन्ती का ब्याह गोपालपुर में हुआ था। वह जाति की अहीरिन भी है। कम उम्र में बेवा भी हो गई थी। आप क्या उसी की बात पूछते हैं?"

"हाँ, उसका नाम बसन्ती ही है। अपने गाँव से जब आ रहा था तब रास्ते में दो दिन गोपालपुर में ही रह गया। बसन्ती के ससुर का नाम मोहन था। मेरे दादा ने उस मोहन से कुछ रुपया उधार लिया था। अब मेरे दादा भी नहीं हैं, और मोहन भी संसार से कूच कर गये हैं। मैंने सोचा, बाप-दादे का क़र्ज़ रखना ठीक नहीं। वह चुका देना ही उचित है, विशेष कर जब कि हाथ में कुछ रुपया भी मौजूद हो। किन्तु बसन्ती के ससुर का जो चचेरा भाई है उसने रुपया लेने से इनकार कर कहा,—'वह रुपया मैं नहीं ले सकता। तुम कमलपुर जाते ही हो; वहाँ बाबू साहब की हवेली में मेरे जेठे भाई की पतोहू दासी का काम करती है। इन्साफ़ से वही उनकी हक़दार है, उसी को दे देना।' सो तुम अपनी बसन्ती से जाकर कहो, वह एक दिन किसी वक्त यहाँ आकर रुपया ले जाय।"

औरत ने कहा—अच्छा, मैं अभी जाकर बसन्ती से कहूँगी।

दो दिन बीते, चार दिन बीते—किन्तु बसन्ती का दर्शन नहीं। सप्ताह बीत गया, तो भी बसन्ती रुपया लेने नहीं आई।

नवदेवी-पूजा का समय उपस्थित हुआ। चौथ तक दफ़्तर का काम जारी था। पञ्चमी को दफ़्तर बन्द हुआ। अमलों को छुट्टी मिली। षष्ठी को पाँच बजे सन्ध्या-समय रौनक़ शयन-गृह के बरामदे में एक चटाई पर बैठा तम्बाकू पी रहा था। इसी समय सदर दरवाज़े से एक स्त्री की आवाज़ सुन पड़ी—नाज़िर बाबू हैं?

"कौन है" कहकर रौनक़ ने ज्यों ही भीतर आने की आज्ञा दी त्यों ही वह स्त्री कपड़े से ढकी हुई थाली हाथ में लिये आ खड़ी हुई। रौनक़ ने देखा, बसन्ती है। मन में कहा, फन्दे में फँसाया तो। किन्तु मुँह पर वह भाव प्रकाश न करके बिलकुल अपरिचित की तरह पूछा—तुम कौन हो?

"मैं बाबू साहब की हवेली की दासी हूँ।"

"तो तुम बाबू साहब की हवेली में काम करती हो? आओ, आओ, बैठो। कहो, किधर आई?"

बसन्ती बैठी नहीं, खड़ी खड़ी बोली—समधी के यहाँ से पूजा का प्रसाद आया था। मालकिन ने कहा, सब अमलों के घर जाकर प्रसाद दे आओ।

"प्रसाद लाई हो? अच्छा लाओ, यहाँ रक्खो।"

दासी थाल रखकर खड़ी रही।

रौनक़ ने कहा—मालकिन की बड़ी कृपा है। अच्छा, यह तो बताओ,—तुम लोगों की साथिन बसन्ती नाम की कोई दासी हवेली में काम करती है? वह जाति की अहीरिन है?

बसन्ती ने मन में कहा, अपना परिचय नहीं दिया सो अच्छा ही किया। पहले समझ तो लूँ कि बात क्या है। इसलिए वह बोली—क्यों?

रौनक़—बसन्ती तो अपने घर की है। गोपालपुर में जिसके घर उसका ब्याह हुआ था वे हमारे कुटुम्बी हैं। हमारे दादा और बसन्ती के ससुर इन दोनों में बड़ी मित्रता थी।

बसन्ती कपट करके बोली—आपने बसन्ती को कभी देखा भी था?

"देखा क्यों नहीं था, किन्तु यह मुद्दत की बात है। तब उसका ब्याह भी नहीं हुआ था। जब वह दस ग्यारह वर्ष की थी तभी उसे देखा था। उस समय उसका कैसा मनोहर रूप था मानो तुरन्त का खिला गुलाब का फूल हो। किन्तु उस बेचारी का भाग्य अच्छा न था—उसके नसीब में सुख नहीं लिखा था। ब्याह के दो वर्ष बीतते न बीतते वह विधवा हो गई। मेरा भी नसीब फूटा ही था। जिसके साथ जिसका भवितव्य लिखा रहता है उसे कौन मिटा सकता है? नहीं तो आज न बसन्ती विधवा होती और न मुझी को यह कष्ट भोगना पड़ता?" कह कर रौनक़ ने एक लम्बी साँस ली।

वसन्ती अन्तिम वाक्य का अर्थ कुछ भी नहीं समझी। उसने पूछा—आप यह बात क्यों कहते हैं ?

रौनक़ ने फिर ठण्ढी साँस लेकर कहा—यह सुन कर अब क्या करोगी ? जो हो गया, उसका तो कोई उपाय नहीं है।

"क्या हो गया ?"

"सुनकर क्या करोगी ? तुम अभी जाकर बसन्ती से कहोगी—उसका मन भी दुखी होगा।"

बसन्ती का कुतूहल और भी बढ़ गया। "नहीं, मैं बसन्ती से कुछ न कहूँगी। हर्गिज़ नहीं। आपकी सौगन्द, नहीं कहूँगी। कहिए क्या हुआ था ?" कहकर वह वहीं बैठ गई।

तब रौनक़ ने कहना शुरू किया—"यह जो बसन्ती है—उसके साथ तो पहले मेरा ही ब्याह होने की बात थी। सब ठीक ठाक हो गया था। दिन भी मुक़र्रर हो चुका था। किन्तु लड़की को अत्यन्त सुन्दरी देखकर मोहन ने मेरे दादा से अनुरोध करके कहा—'भाई साहब, इस लड़की के साथ मेरे छोटे लड़के नवीन का ब्याह होने दीजिए—ऐसी लड़की फिर न मिलेगी। यह हमारे गाँव की है। तुम यहाँ से बहुत दूर रहते हो, उन ज़िलों में कितनी ही ख़ूबसूरत लड़कियाँ मिलेंगी। वहीं किसी अच्छी लड़की के साथ अपने लड़के का ब्याह कर देना किन्तु जो यह लड़की हाथ से निकल गई तो मेरे लड़के के भाग्य में फिर ऐसी नहीं मिलेगी।' मेरे दादा भी बड़े ही सज्जन थे—उनकी आँख में बड़ी मुरौवत थी। उन्होंने उनकी बात मान

ली। नवीन के साथ बसन्ती का ब्याह हो गया। मेरे मन की साध मन ही में रह गई। कहीं मेरा भी ब्याह हो गया। कुछ दिन बाद बसन्ती बेवा हो गई। इधर मेरी स्त्री भी मर गई। यदि उसके साथ मेरा ब्याह हुआ होता तो न वह विधवा होती और न मेरी ही यह दशा होती। न जानें कितना सुख होता! परन्तु क़िस्मत! मेरा दौर्भाग्य!" कह कर रौनक़ ने अपना कपार ठोंका।

यह सुन कर बसन्ती चुप हो रही। रौनक़ की सूरत-शकल उसे अच्छी नहीं लगी। इसी से उसके साथ ब्याह न होने का अफ़सोस उसको नहीं हुआ। किन्तु रौनक़ ने जो बात कही वह बसन्ती को सुनने में बहुत प्रिय लगी। रौनक़ ने कहा है, छोटी उम्र में गुलाब के फूल की तरह उसका चेहरा खिला था। सो खिला तो सचमुच था। यह सुनकर किस रमणी के कान तृप्त नहीं हो सकते? ऐसा भी एक आदमी संसार में है जो बसन्ती को न पाने से हाथ मल मल कर पछता रहा है। भले ही उसके सिर के बाल उड़ गये हों—भले ही उसकी दाढ़ी-मूँछ खजूर की पत्ती की तरह हो गई हो—फिर भी उसके मुँह से यह बात सुनने में अच्छी लगी।

बसन्ती सोचने लगी, अब परिचय देना उचित है या नहीं। परिचय न दें तो उस रुपये की चर्चा कैसे चलेगी? किन्तु रौनक़ ने मेरी खूबसूरती की तारीफ़ करके अभी इस प्रसङ्ग को ख़तम किया है। इसलिए तुरन्त अपना परिचय देने में उसे संकोच

होने लगा। इसी से वह बोली—आपकी स्त्री को मरे कितने दिन हुए ?

रौनक़ ने कहा—मुद्दत हुई।

"बाल-बच्चे हैं ?"

"एक भी नहीं।"

"दूसरा ब्याह नहीं किया ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं किया ?"

"इस उम्र में फिर ब्याह ? मेरी उम्र लगभग पैंतालीस वर्ष के होगी। इस उम्र में क्या एक सुकुमार बालिका से विवाह कर के विपद् में पड़ूँ ? इस बात को जाने दो। तुम एक बार बसन्ती को यहाँ भेज देना। उससे एक काम है।"

कपट की हँसी हँसकर बसन्ती ने कहा—उससे आपका क्या काम है ?

"उसे कुछ रुपया देना है।"

"कितना रुपया ?"

"यह बसन्ती के आने पर कहूँगा। हिसाब करने से मालूम होगा कि असल मय सूद कितना हुआ है।"

तब दासी आँख भौं सिकोड़ कर लजाती हुई बोली—बसन्ती तो मेरा ही नाम है।

मानो बड़े आश्चर्य की बात सुनी हो, ऐसा भाव दिखाकर "अयँ ! तुम्हीं बसन्ती हो ? देखूँ, देखूँ-एक बार तुम्हारा मुँह

देखूँ"—कहकर रौनक़ उसके पास जाकर उसके मुँह की ओर बड़े चाव से देखने लगा। बसन्ती ने संकोच से सिर नीचा कर लिया। रौनक़ कहने लगा—अहा! वही मुखड़ा है, वही आँखें हैं, वही नाक है। ब्याह के समय ही देखा था, तब से तो फिर कभी देखा नहीं। भला कैसे पहचानता? अभाग्य! मेरा अभाग्य!

बसन्ती ने मन में कहा, इस मर्द का डौल तो देखो। प्रकाश्य बोली—रुपया देना हो तो हिसाब न कीजिए?

"अच्छा, अच्छा, ज़रा बैठो," कहकर रौनक़ घर के भीतर से एक बही ले आया। आँखों में चश्मा लगा कर खड़े ही खड़े बही के पन्ने उलट पलट कर कुछ देर देखे। फिर कहा—देखो, तुम्हारे ससुर ने मेरे दादा को चार रुपया क़र्ज़ दिया था। यह बीस वर्ष की बात है। यदि फ़ी रुपये महीने में आधा पैसा सूद जोड़ा जाय—

बात काट कर बसन्ती ने कहा—आधा पैसा? मैं तो दो पैसे सूद पर रुपया उधार देती हूँ। इस हिसाब से चार पैसे महीना भी सूद न होगा।

रौनक़—सुनो, कहता हूँ। जब तुम्हारे ससुर ने मेरे दादा को रुपया उधार दिया था तब सूद की बात तो कुछ हुई नहीं थी। मैंने सिर्फ़ धर्म का विचार करके ही, आधे पैसे की दर से, सूद का हिसाब किया है। यही ज्यादा हुआ। सूद की दर यही रहने दो। इस हिसाब से महीने में दो पैसे और

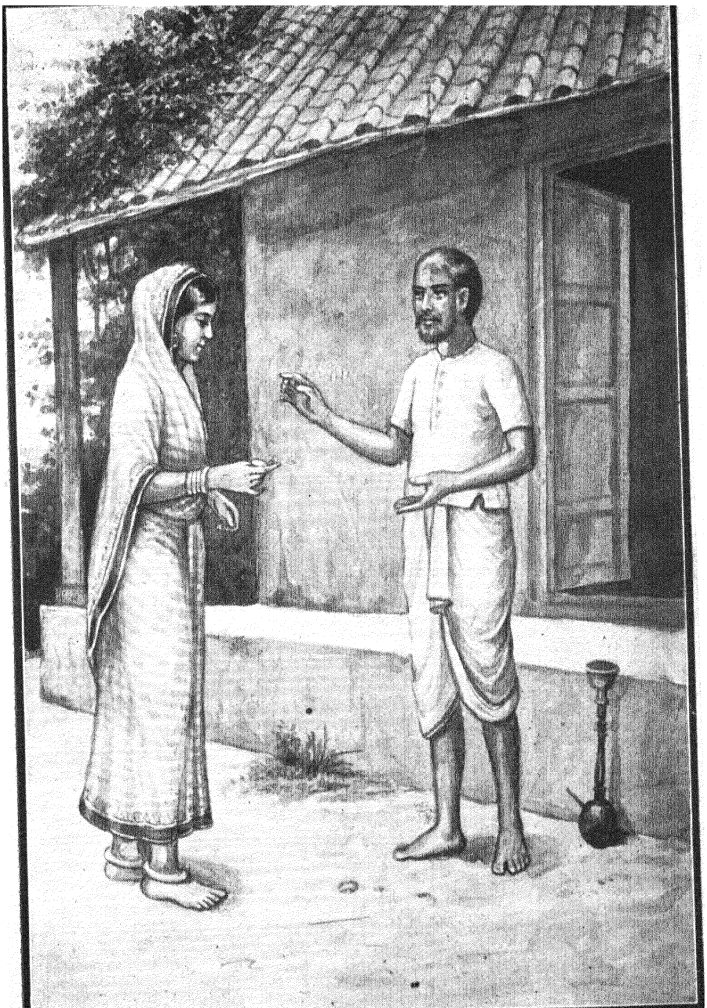
साल में छः आने हुए। बीस वर्ष का सूद हुआ एक सौ बीस आना अर्थात् साढ़े सात रुपया। असल चार रुपया सूद मिला कर हुआ साढ़े ग्यारह रुपया। कहो ठीक हुआ न? आठ आना मुझे रियायत करना होगा। बाक़ी ग्यारह रुपया तुम पाओगी—कहो, क्या कहती हो?

"मैं क्या कहूँगी? जो आपके धर्म में आवे वही कीजिए।"

"ठीक कहती हो। तुम्हारा कहना उचित है। यदि मुझे धर्म का ज्ञान न रहता तो मैं आप ही तुम्हें बुला कर अपने हाथ का रुपया क्यों देता? अगर मैं तुमसे इस क़र्ज़ का हाल नहीं कहता तो तुम इसका ज़रा भी पता नहीं जान सकतीं। और जान कर ही क्या कर लेतीं—अगर मेरे बाप का दस्तख़ती तमस्सुक ही तुम्हारे हाथ में रहता तो तुम क्या करतीं? उसकी मियाद तो कभी की गुज़र गई होती। मियाद की मियाद—उसकी भी मियाद गुज़र गई। किन्तु मैं बड़ा ही धर्म-भीरु हूँ। अगर कोई मेरा गला भी काटे तो भी मुझसे अधर्म का काम न होगा। ज़रा बैठो। बक्स खोल कर देखता हूँ, रुपये पैसे कुछ हैं या नहीं?"

घर के भीतर जाकर रौनक़ ने बक्स खोला। बाहर आकर कहा—"इसी से कहता था—सब रुपया तो अभी नहीं हो सका। छः रुपये मौजूद हैं, ये लिये जाओ। बाक़ी ५) किसी से उधार लेकर रक्खूँगा। कल इसी समय आकर ले जाना।"

बसन्ती ने छः रुपये पाकर, सबको एक एक कर अँगूठे



बाहर आकर कहा—इसी से कहता था—सब रुपया तो अभी नहीं हो सका।—पृ० ८८

से अच्छी तरह बजा लिया। उन्हें आँचल के खूँट में बाँधते बाँधते बोली—कल आऊँ तो वे रुपये ज़रूर मिल जायँगे ?

"क्यों नहीं मिलेंगे ? तुम्हारे हक़ के रुपये कहाँ जायँगे ?" कह कर रौनक़ ने उसकी आशा को पुष्ट कर दिया।

मुँह में एक पेड़ा डाल कर बोला—वाह, बहुत बढ़िया पेड़ा है—ख़ासा पेड़ा है। बसन्ती, तुम भी दो एक खाओगी ?

बसन्ती ने सिर हिला कर अस्वीकार किया। रौनक़ ने और दो पेड़े खाकर कहा—बहुत उमदा पेड़ा है। मथुरा जी के पेड़े से भी बढ़ कर है। उन्नाव का भी पेड़ा इसकी बराबरी नहीं कर सकता। बसन्ती, ज़रा तकलीफ़ करो, घड़े से एक गिलास पानी ढाल कर तो दो।

रौनक़ की ढिठाई बुरी लगने पर भी नक़द छः रुपया पाकर बसन्ती का मन पिघल गया था। घड़े से एक गिलास पानी लेकर उसने रौनक़ के आगे ला रक्खा। रौनक़ ने एक बार बसन्ती के मुँह की ओर देखकर, एक लम्बी साँस ले, गिलास का पानी बड़ी तृप्ति से पिया। गिलास को नीचे रख, सिर हिला हिला कर मानो अपने मन में कहने लगा—फूटे कपार में भी इतना सुख लिखा था।

तब तक बसन्ती दरवाज़े के पास पहुँच गई थी; वह एक बार पीछे की ओर तिरछी नज़र से देख मुस्कुरा कर बाहर हो गई।

नवाँ परिच्छेद

रौनक़ के चेहरे पर जो उदासी का बादल छाया था वह बसन्ती के चले जाने पर दूर हो गया और कौतूहल की एक अपूर्व शोभा झलकने लगी। पानदान से एक बीड़ा पान मुँह में रख, हुक्क़ा हाथ में ले झूम झूम कर वह ख़ूब हँसने लगा और मन में कहने लगा—"इस औरत को आज ख़ूब चकमे में डाला है। आज रात को इसे नींद न आवेगी। रात भर यही सोचेगी—'अहा, इसी के साथ यदि मेरा ब्याह हुआ होता, तो आज मैं कितने सुख में रहती। मेरी उम्र कुछ ज़्यादा हो गई है सही, तो भी चेहरे पर अब भी रौनक़ है।' रौनक़ बड़े चाव से हुक्क़ा गुड़गुड़ाने लगा। कुछ देर बाद हुक्क़े को हाथ से रख कर सोचने लगा—आज छः रुपया पानी में फेंक दिया है। किसी जन्म में मेरे दादा से इसके ससुर की भेंट नहीं। फिर भी मैंने बड़ी सफ़ाई से कह दिया कि मेरे दादा ने तुम्हारे ससुर से रुपया क़र्ज़ लिया था। इतना ही नहीं, दो पैसे महीने सूद भी देना स्वीकार कर लिया। तो मेरा यह रुपया क्या यों ही पानी में चला जायगा? छः गये हैं, पाँच और जायँगे। जायँ। मनुष्य बंसी का चारा भी तो पानी में फेंकता है! देखें, कितनी बड़ी मछली बंसी में फँसती है। बाक़ी पाँच रुपये अभी मैं उसे थोड़े ही देता हूँ। मुंशी रौनक़लाल

ऐसे बेवकूफ नहीं। अभी कितने ही दिनों तक सब्ज़ बाग़ दिखाऊँगा। एक एक कर उसके पेट की बात निकालूँगा। एक एक कर रुपया दूँगा। किन्तु जब कुल रुपया दे दिया जायगा तब? तब देखा जायगा। तब फिर कोई नई चाल चलनी होगी।

दूसरे दिन सप्तमी को पूजा के बाजे बजने लगे। रौनक़ ने सबेरे ही उठ कर हाथ मुँह धो स्नान कर लिया। बाबू साहब के मकान से शुरू करके कई एक जगहों में काली का दर्शन करते करते आधा दिन बिता डाला। दोपहर के बाद बसन्ती के आने का इन्तज़ार करके बैठे बैठे दो तीन चिलम तम्बाकू जला डाली, किन्तु वह न आई। दूसरा दिन भी बीता, पर बसन्ती का दर्शन न हुआ। नवमी पूजा के दिन अकेला बैठ कर रौनक़ सोच रहा था। ग्यारह बजे दिन का समय था, तब सदर दरवाज़े से बसन्ती का कण्ठस्वर सुन पड़ा—नाज़िर बाबू, आज सूद का कुछ रुपया दीजिएगा?

रौनक़ ने बाहर आकर कहा—बसन्ती, आओ, आओ।

बसन्ती आँगन में आ खड़ी हुई। रौनक़ ने कहा—बैठो न, खड़ी क्यों हो?

"नहीं, अभी तुरन्त लौट जाऊँगी। देर तक बैठने की फ़ुरसत नहीं।"

"ज़्यादा देर नहीं बैठ सकतीं तो कुछ देर भी तो बैठो। तुम्हारी कैसी बुद्धि है? मैं रोज़ तुम्हारे आने की राह देखता था। तुम्हारा तो दर्शन दुर्लभ हो गया।"

बसन्ती ने देखा, फिर इसने मायाजाल फैलाना आरम्भ किया। वह बैठकर मुस्कुराती हुई बोली—भला पानेवाले के लिए देनेवाला राह क्यों देखेगा ?

रौनक़ ने ज़रा मुँह उदास करके कहा—तुम क्यों न हँसोगी ? तुम्हारी उम्र में हम भी बात बात में यों ही हँसते थे। तुमने मुझे आशा देकर निराश कर दिया। ये कई दिन मेरे लिए किस कष्ट से बीते हैं, यह मैं जानता हूँ या मेरा धर्म जानता है।

बसन्ती ने हँसी छिपाने की चेष्टा करके कहा—"क्या कष्ट ?"

"वह मैं तुमसे क्या कहूँ ? मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया है।"

"क्यों नहीं खाया ?"

"एक सपना देखा था, इसी से कुछ नहीं खाया है।"

इस बार बसन्ती का कुतूहल विशेष रूप से जाग उठा—स्वप्न देखा था, इसलिए तीन दिन से नहीं खाया है। अवश्य ही इसके भीतर कोई अद्भुत रहस्य है। उसने पूछा, "क्या स्वप्न देखा ?"

रौनक़ ने सिर हिलाकर कहा—यह तुमसे नहीं कहूँगा। तुम सबसे कहती फिरोगी।

बसन्ती ने सोचा—ठीक वही बात है। शायद किसी देवी ने स्वप्न दिया है, तीन दिन उपवास करके अमुक स्थान में खोजने से अमुक जड़ी मिलेगी—या अमुक स्थान खोदने से रुपया

मिलेगा। या ऐसा ही कोई गुप्त विषय होगा। इसलिए वह बड़ी व्यग्रता के साथ बोली—मैं किसी से नहीं कहूँगी। जीभ कट जाने पर भी न कहूँगी।

रौनक़ ने गम्भीरतापूर्वक कहा--स्त्रियों का विश्वास क्या ?

बसन्ती--क्यों ? स्त्रियाँ क्या ऐसी हलकी होती हैं ? इतनी वाहियात होती हैं ? स्त्री न रहती तो संसार ही न चलता।

रौनक़ ने कुछ टाल मटोल करने का भाव दिखा कर कहा—किसी से नहीं कहोगी, सौगन्ध खाओ। मेरा पैर छूकर सौगन्द खाओ।

बसन्ती ने एक बार चकित दृष्टि से दरवाज़े की ओर देख कर रौनक़लाल का पैर छूकर क़सम खाई।

तब रौनक़ ने कोमल स्वर से कहना आरम्भ किया—देखो, बसन्ती ! तुम तो उस दिन साँझ को रुपया लेकर चली गईं और तुम्हारी बात सोचते सोचते मैं यहीं सो गया। उसके बाद जो सपना देखा वह कहता हूँ, सुनो।

बसन्ती कुतूहल-भरे स्वर में बोली—हाँ कहिए।

रौनक़ धीरे धीरे यों कहने लगा—स्वप्न यही देखा कि तुम रसोईघर के उसारे में बैठ कर मेरे लिए भात परोस रही हो। तुम लाल किनारे की पीली साड़ी पहने हो, माँग में सेंदुर है, और हाथ में लाख की चूड़ियाँ हैं। थाली में रसोई परोस कर

तुमने मुझे पुकारा, मैं जाकर खाने बैठा। यह खाइए, वह खाइए कह कर तुम बड़े यत्न से मुझको खिलाने लगीं। जब आधा भोजन हो गया, तब तुम ज्यों ही झट से उठ कर मेरे लिए दही लाने गईं त्यों ही तुम्हारी साड़ी की फरफराहट और ज़ेवर की झनझनाहट से मेरी नींद टूट गई। उठकर बड़ी देर तक बिछौने पर चुपचाप बैठा रहा। और दिन अपने हाथ से रात को चूल्हा जलाता और रसोई बनाता-खाता था, पर उस दिन कुछ न किया। तुम जो पेड़े दे गई थीं, उन्हीं में से दो पेड़े मुँह में डाल कर गिलास भर पानी पी सो रहा। नींद काहे को आवेगी। पड़ा पड़ा सोचने लगा—हाय रे मेरा अभाग्य! यह सभी तो होता पर मेरे अभाग्य ने कुछ न होने दिया। तुम्हारे ही साथ मेरे ब्याह की बात हुई थी। सब ठीक ठाक हो गया था। तुम्हीं तो बारहों मास, तीसों दिन, भात रींध कर मुझे खिलातीं और मेरी आँखों के सामने बैठी रहतीं। सारी रात मैं इसी बात को सोचता रह गया। दूसरे दिन भगवती का दर्शन करके आया और आग सुलगा कर ज्यों ही रसोई बनाने गया त्यों हीं सपने की बात याद आ गई। बस, सब ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। रसोई पानी कुछ न हुआ। फिर वही दो पेड़े खाकर एक गिलास जल पी लिया। मन की व्याकुलता से कोई काम न किया—चुपचाप चारपाई पर जाकर सो रहा। दोनों साँझ वही तुम्हारे लाये दो एक पेड़े खाकर तीन दिन से प्राण बचाता आ रहा हूँ।

ऐन दोपहर के सन्नाटे में बसन्ती जादू में जकड़ी-सी इस प्रेम-गर्भित मधुर कथा को बड़े ध्यान से सुन रही थी। कथन समाप्त होने पर बोली—क्या कहा, तीन दिन से नहीं खाया ?

"तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, कुछ नहीं खाया है। तुम्हारी देह छू कर कहता हूँ।" यह कह कर बसन्ती का एक हाथ रौनक़ ने अपने दोनों हाथों के बीच दाब रक्खा।

बसन्ती का मन पिघल कर पानी हो गया था। इससे रौनक़ का यह काम उसे अप्रिय नहीं लगा। उसने अपना हाथ छुड़ाने की कोई चेष्टा न की। धीरे धीरे बोली—यह कहाँ की बात है ? इस तरह बिना खाये कै दिन रहोगे ?

रौनक़ ने आँसू-भरी आँखें धरती की ओर स्थापित करके कहा—जब तक तुम मुझसे पुनर्विवाह न करोगी, जब तक तुम अपने हाथ से रसोई बनाकर न खिलाओगी। आज-कल तो विधवा-विवाह ख़ूब हो रहा है।

बसन्ती धीरे धीरे अपना हाथ छुड़ा अपने गाल पर रख कर बोली—राम राम ! आप यह क्या कहते हैं ? विधवा-विवाह ! छिः छिः ! यह क्या हमें शोभेगा ? हमारी अवस्था बीत गई। मुझे यह बात नहीं सुहाती। कहीं भली औरतें ऐसा करती हैं ?

रौनक़ ने निन्दा-व्यञ्जक स्वर में कहा—तुम्हें दुनिया की

कुछ भी ख़बर नहीं। आज-कल तो अच्छे अच्छे लोगों के घर धड़ल्ले से विधवा-विवाह होता है।

बसन्ती—ऐसे अधर्म की बात मत बोलिए। भले घर में विधवा-विवाह होने से कहीं धर्म बच सकता है?

रौनक़ ने बड़ी प्रौढ़ता से कहा—एक बार काशी जाकर बड़े बड़े पण्डित, महामहोपाध्याय और ज्योतिषियों से पूछ देखो।

"पण्डित क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि शास्त्र में विधवा-विवाह लिखा है। विधवा-विवाह में कोई दोष नहीं।"

कुछ देर चुप रह कर बसन्ती बोली—सच कहिए?

"सच नहीं तो क्या मैं झूठ कहता हूँ।"

यह सुन कर बसन्ती चुप हो बैठ रही। रौनक़ भी उदास मुँह करके चुप हो रहा। थोड़ी देर में बोला—तो तुम क्या कहती हो? मुझसे ब्याह करोगी न? बाप की बुद्धि के दोष से मैं अपने हक़ से ठगा गया।

बसन्ती कुछ न बोली। तब रौनक़ उससे बार बार पूछने लगा। आख़िर में वह बोली—"छिः मुझसे यह बात न कहिए। आप नहा कर भोजन कीजिए। इस तरह भूखे रहना ठीक नहीं।"

यह बात मैं तुमसे न कहूँगा तो किससे कहूँगा? इस संसार में मेरे और कौन है? न माँ है न बाप, न भाई। मैं पहले ही से जानता हूँ कि तुम मेरी बात पर राज़ी न होगी। मेरे पास

क्या है जो देखकर तुम भूलोगी? न रूप है, न गुण है, न धन है। अच्छा राज़ी नहीं होतीं तो मत हो, पर मुझसे भोजन करने को तो न कहो। मर जाना ही अब मेरे लिए अच्छा है।" यह कह कर रौनक़ नीचा सिर करके बैठ रहा।

बसन्ती ने सान्त्वना के स्वर में कहा—देर हो गई। उठिए। रसोई-पानी का ठीक कीजिए। लो, तब तक मैं चूल्हा जलाये देती हूँ। मुझे समय नहीं है। जल्द जाना है।

रौनक़—नहीं बसन्ती, चूल्हा मत जलाओ। मैंने तो प्रतिज्ञा ही की है कि तुम आकर यदि किसी समय रसोई बना दोगी तो खाऊँगा, नहीं तो नहीं।

"अभी तो मुझे समय नहीं है।"

रौनक़ इस वाक्य से प्रफुल्लित होकर बोला—तो उस वक्त? अच्छा, उस वक्त आकर रसोई कर देना।

"अच्छा, जो समय मिलेगा तो आऊँगी। अभी तो आप रोटी बना कर खाइए।"

"कभी नहीं। आज भी तुम्हारा वही पेड़ा खाकर पानी पिऊँगा। मैं तो उसे भी न खाता; पर यही सोच कर खाता हूँ कि मेरी बसन्ती यह पेड़ा दे गई है—यह उसी के हाथ का लाया हुआ पकवान है।"

"अच्छा तो कुछ और भी खाकर पानी पी लो। शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिए। मैं साँझ होने पर चुपचाप आऊँगी और तुम्हें रसोई बना कर खिला जाऊँगी। अभी जाती हूँ।"

बड़ी कृतज्ञता का भाव दिखाकर रौनक़ बोला—बसन्ती, तुमने मेरे प्राण बचा लिये। कहीं से मेरे जी में जी आया है। किन्तु उस बात का तो कुछ जवाब नहीं दिया।

"किस बात का ?"

"असल बात का। ब्याह की बात का।"

"यह बात उस समय होगी। अभी क्षमा कीजिए" कह कर लज्जा से सिकुड़ कर मुस्कुराती हुई बसन्ती चली गई।

दसवाँ परिच्छेद

बसन्ती के चले जाने पर रौनक़ मुँह में कपड़ा लगा खिलखिला कर हँसने लगा। फिर धीमे स्वर में बोला—"इस औरत के साथ मैंने अच्छा प्रणयसूत्र जोड़ा है। जो हो, इसका हृदय विलक्षण रूप से पिघल गया है, इसमें संदेह नहीं। घर के भीतर पैर रखते ही बोली—'कुछ सूद का रुपया दीजिएगा?' किन्तु प्रजापति देवता की ऐसी महिमा कि ब्याह की बात सुनकर रुपये की बात एक-दम भूल गई।" हाथ में चिलम लेकर रौनक़ ने देखा, आग बुझ गई है। तब तम्बाकू भरते भरते मन की उमङ्ग में गुनगुना कर वह गाने लगा—

"फिरति कौन कुञ्जन में प्यारी।
कान्ह कान्ह गोहरावति चहुँ दिस पहिरि पीत पट सारी॥"

अहा! किसी कवि ने क्या ही अच्छा गीत बनाया है।

तम्बाकू भरते भरते रौनक़ रसोई-घर में गया। आग सुलगाने के लिए हाथ में लकड़ी लेकर सोचने लगा—मैंने आप ही अपने को विपद् में डाला है। अभी कैसे रसोई बनाऊँ? चूल्हा जलाते ही तो धुआँ निकलेगा—क्या जानें, कहीं वह औरत देख ले। तब तो सभी पोल खुल जायगी! अब ठीक दोपहर का समय हो गया। भूख से पेट जल रहा है। पेट की आग क्या खाकर बुझाऊँ? लकड़ी फेंक कर छींके से कटोरदान

उतार कर देखा तो रात की बासी पूरियाँ और तरकारी रक्खी थी। झट स्नान करके, वही खाकर किसी तरह पेट की आग बुझाई। भोजन करके चारपाई पर बैठा और पान चबाते चबाते सोचने लगा—अच्छा न हुआ; एक साँझ आध पेट ही सही। अभी रसोई बनाना ठीक न होता। उस वक्त औरत से कितनी ही कामों की बातें निकालूँगा। लिखा भी तो है—"मिलै न दुख बिन सुख कर राजू।" कुछ कष्ट उठाये बिना काम कैसे चलेगा ?

यों ही सोच-विचार में सारा दिन कट गया। साँझ होने पर बसन्ती धीरे धीरे आ पहुँची। आँचल के भीतर से एक केले का फूल निकाल कर बरामदे में रक्खा।

रौनक़ ने फूल हाथ में लेकर कहा—वाह! बहुत बढ़िया फूल है। यह तुम्हें कहाँ मिला ?

बसन्ती ने कहा—आपको केले के फूल की तरकारी भाती है ?

"वाह! खूब अच्छी लगती है। आज छः वर्ष से इसकी तरकारी नहीं खाई। कहाँ से लाई हो ?"

"आते समय अन्दर के बग़ीचे से तोड़ कर लेती आई हूँ। रसोई बनाने के लिए बर्तन, दाल-चावल आदि कहाँ है ? कुछ नहीं देखती।"

रौनक़ ने ऐसा भाव प्रकाश किया, मानों वह बसन्ती को देख कर ही आकाश का चाँद हाथ में पा गया। बोला—

अब तुम आ ही गई हो; रसोई हो तो भी अच्छा, न हो तो भी अच्छा।

बसन्ती बोली—जाओ, जाओ, हँसी मत करो। चूल्हा चौका दिखा दो। तब तक अदहन चढ़ा कर केले का फूल काट लेती हूँ। मुझे दस बजे रात के भीतर फिर लौट जाना होगा। मालकिन आने कब देती थी? उस महल्ले में मेरी भतीजी आई है, यह बहाना करके कितनी विनती की है तब कहीं छुट्टी मिली है।

तब रौनक़ रसोई का सब ठीक ठाक करने लगा। भाण्डार-घर से चावल, दाल, नमक, आटा, तेल, मसाला और तरकारी आदि निकाल लाया। दियासलाई से ईंधन धधका कर चूल्हा जला दिया। बसन्ती चूल्हे के पास बैठकर रसोई बनाने लगी। रौनक़ कुछ फ़ासिले पर एक चटाई पर बैठ बड़ी ख़ुशी से तम्बाकू पीने लगा।

रौनक़ ने बातों ही बातों में, हिकमत से, बसन्ती का बहुत कुछ हाल जान लिया। वह विधवा होने के बाद बीस वर्ष से बाबू साहब की हवेली में काम करती है। उस पर सबका अत्यन्त विश्वास है। नौकरी करके बसन्ती ने कुछ रुपया भी जमा किया है। कुछ रुपया तो उसने ज़्यादा सूद पर लोगों को क़र्ज़ दिया है और कुछ पीतल के लोटे में डाल कर कहीं गुप्त स्थान में गाड़ रक्खा है। कहाँ गाड़ रक्खा है, यह जानने के लिए रौनक़ का जी छटपटाने लगा। परन्तु यह सोच कर कि

कहीं बसन्ती को मुझ पर सन्देह हो, इस विषय में बहुत पूछ-ताछ नहीं की। असल मय सूद सब मिला कर कितने रुपये हैं, यह स्पष्ट रूप से नहीं पूछा; सिर्फ़ यही कहा—सूद महीने महीने वसूल करते जाना ही ठीक है। जानती हो, सूद का हिसाब छोड़ देने से क्या होता है? अन्त में सूद और मूल दोनों चले जाते हैं। सूद बढ़ते देर नहीं लगती। थोड़े ही दिनों में मूलधन से सूद बढ़ जाता है। तब देना भारी हो जाता है। क़र्ज़दार एक साथ असल और सूद चुकाने में असमर्थ हो कर बेईमानी का रास्ता पकड़ता है। इसलिए सूद महीने महीने चुकता हो जाने से ऋणी असल दे डालने में भी किसी तरह का हीला-हवाला नहीं करता। सूद का रुपया पहले ही दे देने से असल रुपया देना भारी नहीं मालूम होता। हर महीने सूद तो लेती जाती हो?

बसन्ती—हाँ। सब तो महीने महीने नहीं देते। दो चार महीने का जमा होने पर कुछ देते हैं, कुछ बाक़ी रखते हैं और कोई महीने महीने भी दे डालते हैं।

"मालूम होता है, सूद ज्यादा वसूल नहीं होता। अच्छा, यह तो बताओ, पिछले महीने में तुमने कितना सूद पाया है?"

"गुज़रे महीने में? अच्छा, हिसाब करके बताती हूँ। एक से पाया है आठ आना, एक आदमी से एक रुपया। एक से दस आने। और एक ने सवा रुपया दिया है। कितना हुआ?"

रौनक़ ने कहा—तीन रुपये छः आने। बस, कुल यही तीन रुपये छः आने! अगर सब महीने महीने सूद दें तो मालूम होता है पाँच छः रुपये से कम न होगा।

"इतना न होगा। हाँ, महीने में चार रुपया सूद पा जाती हूँ।"

"अच्छा; तब तो सूद कुछ कम नहीं आता। जान पड़ता हैं, जिनको दिया है वे लोग अच्छे हैं।"

"अच्छे जान कर ही तो दिया है।"

"तो एक काम करो न। जो रुपये गड़े हुए हैं उन्हें उखाड़ कर क़र्ज़ में लगा दो तो क्या महीने में और चार रुपये सूद में नहीं आवेंगे?"

बसन्ती—चार ही रुपये क्यों आवेंगे? कुल रुपया क़र्ज़ में दे डालूँगी तब भी चार ही रुपया!

"तब कितना?"

"पाँच छः रुपये से कम सूद तो किसी हालत में नहीं पाऊँगी। किन्तु मैं सोचती हूँ कि मैं अबला हूँ; जो सब रुपये दूसरों के हाथ में दे दूँगी और अगर रुपया वसूल न होगा, तो अख़ीर में सिर पर हाथ धर कर रोऊँगी। आदमी का चोला है, कभी भला रहा कभी न रहा; यदि यह नौकरी ही न रही तो खाऊँगी क्या?"

रौनक़ ने सिर हिला कर कहा—हाँ, यह बात ठीक है। तब वह रुपया गड़ा ही रहने दो—उसको उखाड़ने की ज़रूरत

नहीं। वह अच्छी जगह में तो है ? देखो, ख़ूब सावधान होकर रहना। मुझसे जो कहा सो कहा, और किसी से मत कहना जिसमें कोई यह बात न जाने।

"नहीं,—मैं ऐसी बेवकूफ़ नहीं हूँ" कह कर बसन्ती सिल पर मसाला पीसने लगी।

रौनक़ ने मन ही मन हिसाब किया—उस दिन इसने कहा था, "मैं फ़ी रुपये दो पैसे सूद पर रुपया उधार देती हूँ। कभी कभी रुपये की ज़रूरत देखकर चार पैसा भी सूद लेती हूँ।" मोटे हिसाब से यदि ढाई पैसे फ़ी रुपये सूद का हिसाब जोड़ता हूँ तो पचीस रुपये का सूद हुआ क़रीब एक रुपया, और एक सौ रुपये का सूद चार रुपये के लगभग हुआ। इस हिसाब से मालूम होता है, सौ रुपये से दो चार घट बढ़ क़र्ज़ में दिया गया है। और, यही डेढ़ पौने दो सौ रुपया धरती में गड़ा होगा। अभी नहीं, कुछ दिन बाद—यह गड़ा हुआ रुपया उखाड़ कर अपने सन्दूक़ में रख दूँगा तो वह हिफ़ाज़त से रहेगा।—यह सोचते सोचते रौनक़ के होंठों पर कुछ हँसी आ गई, किन्तु दिये की टिमटिमाहट में उसे बसन्ती ने नहीं देखा।

इसके बाद क्रम क्रम से बाबू साहब की हवेली का ज़िक्र छिड़ा। रौनक़ ने पूछा—अच्छा, छोटे बाबू विवाह क्यों नहीं कराते ?

"संसारी धर्म में मन नहीं है, इसी से नहीं कराते। छोटे बाबू को हम लोग देवता करके मानती हैं। वे रात-दिन

पूजा-पाठ में ही लगे रहते हैं। ब्याह का तो सब ठीक ठाक हो गया था। प्रयाग से जो छोटे बाबू को देखने आये थे वे बहुत बड़े आदमी थे। बड़े आदमी क्या, एक तरह के राजा ही थे। किन्तु छोटे बाबू ने दो चार ऊँची नीची बातें कह कर उन्हें खदेड़ दिया। तभी से दोनों भाइयों में अनबन है। मालिक-मालकिन में भी बनाव नहीं।"

रौनक़ बड़ी उत्सुकता के साथ बोला—मालिक-मालकिन में अनबन! क्यों?

"अच्छा, कहती हूँ" कह कर बसन्ती दाल में मसाला डाल कर सँभल बैठी और धीमे स्वर में कहने लगी—

"जिस दिन प्रयाग से लड़कीवाले लड़का देखने आये थे उस दिन मैंने देखा कि मालकिन दिन भर उदास मुँह किये घूमती रहीं। किसी से कुछ नहीं बोलीं। और दिन तो बड़े बाबू अन्दर आकर ही खाते-पीते थे, और ऊपर जाकर सोते थे; पर उस दिन बाबू साहब ने बाहर ही खाया, और बाहर ही सो गये। मैंने मन ही मन कहा—इन्हें क्या हुआ है। लक्षण तो अच्छे नहीं देखती हूँ—क्या कुरुक्षेत्र होगा?

रौनक़ ने अपने सिकुड़े हुए मुँह को और भी सिकोड़ कर कहा—ख़ैर, इसके बाद क्या हुआ?

"सुनते जाइए, कहती तो हूँ। इन सबों में जो कुछ हुआ है, वह सब आदि से अन्त तक आपको सुनाती हूँ। साँझ होने पर देखा, बड़े बाबू महल के भीतर आकर ऊपर गये।

मालकिन भी वहीं जा कर उनसे झगड़ने लगीं। मैं बिछौना करने के बहाने ऊपर जाकर, बग़लवाली कोठरी की खिड़की के पास खड़ी होकर सुनने लगी। मालिक ने कहा—'मैं बग़ीचेवाले मकान में जाता हूँ, पर मालकिन उन्हें किसी तरह वहाँ जाने देने को राज़ी न हुईं। जब उन्होंने मालकिन की एक भी विनती न मानी तब मालकिन ने कहा—'अगर आप जाते हैं तो मुझे भी साथ ले चलिए। मैं देखूँगी, वहाँ जाकर आप क्या करते हैं।' इस पर बड़े बाबू मालकिन को डाँटदपट कर चले गये। इसके बाद मालकिन छोटे बाबू के घर में जाकर रोते रोते बोलीं—'आपने जो उस वक्त अपने भाई से कहा था कि, यदि वे स्वयं बुरे संसर्ग से किनारा न करेंगे तो आप उन्हें बरजोरी दुःसंग से हटाने की चेष्टा करेंगे—इसका क्या अर्थ है? वे किस तरह की बुरी संगति में जा फँसे हैं? वे क्या करते हैं? सब बात खोल कर कहिए।' यह सुन कर छोटे बाबू ख़फ़ा होकर बोले—'तुम स्त्री हो, तुम्हें यह जानने की क्या ज़रूरत है?' यह कह कर वे घर से चले गये।"

यह बात सुनकर रौनक़ सिर ऊँचा करके बैठ गया। फिर बोला—"हाँ! यह बात है!" रौनक़ का हृदय आनन्द से फूल उठा। असली बात का कुछ पता तो लगा। क्या कभी यह हो सकता है कि सिर्फ़ विवाह न करने के कारण भाई भाई में वार्तालाप न हो? परस्पर वैमनस्य का कारण इस दफ़े मालूम हुआ। अब वह अपने बुद्धिबल का प्रयोग करके,

चतुराई से काम लेने का अवसर ढूँढ़ेगा। बोला—किसी दिन और भी कुछ सुना ?

बसन्ती ने कहा—बड़े बाबू दो दिन तक बग़ीचेवाले मकान में ही रह गये—घर नहीं आये। इधर मालकिन छटपटाने लगीं। मुझको बुलाकर कहा—'मेरा जी बहुत अकुला रहा है। तुम्हारे मालिक कैसे हैं—यह तुम बग़ीचे जाकर देख आ सकती हो ?' मैंने कहा—अरे दादा! वह तो यहाँ से बहुत दूर है। आध कोस से कम न होगा। मैं स्त्री वहाँ अकेली कैसे जाऊँगी ?

मालकिन ने कहा—एक दरबान को बुलाये देती हूँ। वही तुमको बग़ीचे तक पहुँचा देगा।

मैं—बहुत अच्छा।

मैं खा-पीकर पान चबाते चबाते दरबान को साथ लेकर चली। दरबान मुझे वहाँ पहुँचा कर फाटक के पास अपना अँगोछा बिछाकर, खम्भे से टिक कर बैठ गया। मैं सीधी भीतर गई। भीतर जाकर देखा, ऊपर जाने की पहली ही सीढ़ी पर कम्बल बिछाकर, रास्ता छेंके, एक ताड़का राक्षसी सोई है।

रौनक़ अचरज के साथ बोला—अयूँ।

बसन्ती ने मुसकरा कर कहा—वह सचमुच राक्षसी थोड़े थी। मैंने तो उपमा देकर कहा है। एक काली कलूटी लम्बी चौड़ी बुढ़िया हाथ पैर फैलाये घर्र घर्र करके सो रही थी। उसके सिरहाने एक हुक्क़ा रक्खा हुआ था। उसके नैचे में

चिमटा बँधा था। पैताने की ओर एक मिट्टी के फूटे बरतन में कण्डे की आग सुलग रही थी और घुइयाँ के पत्ते पर तम्बाकू रक्खी थी। मैंने पैर की आहट बचाकर नीचे के सब घरों में खोज डाला। कहीं कोई न था। तब सोचा, ऊपर जाकर भी एक बार देख लूँ। कुछ डर भी होने लगा। फिर दिल को मज़बूत करके कहा—अपने मालिक का मकान है, इसमें डर किसका? बूढ़ी जो पड़ी थी उसे लाँघ कर धीरे धीरे सीढ़ी पर पैर रख कोठे पर चढ़ गई। ऊपर एक बहुत बड़ा कमरा देखा, उसके इधर-उधर बहुतेरी कोठरियाँ थीं। कमरे के भीतर से होकर दक्खिन ओर के बरामदे में जा खड़ी हुई। पेड़ों के डाल पत्तों के बीच से देखा कि बाबू नदी के किनारे बैठकर बंसी खेल रहे हैं। तब मेरे मन में आया कि नीचे उतर कर बाबू के पास जाऊँ और उनसे कुछ कहूँ सुनूँ। बरामदे से कमरे के भीतर पैर रख ज्यों ही बीचोंबीच में आई हूँ त्यों ही जो सुनने में आया—क्या कहूँ, अरे दादा!—उसकी याद आने से अब भी सारा बदन काँप उठता है।

रौनक़—क्या? क्या? क्या सुना?

"बीचोंबीच में आई हूँ, इसी समय कोने की तरफ़ से एक आवाज़ सुन पड़ी; जैसे कोई रो रहा हो। सुनते ही मेरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये।"

"रोने का शब्द?"

बसन्ती—हाँ साहब, जैसे कोई 'उहूँ हूँ हूँ' करके अपने

हृदय की वेदना व्यक्त कर रहा हो। मैंने सोचा, ठीक दोपहर के समय कहीं कोई भूत होगा। इस सुनसान मैदान में यह मकान है। मैं यहाँ क्यों मरने आई। मेरे हाथ-पाँव थर-थर काँपने लगे। मैं धीरे धीरे सीढ़ी से उतरने लगी। फिर वही शब्द कान में आया—उहूँ हूँ हूँ,—मैं झट-पट उतरने लगी। नीचे वह बुढ़िया उसी तरह सोई थी। सबसे निचली सीढ़ी पर आकर ज्यों ही उसे लाँघ कर आगे बढ़ना चाहा त्यों ही—कहने से आपको प्रतीति न होगी—पीछे से जैसे किसी ने मेरा पैर पकड़ कर खींचा। मैं धड़ाम से उस ताड़का राक्षसी की देह पर गिर पड़ी। बुढ़िया 'अयूँ, अयूँ,' करती हुई अकचका कर उठ बैठी। मैंने आधी बैठी और लेटी अवस्था में बायें हाथ पर सिर रख कर देखा, वह बूढ़ी खुर्राट दाँत बाकर मेरी ओर आँखें फाड़कर ताक रही थी। उसके मुँह में नाम के लिए दो चार दाँत थे। सिर के बाल बिलकुल सफ़ेद थे। दोनों आँखें बाघिन की तरह चमक रही थीं। वह मुझे देखकर ज़ोर से 'चोर चोर' चिल्लाने लगी। तब मैं उठ बैठी और मैया दादा कह कर रोने लगी। हाथ की दो उँगलियों और नाक में चोट लग गई थी। उस बुढ़िया की चिल्लाहट सुनकर बाग़ का माली दौड़ा आया। मुझे देखकर बोला—"यह कौन मिहररुआ है? कहाँ से आई है?" मुझे एक तो चोट लगी थी, इस पर माली के मुँह से यह बात सुनकर मुझे क्रोध चढ़ गया। मैंने कहा—"कौन मुँहझौंसा मिहरारू मिहरारू कर

रहा है ? छोटे मुँह बड़ी बात ? बाबू से कहकर मैं अभी निकलवा दूँगी ? मुझे जानते नहीं हो ?" माली ने कहा—"जानता हूँ, तू चोर है। चल, तुझे बाबू साहब के पास पकड़ कर ले चलता हूँ ।" मैंने कहा—"ख़बरदार ! जो मेरा हाथ पकड़ा। चल, मैं ख़ुद बाबू के पास चलती हूँ ।" उसके साथ साथ जब मैं नदी के किनारे गई तब माली ने हाथ जोड़ कर बाबू साहब से कहा—"हुज़ूर, एक चोर पकड़ा है"—मैंने "चुप रह, मुँहझौंसा" कहकर उसे धमकी दे बाबू को प्रणाम करके कहा—"मालकिन ने मुझको आपकी तबीअत का हाल जानने के लिए भेजा है। वे बड़ी चिन्ता में पड़ी हैं।" यह सुन कर बाबू दाँत पीस कर मेरी ओर देखने लगे। बोले—मकान के भीतर गई थी ?" मैंने कहा—"हाँ, आपको खोजने गई थी।" फिर उन्होंने पूछा—"ऊपर भी गई थी ?" मैंने कहा—"जी नहीं।" उनके मुँह और आँखों का भाव देखकर मुझे इतना डर हुआ कि मैं इसे अस्वीकार कर गई। मैंने कहा—"ऊपर जाने की इच्छा तो हुई थी, किन्तु एक बुढ़िया वहाँ सोई थी। उसके बदन से मेरा पैर टकरा गया, इससे मैं धड़ाम से गिर पड़ी।" यह सुनकर बाबू ने कहा—जा, महल में कह देना, मैं अच्छा हूँ।

रौनक़—तब तुम घर लौट आईं ?

"हाँ, फाटक के बाहर आकर देखा, दरबान उसी जगह खम्भे में पीठ अड़ाये मज़े में सो रहा है। उसे जगाकर साथ

हुई थी, उसके बाद से ही रौनक़ के मन में भाँति भ
होने लगीं। बग़ीचे के मकान में बसन्ती ने जो रोन
सुनी थी, वह भूत का रोना था, इस पर किसी तर
विश्वास नहीं हुआ। यद्यपि वह भूत के अस्तित्व को सम्पूर्
से मानता है किन्तु दिन दोपहर को मनुष्य के घर में आकर
भूत क्यों रोवेगा? इसका कोई कारण न जान सकने पर
रौनक़ ने स्थिर किया कि इस घर में अवश्य ही कोई न कोई क़ैद
है। ज़मींदारी चलाने के लिए कभी कभी ऐसे दो एक बेक़ानूनी
काम करने ही पड़ते हैं। वह भी पहले ऐसा काम कर चुका
है। वह सोचने लगा—इस मामले में बन्दी कौन है, और बग़ीचे-
वाले मकान में ही क्यों बन्दी है? फिर जिस मकान में ऐसा
एक आदमी क़ैद है उसमें बाबू साहब ही दो तीन दिन क्यों
रह गये? वह क़ैदी कोई औरत तो नहीं है? छोटे बाबू ने जो
बड़े बाबू को धमकाया था, उसके साथ इस क़ैदी स्त्री या पुरुष
का कोई सम्बन्ध तो नहीं है? जैसे हो, इस रहस्य को खोलना
पड़ेगा—यह निश्चय करके दूसरे दिन सबेरे कुरता पहन, हाथ
में बाँस की छड़ी ले, रौनक़ घूमने निकला। आज विजयादशमी
की तातील थी। कचहरी का काम बन्द था, इसलिए इस समय
घूमने में कोई बाधा न थी।

घूमते घूमते रौनक़ वाटिकागृह के समीप जा पहुँचा। एक-दम
उसके भीतर नहीं चला गया। बाहर ही बाहर घूम कर उस मकान
के बाहरी दृश्य को देखने लगा। भीतर से खिड़की-झरोखे

मनुष्य के रहने का कोई चिह्न देखने में नहीं आया। वह नदी के किनारे पहुँचा। देखा, उस पार जाने का कोई उपाय नहीं है। उस पार मैदान ही मैदान है। गाँव-वाँव कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। मैदान की सीमा पर बाँस के जङ्गल के बीच एक मन्दिर का गुम्बज़ और अटारी का ऊपरी हिस्सा धुँधला-सा दिखाई देता है। अवश्य ही वहाँ कोई बस्ती है। रौनक़ गुनगुना कर गाता और छड़ी घुमाता घुमाता प्राकृतिक शोभा देखने लगा। इसी समय उसने एकाएक देखा कि बग़ल में, थोड़ी दूर पर, बग़ीचे के सामनेवाले घाट पर एक बुढ़िया कलसी लेकर पानी भर रही है। दूर होने के कारण उसने बुढ़िया की सूरत-शकल स्पष्ट रूप से नहीं देखी। किन्तु पहिनावे ओढ़ावे से वह पश्चिम की रहनेवाली-सी जान पड़ी। उसकी ओर टकटकी बाँध कर रौनक़ देखने लगा। देखा कि वह पानी भर कर मकान की ओर बढ़ी। कहीं वह दृष्टि-पथ से बाहर न हो जाय, इस भय से रौनक़ भी धीरे धीरे उस ओर जाने लगा। कुछ दूर आगे जा, एक पेड़ की ओट में खड़े होकर देखा कि उस बुढ़िया ने मकान के बरामदे में पहुँच, कलसी नीचे रख, कमर से एक कुँजी निकाली। एक दरवाज़े में ताला लगा था, उस ताले को खोल वह भीतर गई। भीतर से उसने किवाड़ बन्द कर दिया। उसी ओर को ध्यान रख रौनक़ इधर-उधर टहलने लगा। कुछ देर बाद देखा कि बुढ़िया फिर कलसी लेकर बाहर आई और दरवाज़े में ताला लगा दिया। फिर नदी

से पानी लाकर पहले की तरह ताला खोल भीतर गई और किवाड़ बन्द कर दिया। तब रौनक़ मन ही मन हँस कर बोला, "इस भूत को जल की तृषा बहुत अधिक देखता हूँ।" इस दफ़े जो भीतर गई सो बुढ़िया फिर बाहर न आई। कुछ देर बाद कोठे की एक छोटी खिड़की से धुआँ निकलने लगा। रौनक़ ने मन में कहा—भूत बड़ा शौकीन मालूम होता है। कच्ची चीज़ खाना पसन्द नहीं करता।

तब प्रायः एक पहर दिन चढ़ आया था। रौनक़ अपने मन में गुनगुना कर गाता हुआ बाग़ के सामने के फाटक की ओर बढ़ा। फाटक की राह से माली के घर के पास जा खड़ा हुआ। माली घर के सामने एक चारपाई पर बैठा बेटे के लिए कुरता सी रहा था। पिछले महीने डेवढ़ी पर जब माली महीना लेने गया था तब रौनक़लाल को देख आया था। उसे पहचान कर उठ खड़ा हुआ और सलाम किया।

रौनक़—कहो चौधरी, अच्छे तो हो ?

"जी हाँ अच्छा हूँ।" कहकर उसने झटपट खाट पर से सब चीज़ें हटा दीं। उसके ऊपर एक पुरानी-सी दरी बिछा कर वह रौनक़लाल को बैठने का आग्रह करने लगा।

रौनक़ ने बैठकर कहा—तम्बाकू रखते हो ?

"हाँ बाबू—तम्बाकू भर लाता हूँ"—कहकर वह तम्बाकू भरने गया। कुछ देर में चिलम की आग को फूँकते फूँकते एक केले के पत्ते की डंडी हाथ में लिये उपस्थित हुआ। रौनक़ ने

जेब से छुरी निकाल कर डण्डी काट छाँट कर ठीक कर ली। तम्बाकू पीते पीते माली से कहा—तुम कुछ कच्चे केले और केले का फूल काट कर दे सकते हो? बाज़ार में आज-कल कोई तरकारी नहीं मिलती। खाने-पीने में बड़ी तकलीफ़ हो रही है।

"जी हाँ, दे सकता हूँ। अभी काट कर लिये आता हूँ।"

"अच्छा, ले आना। इतनी जल्दी क्या है? अभी बैठो, कुछ गप-शप करें। जाते समय ले लूँगा।"

माली बैठ गया। रौनक़ उसके देश, और बाल-बच्चों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने लगा। माली का घर कानपुर ज़िले में है। दस बारह वर्ष से पूरब में काम करता है। यहाँ उसकी स्त्री, एक लड़का और लड़की है। और भी दो बच्चे हुए थे पर वे बचपन में ही जाते रहे। इसी समय माली का लड़का वहाँ आकर खड़ा हो गया। पैरों में काँसे के कड़े हैं। एक मैली-सी गंजी पहने है और हाथ में तीर-धनुही है। रौनक़ ने पूछा—क्या यही तुम्हारा लड़का है? क्यों रे! तेरा नाम क्या है?

उसने कहा—रमफलवा।

"रमफलवा, अच्छा! लो, मिठाई खाने के लिए एक पैसा लो।"

रमफलवा ने पैसा ले, झट उसे बाँयें हाथ में रख लिया। उस हाथ को पीठ पीछे छिपा कर और दहिना हाथ फैला कर बोला—और।

रौनक़ ने हँसकर कहा--और लोगे ? अच्छा यह लो। और लो।"

वह पैसा भी पीठ के पीछे रक्खे हुए बायें हाथ में तुरन्त रख कर फिर दहिना हाथ आगे बढ़ा कर बोला--और।

तब माली लज्जित होकर अपने बेटे से--"तू तो बड़ा पाजी मालूम होता है" कहकर उसे खींच कर भीतर ले जाने लगा। इस अन्याय और अत्याचार के बदले में रमफलवा ने सातवाँ सुर अलापना आरम्भ किया। रौनक़ ने कहा—छोड़ दो, छोड़ दो। अच्छा, रो मत; यह ले, एक पैसा और ले।

पैसा पाकर रमफलवा ख़ुशी से नाचता हुआ चला गया। उसके पैसा पाने का समाचार सुनकर उसकी छोटी बहन भी आ पहुँची। उसने कुछ भूमिका बाँधे बिना ही हाथ फैला दिया। इतने में माली की स्त्री—"इधर आ छोरी, आज तुझको मारते मारते" कह कर उसे पकड़ने आई। रौनक़ ने कहा--जाने दो, उसे मत रुलाओ--कहकर उस लड़की से कहा—यह ले, तू भी दो पैसे ले।

बातचीत करते करते तम्बाकू जलने लगी। बाबू के हाथ से चिलम लेकर बीच बीच में माली भी प्रसाद पाने लगा। फिर एक चिलम तम्बाकू और भर लाया। अपने घर के सुख-दुखों का वर्णन करते करते माली ने कहा--आज-कल का समय बड़ा ही कठिन हो पड़ा है। चारों ओर दुर्भिक्ष फैला है। जो महीना पाता हूँ उससे भली भाँति निर्वाह नहीं होता। बाबू साहब

से कहकर आप मेरा महीना कुछ बढ़वा दें तो बड़ा उपकार हो। यह ग़रीब जन्म भर आपका नाम लेता रहेगा।

माली के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट करके रौनक़ ने कहा—ठीक है; तुम जो महीना पाते हो उसमें तुम्हारी गुज़र नहीं होती। तुम्हें कष्ट होता है। अहा! यह बात मुझसे इतने दिनों तक क्यों नहीं कही? आदमी परदेश में नौकरी करने क्यों आता है? तुम आये हो, मैं आया हूँ, सो किस लिए? अगर पेट भी न भरा तो अपना घर छोड़ विदेश में पड़े रहने से लाभ? अच्छा, मैं तुम्हारे लिए बाबू से अवश्य कहूँगा। हाँ, इस दफ़े जब बाबू यहाँ आवें तो तुम भी एक बार उनसे ख़ुद कहना।

माली—क्या बाबू जल्दी आवेंगे?

"शीघ्र ही एक दिन आवेंगे। केवल काम की अधिकता से नहीं आ सकते हैं। अवसर पाते ही आवेंगे"—कहकर रौनक़ एक बार अटारी की ओर देखकर, दूसरी ओर नज़र फेर मुस्कुराने लगा। माली भी सन्दिग्ध भाव से रौनक़लाल के मुँह की ओर चुपचाप देखता रहा।

कुछ देर चुप रह कर रौनक़ ने कहा—यहाँ तो एक बुढ़िया रहती थी, वह नहीं दीखती?

माली—है तो।

सुनकर रौनक़लाल माली के मुँह की ओर देखकर प्रकाश्य भाव से मुस्कुराने लगा। पूछा, वह तुम्हारी कोई होती है?

"हाँ बाबू, वह मेरी सास है। मेरी स्त्री की माँ नहीं है। उसकी चाची है।"

रौनक़—तुम तो बड़े नमकहलाल नौकर हो; तुम्हारा महीना तो बढ़ाना ही उचित है। बाबू से कहकर मैं अवश्य ही तुम्हारा महीना बढ़वा दूँगा। किन्तु देखो चौधरी, भूलकर भी कभी मालिक की नमकहरामी नहीं करना।

"जी नहीं—मेरे प्राण रहते यह न होगा" कहकर माली रौनक़ के मुँह की ओर बड़े कुतूहल के साथ देखने लगा।

रौनक़—तो अब जाता हूँ। चलो, केले के दो एक फूल काट कर दे दो।

तरकारी इकट्ठी हो जाने पर माली ने कहा—बाबू, कैसे ले जाइएगा?

"तुम अपने अँगोछे में बाँध दो। कल फिर आकर तुम्हारा अँगोछा लौटा दूँगा।"

माली ने वही किया। बिदा होते समय रौनक़ ने कहा—देखो, तुमसे एक बात कहता हूँ। किन्तु किसी के आगे यह बात ज़ाहिर नहीं करना। मैं तो तुम्हारा महीना बढ़ाने की चेष्टा करूँगा ही। किन्तु मान लो, यदि बाबू मेरी बात न सुनें तो मेरे इलाक़े में काम करोगे? वहाँ एक जगह ख़ाली है, दूना महीना मिलेगा।

"कहाँ?"

"जिस बाबू के यहाँ मैं पहले था वे बहुत दिन से एक

होशियार माली खोजते हैं। अन्तरवेद के माली बड़े चतुर होते हैं। तुम्हारा घर भी तो वहीं है। लखनऊ का माली रहता तो बड़े ठाट-बाट से है, परन्तु मेहनत नहीं करता—इससे उनको लखनौवा माली पसन्द नहीं। वे कहते थे, अच्छा मिहनती माली मिले तो उसे बारह रुपये तक महीना देकर रख लेंगे।"

"वह यहाँ से कितनी दूर है?"

"बहुत दूर नहीं, बलिया से बहुत क़रीब ही है। मेरे भाई वहाँ के सदर दीवान हैं। दस बारह रुपया महीना तो मिलेगा ही और यदि खेती-बारी करना चाहोगे, तो मैं अपने भाई से कह कर अच्छी ज़मीन तुमको नाम-मात्र की मालगुज़ारी पर दिला सकता हूँ।"

माली—बाबू, पहले आप इस मालिक के पास कोशिश करके देखिए। यदि बाबू साहब की दया होगी तो यहीं रहूँगा; जो न होगी तो आप वहीं मेरी नौकरी लगा दीजिएगा।

"कोशिश तो ज़रूर ही करूँगा। बहुत संभव है, यहीं महीना बढ़ जायगा। कैसे ही हैं, हैं तो पुराने मालिक। पुराने ही चावल का भात बढ़िया होता है। जैसी तुम उनकी सेवा करते हो, इस ख़याल से तो उन्हें चाहिए कि वे अवश्य ही तुम्हारा महीना बढ़ा दें।"

"दयाभाव रखिएगा" कहकर माली ने रौनक़लाल को सलाम किया। रौनक़ तरकारी की गठरी हाथ में लटका कर धीरे धीरे अपने घर को लौटा।

पाँच बज गये। उजले काग़ज़ का एक रजिस्टर बग़ल में दबाये सेक्रेटरी महाशय उपस्थित हुए। हिलते डोलते हुए ख़ूब मोटे ताज़े सभापति महाशय भी आ पहुँचे। उनके पीछे पीछे चपरास लटकाये अर्दली भी हाज़िर हुआ। एक नौकर ने सभा-भवन को झाड़ बुहार कर पहले ही ठीक कर रक्खा था। बीच घर में आध हाथ ऊँची एक चौकी थी, उस पर गलीचा बिछा था। इसी आसन पर सभापति विराजते थे। शब्दवारिधि महाशय को अपनी बाईं ओर बिठाकर सभापति स्वयं उस पर बैठे। चौकी की दाहिनी ओर एक लम्बी दरी बिछी थी, उस पर ब्राह्मण सभ्य बैठे। चौकी के सामने एक कम्बल पर क्षत्रिय, वैश्य और कायस्थ तथा बाईं ओर जो चटाई बिछी थी उस पर शूद्र बैठे। शब्दवारिधि महाशय ने एक संस्कृत-स्तोत्र पढ़कर सभा का कार्य आरम्भ कर दिया। सेक्रेटरी रजिस्टर खोल कर [illegible] विवरण लिखने लगे।

स्तोत्र-पाठ समाप्त होने पर, सभापति की आज्ञा से, इस दफ़े विपिनविहारीलाल अपना लेख पढ़ने को उद्यत हुए। लेख का विषय यही था—"भारतवर्ष एक-मात्र कर्मभूमि क्यों है?" विपिन बाबू ने जेब से एक मोड़ा हुआ काग़ज़ निकाला, उसे फैलाकर और आँखों पर चश्मा ठीक करके वे उसे पढ़ने लगे। लेख के प्रथम पैराग्राफ़ की भाषा बड़ी ही गम्भीर थी—पंडित अम्बिकादत्त जी या स्व० प्रतापनारायण मिश्र के गद्य लेख के मुक़ाबले की थी। विपिन बाबू ने यों पढ़ना आरम्भ किया—

"रजत किरीट-मंडित, गगनचुंबी भूभृद्राज हिमालय जिस भारतवर्ष के मस्तक को गौरवान्वित करके युगयुगान्त से खड़ा है, नवीन नीरद-निभ नील कानन-परिकीर्ण, सिंह-सर्प-शार्दूल वराह-भल्लूकोद्वेजित विन्ध्यपर्वत जिस महाभूमि का मेखला-भूषण हो विराजमान है; सकल पापप्रक्षालिनी जनमनोहारिणी गङ्गा गोदावरी नर्मदा यमुना आदि सैकड़ों सरिताएँ जिस देश को प्रतिदिन अमृत-धारा से परिषिञ्चित करके कलकल ध्वनि से लहरें लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए प्रवाहित हो रही हैं वह भारतवर्ष संसार में एक-मात्र कर्म्मभूमि क्यों है? अज्ञान-अन्धकार से ढकी हुई अति मन्द बुद्धि के द्वारा मैं इसका उत्तर क्या दूँगा?"

दो तीन पैराग्राफ़ों के बाद ही भाषा ने अत्यन्त लघुरूप धारण किया। क्रमशः लेख के पाठक ने जब विपक्षियों पर अर्थात् एक ओर उन साधारण हिन्दुओं पर आक्रमण किया जो कहते हैं कि भारतवर्ष देवताओं और ऋषियों की लीलाभूमि था, इसी कारण से यह कर्मभूमि है और जब लेखक ने दूसरी ओर उन अविश्वासियों पर आक्रमण किया जो कहते हैं कि भारतवर्ष ही क्यों, बल्कि और देश भी मनुष्य की कर्मभूमि हो सकता है, तब हिन्दी-साप्ताहिक पत्रों के 'तू तू-मैं मैं' का स्वर ध्वनित हो उठा। विरुद्ध सम्प्रदायवालों को बहुत कुछ खोटी खरी सुनाकर अन्त में निबन्ध-पाठक ने अपने मत के समर्थन में अग्रलिखित युक्ति का वर्णन किया—

"भारतवर्ष ही एक-मात्र कर्म्मभूमि है, पृथ्वी का अन्य कोई देश कर्म्मभूमि नहीं हो सकता—इसका प्रमाण, हे नये बाबू और बबुआनियो ! तुम्हारे इस पाश्चात्य विज्ञान से ही दिखा दूँगा। ग्यानो साहब की फ़िज़िक्स में लिखा है कि १८२१ ई० में बर्लिन के अध्यापक सीबेक साहब ने यह आविष्कार किया था कि यदि दो धातुखंडों के द्वारा एक पत्तर बनाया जाय और उसके जोड़ पर यदि आग का ताप दिया जाय तो विद्युत् का प्रवाह उत्पन्न होता है। इसका कारण यही कि, धातुखण्ड के दोनों प्रान्तों में उत्ताप की विषमता उत्पन्न होते ही विद्युत् प्रवाहित होती है। हे भाइयो ! अब आप लोग देखिए, हमारे इस भारतवर्ष की अवस्था कैसी है ? इस भारतवर्ष की मिट्टी में दो ही क्यों अनेक धातुएँ मिली हुई हैं। इस देश के शीर्षस्थान में चिरकाल से बर्फ़ का ढेर विद्यमान है और पदस्थान निरक्षवृत्त के बहुत नज़दीक है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे देश के माथे पर बर्फ़ और पैरों पर आग रक्खी है। इसी से कुमारी अन्तरीप से लेकर हिमालय पहाड़ तक बराबर वैद्युतिक प्रवाह जारी रहता है। इतना अधिक विद्युत्प्रवाह और किसी देश में नहीं। आप लोगों ने भूगोलशास्त्र अवश्य पढ़ा होगा और पृथ्वी का मानचित्र (नक़शा) भी देखा होगा। कहिए, आपने ऐसा और कोई देश दुनिया में देखा है जिसके माथे पर बर्फ़ और पैरों पर आग हो ? इसी लिए भारतवर्ष पृथ्वी में एक-मात्र कर्म्मभूमि है। पुराण में भी कथा के

बहाने यही तत्त्व लिखा हुआ है। हिन्दुओं का त्रिगुणात्मक ईश्वर वैद्युतिक शक्ति का पूर्ण विकाश है। अल्पज्ञ हिन्दू लोग जिस विष्णु को सृष्टिपालक मानकर पूजते हैं—वह पाज़िटिव इलेक्ट्रीसिटी का आधार है। संहारकर्ता महेश्वर नेगेटिव इलेक्ट्रीसिटी के सिवा और कुछ नहीं। ब्रह्मा जीरो पाइन्ट है। महादेव अर्थात् नेगेटिव इलेक्ट्रीसिटी हिमालय पर्वत पर है। नारायण, जो पाज़िटिव इलेक्ट्रीसिटी है, भारत-महासागर में शेष-शय्या पर शयन करता है। इसलिए कुमारी से हिमालय तक प्रचण्ड विद्युत्प्रवाह क्यों न बहेगा? इसी विद्युत् के बल से हमारी आत्मा सदा विद्युन्मय रहती है। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि ऐसी प्रबल शक्तिशालिनी विद्युत की जय मनावें। विद्युत की जय मनाकर मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।"

लेख का पढ़ना समाप्त होते ही सभासदों की करतल-ध्वनि से सभाभवन गूँज उठा। सभी लोग विपिनविहारीलाल के बुद्धि-कौशल की प्रशंसा करने लगे।

सभापति ने कहा—विपिन बाबू के निबन्ध-सम्बन्ध में यदि किसी को कुछ कहना हो तो कहें।

किसी को कुछ न कहना था। सभासदों को चुप देख शब्द-वारिधि माधवानन्द जी बायें हाथ में नसदानी ले दहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से किञ्चित् सुँघनी निकाल, नाक में ठूँसते हुए बोले—"श्रीमान् बाबू विपिनविहारीलाल ने जो कुछ

कहा है वह बहुत ठीक है। इलेक्ट्री के सिवा और कुछ नहीं है। असल चीज़ इलेक्ट्री ही है। भारत देश कर्म्म-भूमि है और अन्यान्य देश हैं भोग-भूमि। विष्णुपुराण में इसका प्रमाण लिखा है; यथा—

तत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्म्मभू एषा ततोऽन्या भोगभूमयः॥

विपिन बाबू ने कहा है कि हिमालय में बहुत अधिक इलेक्ट्री है, यह बात भी बहुत ठीक है। इसी लिए तो शास्त्र में उत्तर ओर सिरहाना कर सोना मना है। इसका प्रमाण लीजिए—

प्राक्शिराः शयने विद्यां धनमायुश्च दक्षिणे।
पश्चिमे प्रबलां चिन्तां हानिं मृत्युं तथोत्तरे॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे

"अर्थात् उत्तर ओर सिरहाना करके सोने से मनुष्य के शरीर की बिजली हिमालय खींच लेता है, इसी से मनुष्य दुर्बल होकर मृत्यु-मुख में पतित होता है।" यह कह कर शब्दवारिधि जी ने दो तीन बार खूब ज़ोर से नस लिया। फिर नसदानी को कमर में खोंस कर बोले—विपिन बाबू! आज आपने जो तत्त्व की बात सुनाई है उससे मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूँ। आशीर्वाद देता हूँ, आप चिरञ्जीवी हों।

विपिनविहारीलाल ने इस प्रशंसा-वाक्य से संकुचित हो सिर झुका लिया।

तेरहवाँ परिच्छेद

साँझ हुई। नौकर ने आकर बत्ती जलाई। सभापति ने कहा—अब सायं-सन्ध्या करने का समय हो गया।

आज्ञा पाकर नौकर ने बिजली की कल लाकर चौकी पर रख दी। सभापति महाशय चौकी से नीचे उतर ब्राह्मण सभ्यों के साथ खड़े हुए। परस्पर सभी ने एक दूसरे का हाथ पकड़ा। प्रथम व्यक्ति ने अपने खुले हाथ से कल की पीतल की नली पकड़ी। शब्दवारिधि जी धीरे धीरे कल घुमाने लगे। पहले जब इस काम के लिए कल आती थी तब एक नौकर कल घुमाता था और शब्दवारिधि महाशय भी अन्यान्य ब्राह्मणों के साथ खड़े होकर बिजली का प्रवाह ग्रहण करते थे। किन्तु उनके हाथ में बड़ी झनझनाहट मालूम होती थी। इससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने एक ढंग निकाला। सभासदों से कहा—"देखिए, आप लोगों के साथ मिल कर विद्युत् ग्रहण करना मेरे लिए ठीक नहीं। मैं बूढ़ा हूँ, मेरी उम्र बहुत अधिक हो गई है। मैंने जप तप करके देह में बहुत बिजली सञ्चय कर रक्खी है। आप लोगों की उम्र कम है, भोजनादि सम्बन्ध में भी आप लोग मेरी तरह नियम-बद्ध होकर नहीं रह सकते। आप लोगों की बिजली मेरी अपेक्षा बहुत थोड़ी है। आप लोगों के साथ मिल कर इलेक्ट्री लेने से मेरे शरीर की

कुछ बिजली निकल कर आप लोगों के शरीर में चली जा सकती है। इसलिए मेरा प्रस्ताव यही है कि आप लोग गोलाकार होकर खड़े हों, और मैं कल घुमाता जाऊँ।" सभापति ने इस युक्ति के सारांश को स्वीकार किया। तब से शब्दवारिधि जी ही कल घुमाने लगे।

जब ब्राह्मण लोग सायं-संध्या कर चुके तब क्षत्रिय, वैश्य और कायस्थ खड़े हुए। थोड़े ही समय में कल घुमा कर पण्डित जी ने उन लोगों का संध्या-कर्म सम्पन्न करा दिया। इसके अनन्तर शूद्र लोगों ने भी खड़े होकर भगवान् का स्मरण किया। अब सब लोग अपने अपने स्थान पर आ बैठे।

सेक्रेटरी ने कहा—दिवाली को काली-पूजा होगी। दिवाली आने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। उस दिन हमारी सभा का वार्षिकोत्सव होगा। इसलिए इस सम्बन्ध में परामर्श और कार्यकारिणी समिति का संगठन करना आवश्यक है।

सभापति ने कहा—क्या उत्सव के ख़र्च की एक फ़ेहरिस्त तैयार की है ?

सेक्रेटरी पाकेट से एक काग़ज़ निकाल कर ख़र्च की फ़ेहरिस्त पढ़ने लगे। निमन्त्रणपत्र और प्रोग्राम छपवाने का ख़र्च, सभास्थल सुसज्जित करने और खाने-पीने की चीज़ें ख़रीदने तथा पान, तम्बाकू, सिगरेट आदि मोल लेने में सब मिला कर उन्होंने सौ रुपये का हिसाब दिखलाया।

सभापति ने कहा—यह ख़र्च सभ्य लोग थोड़ा थोड़ा करके दे दें। इसमें सभास्थ लोगों की क्या सम्मति है?

सभ्यों में किसी ने कुछ सम्मति प्रकाश नहीं की। सभी नीचा सिर कर स्थिर दृष्टि से धरती की ओर देखते हुए गम्भीर तत्त्व की चिन्ता में निमग्न हो पड़े।

सेक्रेटरी ने कहा—सभा के फ़ंड में एक पैसा भी जमा नहीं है, बल्कि सभा के बहुत रुपये लोगों के ज़िम्मे बाक़ी हैं। कितने ही सभ्यों से कई महीने का चन्दा नहीं मिला है। किसी के यहाँ दो, किसी के यहाँ पाँच, और किसी किसी के यहाँ तो दस रुपये तक बाक़ी पड़े हुए हैं। गत वर्ष में उत्सव के लिए जो चन्दा लिखा गया था वह किसी किसी सभ्य ने अब तक देने की कृपा नहीं की है। यदि सभ्य लोग हाल बक़ाया कुल रुपया नहीं चुकायेंगे तो वार्षिक उत्सव कैसे हो सकता है? सभापति महाशय ने कृपा करके अपने पास से रुपया देकर इतने दिन सभा का काम चलाया है। इस विषय में यदि सभ्य लोग ध्यान न देंगे तो कार्य में बड़ी गड़बड़ी होगी।

सभापति ने कहा—जो मासिक चन्दा रजिस्टर में लिखा है उसका आधा भी वसूल नहीं होता। सभा का ख़र्च प्रायः मासिक चन्दे के बराबर है। कुल चन्दा वसूल न होने से सभा का ही काम ठीक ठीक नहीं चल सकता है, सभा-सम्बन्धी और काम कैसे होंगे? सभा के मासिक ख़र्च के सिवा कुछ और भी ख़र्च किया जाता तो अच्छा होता। विद्युत् के

सम्बन्ध में अच्छी अच्छी अँगरेज़ी पुस्तकें मोल लेकर रखनी चाहिएँ। इस सभा से एक मासिकपत्र का निकलना नितान्त आवश्यक है। इस सभा में जिन गम्भीर विषयों की आलोचना होती है, जो अच्छे अच्छे निबन्ध पढ़े जाते हैं, वे सब हमीं लोगों के बीच में घिरे रह जाते हैं—वे संसार के किसी उपकार में नहीं आते। एक मासिकपत्र होता तो ये तत्त्व की बातें उसके द्वारा प्रकाशित होने से संसार का बहुत-कुछ उपकार हो सकता। इन सब कामों के लिए बहुत रुपये चाहिए, पर माहवारी आठ आना चन्दा तक तो लोग देते नहीं। हम अकेले इतने रुपये कहाँ से लावें? इस कार्य के लिए कोई उपाय स्थिर करना चाहिए।

शब्दवारिधि महाशय ने कहा—जब आमदनी-ख़र्च की बात निकली है तब मैं भी अपनी एक बात इस समय सूचित कर देना ही उचित समझता हूँ। आप लोग मुझे जो दस रुपये मासिक देते हैं, उससे अब मेरा निर्वाह नहीं होता। अरवा चावल की दर जैसी दिनदिन चढ़ती जा रही है इससे तो यही जान पड़ता है कि अन्त में मुझे भुजिया चावल खाना पड़ेगा।

इस पर कितने ही सभ्य एक साथ बोल उठे—सर्वनाश! सर्वनाश! आप ऐसा हर्गिज़ न कीजिए। इससे आपके शरीर की इलेक्ट्रीसिटी घट जायगी।

"इलेक्ट्री घटने ही के डर से तो मैंने अभी तक अरवा

चावल नहीं छोड़ा है। अरवा चावल, गाय के घी और कच्चे केले ही में सबसे ज़्यादा बिजली रहती है। अरवा चावल की दर जैसी चढ़ी है, वह मैं कही चुका हूँ। गाय का विशुद्ध घी मिलना कठिन होगया है। मिलता भी है तो तीन रुपये सेर। बाज़ार में ऐसी आग लगी है कि पैसे में कच्चे केले की दो छीमी भी नहीं मिलतीं। आप ही कहिए क्या खाकर देह की इलेक्ट्री बढ़ाऊँगा। मेरी वृत्ति महीने में पाँच रुपया और न बढ़ाई जायगी तो काम नहीं चलेगा" कह कर पण्डित महाशय कातर दृष्टि से सभापति के मुँह की ओर देखने लगे।

सभापति बोले—इस विषय में भी विवेचना करनी होगी। सभा की जैसी हालत देख रहा हूँ, इससे यही जान पड़ता है कि कुछ और धनवान् सभ्यों का संग्रह न किया गया तो सभा न चल सकेगी। इस आज़मगढ़ ज़िले में कितने ही बड़े बड़े धनवान् ज़मींदार हैं, उनके पुत्र फिटिन गाड़ियों पर चढ़ भाँति भाँति की नवाबी करके रुपया उड़ाते हैं। उनमें से यदि थोड़े भी इस सभा के सभ्य हो जायँ तो अनायास ही सभा का दारिद्र्य मिट जा सकता है और सभी काम मज़े में चल सकते हैं। इसलिए मेरा प्रस्ताव यह है कि इस दफ़े वार्षिक उत्सव में कुछ चुने चुने बड़े आदमियों के लड़कों को न्यौता दिया जाय और वे अनुरोधपूर्वक बुलाये जायँ। इस सभा की उपकारिता समझने पर वे अवश्य ही सभ्य होना स्वीकार कर लेंगे।

सभी ने कहा—यह प्रस्ताव अति उत्तम है।

सेक्रेटरी ने कहा—आप लोग क्या सच्ची बात जानते हैं? आज-कल धर्म में थोड़े ही लोगों की बुद्धि पाई जाती है। गम्भीर भाव से किसी विषय का विचार करनेवालों की संख्या कम ही है। यदि कोई उनसे तत्त्व की बात कहे तो वे उसे हँसी में उड़ा दें। उस दिन हमारे यहाँ काशी से दो बाबू आये थे। उन्होंने अपने को अभिमानपूर्वक हिन्दू कहा और हमारी सभा के छपे हुए नियम-पत्र पढ़ कर हँसने लगे। उन्होंने मुझसे कहा—सुनिए महाशय, एक बिजली का तार लाकर उसके दोनों छोरों से यदि आपकी सभा के दो बड़े सभ्यों की शिखा का स्पर्श करा दिया जाय तो झक से बिजली की रोशनी तार के भीतर बल उठ सकती है। फिर आपके यहाँ मुफ़्त में ही इलेक्ट्रिक लाइट हो सकती है।

यह सुनकर सभा में स्थित सभी लोगों के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। केवल पण्डित महाशय के होंठों में कुछ हँसी की झलक दिखाई दी थी। किन्तु उन्होंने उसे तुरन्त रोक लिया।

एक स्थानीय वकील के बेटे रामकुमार ने कहा—अवश्य ही अनभिज्ञ लोगों की संख्या अधिक है परन्तु खोज करने से हमारे सभापति महाशय के सदृश दो चार तत्त्वज्ञानी और धनी उदार व्यक्ति भी मिल सकते हैं। कुछ दिन पहले यहाँ एक नये वकील प्रैक्टिस करने आये थे। उनका नाम मुंशी

मोतीलाल श्रीवास्तव है। वे एम० ए० पास हैं। मांस मछली नहीं खाते हैं। उन्होंने विवाह भी नहीं किया है। धर्म में उनकी बड़ी निष्ठा है। जहाँ तक हो सकता है, वे धर्म-कार्य करने में नहीं चूकते। वे इस समय प्रैक्टिस छोड़कर घर बैठे केवल शास्त्रचर्चा और नित्यकर्म ही किया करते हैं। हरिदास नामक उनका एक किसान किसी मुक़द्दमे में हमारे यहाँ दादा के पास आया है। उसके मुँह से मोतीलाल जी की बहुत प्रशंसा सुनी है। वह कहता था, वे तो ऋषितुल्य हैं। ऐसे लोगों को यदि हमारी सभा की उपकारिता एक बार सुना दी जाय तो वे अवश्य ही खुले हाथ सभा को द्रव्य-साहाय्य दे सकते हैं।

सभापति ने कहा—हाँ ठीक है। जब मोतीलाल जी यहाँ थे तब उनसे मैंने बातचीत की थी। वे बड़े ज्ञानी हैं। उन्हें तो बुलाना ही चाहिए।

सेक्रेटरी ने कहा—उनका पता क्या है, उनके पास मैं अभी निमन्त्रण-पत्र भेजे देता हूँ।

सभापति ने कहा—सिर्फ़ निमन्त्रण-पत्र ही नहीं, उसके साथ मैं अपने हाथ से एक चिट्ठी भी लिख दूँगा। रामकुमार बाबू उस हरिदास के हाथ चिट्ठी भेज देंगे और उससे समझा कर कह देंगे जिसमें वह किसी तरह काली-पूजा के दिन वार्षिकोत्सव में मोतीलाल जी को अपने साथ लेता आवे। हरिदास कब जायगा ?

रामकुमार—वह तो कल ही जायगा।

सभापति—तो मैं कल सवेरे एक चिट्ठी लिखकर आपके घर पर भेज दूँगा। आप वह चिट्ठी हरिदास को देकर सब बात समझा दीजिएगा।

इसके बाद और कई ज़मींदारों के बेटों का नाम लिया गया और इस बात की आलोचना होने लगी कि उत्सव के दिन उनको बुलाने के लिए कौन-सा उपाय करना चाहिए। फिर कार्यकारिणी सभा का संगठन हुआ।

क्रमशः रात के नव बज गये। सभापति ने कहा—आज की सभा में किसी सभासद् को कुछ कहना या पूछना है?

सिद्धिनाथ नामक एक सभासद् ने कहा—हाँ है।

"क्या?"

"एक भारी सन्देह हुआ है। हमारी इस सभा का मत है कि भूत नहीं होता।"

सभा के अनेक लोग एक साथ बोल उठे—"भूत नहीं होता—भूत नहीं होता—यह सही है। इस उन्नीसवीं शताब्दी में—वैज्ञानिक युग में—कुसंस्कारापन्न हिन्दू और वायुग्रस्त थियोसोफ़िस्ट को छोड़ और कौन भूत को मान सकता है?

सिद्धिनाथ कुछ लजाकर बोले—मेरी भी यही धारणा है। किन्तु कल एक सज्जन के मुँह से जो घटना सुनी है उससे बड़ा आश्चर्य हुआ है। उन्होंने अपनी आँखों से एक

बार नहीं दो दो बार भूत को देखा है। वे कुछ ऐसे वैसे साधारण मनुष्य नहीं हैं। पूरे बी० ए० पास हैं। सरकारी शिक्षा-विभाग में बहुत दिनों से नौकरी करके अब पेन्शन पा रहे हैं। झूठी बात कह कर मुझे ठगने का उनका कोई उद्देश्य भी नहीं समझ पड़ता। इसलिए उन्होंने जो अपनी आँख से देखा है, उसका विश्वास कैसे न करूँ ?

यह सुन कर सभापति महाशय बड़े विज्ञभाव से सिर हिला कर हँसने लगे। उनको हँसते देख सभा के सभी लोग खूब ज़ोर से हँस उठे। केवल पण्डित महाशय वक्ता की ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखने लगे। हँसी रुकने पर सभापति बोले—देखना भी क्या कोई प्रमाण है ? मनुष्य की जितनी इन्द्रियाँ हैं उनमें से आँख ही मनुष्य को सबसे ज़्यादा ठगती है। सिद्धिनाथ जी ! क्या आप यह नहीं जानते ?

बेचारे सिद्धिनाथ एकदम सिकुड़ गये थे। उन्होंने अत्यन्त लज्जित होकर अपराधी की भाँति सिर नीचा करके कहा—यह ठीक है, इसी लिए तो सभा के समक्ष मैंने इस बात की चर्चा चलाई जिससे इसकी सन्तोषप्रद मीमांसा हो जाय।

सेक्रेटरी ने झट हाथ में क़लम ले सिद्धिनाथ जी का सन्देह और प्रश्न अपने पक्के रजिस्टर में लिख डाला। फिर सिद्धिनाथ की ओर देखकर कहा—आप सब बात खोल कर कहिए, सभा अवश्य ही उसकी निश्चित मीमांसा कर देगी।

सिद्धिनाथ ने कहा—मैंने उस सज्जन के मुँह से जैसा सुना

है वैसा ही लिख रक्खा है। उन बाबू साहब को वह लेख दिखला भी दिया है। उन्होंने पढ़ कर उसे ठीक बतलाया है और लेख के अन्त में उन्होंने इस मर्म के दस्तख़त भी कर दिये हैं कि लिखी हुई घटना सच्ची है। यदि सभा की आज्ञा हो तो वह लेख पढ़ कर सुनाऊँ।

साढ़े नव का समय था। बाहर सर्वत्र अँधेरा छाया था। हवा कुछ वेग से बह रही थी। घर में चिराग़ की लौ हवा के झोंके से काँप रही थी। बादलों से आकाश घिरा हुआ था। पानी बरसने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। बीच बीच में बादल गरज उठता था। सभापति महाशय का इशारा पाकर सिद्धिनाथ जी धीरे स्वर से, अग्रिम परिच्छेद में लिखा हुआ, भौतिक काण्ड पढ़ने लगे।

चौदहवाँ परिच्छेद

भौतिक घटना

मेरा नाम भवानीप्रसाद है। गोरखपुर ज़िले के खैरा गाँव में मेरा घर है। मैं सन् १८७२ ई० में बी० ए० पास करके नौकरी खोजने निकला। महीनों तक कई जगह घूमा फिरा, कितने ही लोगों से प्रार्थना की परन्तु कोई फल नहीं हुआ। आख़िर गोरखपुर ज़िला-स्कूल में द्वितीय शिक्षक की जगह ख़ाली होने का समाचार पाकर मैं स्वयं वहाँ गया। बहुत लोगों की ख़ुशामद की, तब कहीं उस काम पर बहाल हुआ। मेरा मासिक वेतन पचास रुपया नियत हुआ। मेरे घर से गोरखपुर बारह कोस दूर है। यहाँ से वहाँ तक एक कच्ची सड़क है। मैं घर गया और अपना ज़रूरी सामान ले दो दिन में लौट आया और अपना काम करने लगा। जैसी थोड़ी-सी तनख़्वाह थी, वैसा ही एक छोटा-सा घर किराये पर ढूँढ़ा किन्तु नहीं मिला। लाचार होकर हेडमास्टर के ही घर पर खाता पीता और सोता था। दिन में स्कूल का काम करता, और फ़ुरसत पा कर घर की तलाश में इधर-उधर घूमता था। आख़िर पता लगा कि शहर के बाहर एक बहुत बड़ा पक्का मकान ख़ाली पड़ा रहता है। मकान बहुत दिनों से ख़ाली पड़ा है, मरम्मत न होने के कारण यद्यपि कहीं कहीं कुछ टूट फूट गया है तथापि उस

में कई कमरे रहने लायक़ हैं। सवा रुपया महीना किराया देने ही से मकान रहने को मिल सकता है। किन्तु अफ़वाह है कि इस मकान में भूत रहता है। मैं उन दिनों कालेज का एक नया छोकरा था—नवीन मत का पोषक था—भूत के डर से यदि मैं पीछे पैर रखता तो मेरी विद्या-मर्यादा में भारी कलङ्क लग जाता। इसलिए मकान लेने का ही निश्चय किया। किन्तु इतनी दूर अकेला रहना निरापद नहीं है। चोर डकैतों का भी तो डर है। इसलिए एक साथी की खोज करने लगा और साथी मिल भी गया। वह मेरे ही स्कूल का चौथा शिक्षक था। नाम था रामविहारीलाल। यद्यपि वह बी० ए० पास न था तथापि उसने कालेज में शिक्षा पाई थी और वह अपने को नई समझवालों के ही दल में गिनता था। उसको पुराने घर में तकलीफ़ भी होती थी। इसी से वह मेरा साथ देकर भाड़े पर नया मकान लेने को तैयार हुआ। एक चाकर और एक रसोइया भी हमने रख लिया किन्तु वे लोग उस मकान में रात को रहने पर राज़ी नहीं हुए। कहने लगे, हम काम-धन्धा करके आप लोगों को खिला पिला कर नौ बजे रात के भीतर ही अपने घर चले जायँगे। दूसरा कोई उपाय न देखकर हमें यह शर्त क़बूल कर लेनी पड़ी। अगले रविवार को सवेरे ही हम अपनी सब चीज़ें उस मकान में ले गये और वहीं रहने लगे।

मकान बहुत पुराना था। चारों ओर की दीवार कहीं

कहीं टूट कर गिर पड़ी थी। उस रास्ते से गाय भैंस भीतर न घुस जायँ, इसलिए वह बाँस के घेरे से घिरा हुआ था। मकान के चारों ओर बाग़ीचा था। उसमें पपीते, आम, जामुन और कटहल आदि अनेक फलदार वृक्ष थे। फ़सल के वक्त इन्हें खटिक मोल ले लेता था। मकान दोमंज़िला था। नीचे के खण्ड में दर्वाज़े के सामने दो बड़े कमरे थे। हमने उन्हीं दोनों कमरों को अपने रहने के लिए पसन्द किया क्योंकि हमें बहुत जगह की ज़रूरत भी नहीं थी। मकान के पिछवाड़े एक तालाब था, जिसका पानी न तो पीने योग्य था और न स्नान करने ही योग्य। सिर्फ़ बर्तन मलना, कपड़े धोना आदि काम उसके जल से हो सकता था। मकान के समीप ही एक बढ़िया कुआँ भी था। हम लोग इसी कुएँ पर स्नान करते थे और रसोई के लिए तथा पीने के लिए इसी कुएँ से पानी मँगवाते थे। एक कमरे में रसोई-पानी होता था और दूसरे में दो चारपाइयाँ बिछाकर हम दोनों आदमी सोते थे। सारी रात घर में चिराग़ जला करता था।

इसी तरह कुछ दिन बीते। इतने में दशहरे की दो दिन की तातील हुई। उसके साथ एक रविवार भी आ पड़ा। तातील में मैं अपने घर गया।

दो दिन घर में रह कर तीसरे दिन मैं सबेरे उठ पैदल ही गोरखपुर को चला। मेरे गाँव से कोस भर पर हथखोला नाम का एक गाँव है। पहले यहाँ स्थानीय ज़मींदार के हाथी बँधे

रहते थे और चारा लाने के लिए खोले जाते थे, इसी से शायद इस गाँव का नाम हथखोला पड़ा हो। इस गाँव की सीमा पर, सड़क के किनारे, एक मन्दिर है। उस मन्दिर में श्रीराम-प्रपन्नदास नाम के एक गोसाईं रहते थे और पूजा-पाठ किया करते थे। वे एक सिद्ध पुरुष समझे जाते थे। आसपास के गाँववाले लोग उनकी बड़ी भक्ति करते थे। उस सड़क पर से होकर जाते जाते मैंने देखा कि गोसाईं जी खड़ाऊँ पहने मन्दिर के बाहर खड़े हैं। तब मैंने सड़क से उतर कर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर मुझसे कहा—भगत! तुम कहाँ जा रहे हो?

मैंने उत्तर दिया—मैं गोरखपुर के हाई स्कूल में मास्टरी करता हूँ। दशहरे की तातील में घर आया था। कल स्कूल खुलेगा, इसी से आज वहाँ जा रहा हूँ।

गोसाईं महाराज कुछ सोच कर बोले—अच्छा, जो आज न जाओ तो क्या नहीं बनेगा? आज घर लौट जाओ, कल जाना।

मैंने कहा—कल स्कूल खुलेगा। मेरी नई नौकरी है, इससे ग़ैरहाज़िर होना ठीक नहीं। मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिए।

गोसाईं ने कहा—तुम वहाँ कहाँ रहते हो?

"शहर के दक्षिण ओर एक पुराना मकान ख़ाली पड़ा था। उसे ही किराये पर ले लिया है। उसमें मेरे स्कूल के एक मास्टर

रामविहारी बाबू भी रहते हैं।" कह कर मैं उन्हें प्रणाम करके चल दिया।

क़रीब तीन बजे दिन को गोरखपुर जा पहुँचा। स्नान भोजन करते करते पाँच बज गये। भोजन करके बरामदे में बैठ कर मैं तम्बाकू पी रहा था। इसी समय देखा कि मेरे गाँव का एक मल्लाह कन्धे पर लाठी रक्खे मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उसे देख मैंने विस्मित होकर पूछा—कहो, तुम अकस्मात् किधर से आ गये?

"सरकार! माई जी ने यह चिट्ठी दी है और एक कवच (यन्त्र) आपके हाथ में पहरने को भेजा है" यह कह कर मल्लाह ने चिट्ठी और कवच दिया।

चिट्ठी पढ़ कर देखा, माँ लिखती हैं—जब तुम घर से बिदा हो गये तब रामप्रपन्न गोसाईं आये थे। उन्होंने एक कवच देकर मुझसे कहा—"माँ, तुम्हारा लड़का आज सबेरे गोरखपुर जा रहा था। रास्ते में उससे भेंट हुई। उसी के लिए मैं यह रामकवच लाया हूँ। जैसे हो सके, इसे आज ही तुम अपने लड़के के पास भेज दो और ख़ूब ताकीद के साथ लिख दो, जिसमें वह आज ही इस कवच को धारण कर ले। साथ ही यह भी लिख दो कि अगर किसी तरह का भय हो तो तारक ब्रह्म का नाम जपे। इस कवच और नाम के प्रभाव से वह सब आपदाओं से बच जायगा।" इसलिए मैंने धन्नू मल्लाह के हाथ यह पत्र और कवच भेज दिया है। पाते ही तुम

राम नाम स्मरण करके इसे भक्तिपूर्वक दाहिने हाथ में पहन लेना। इसमें किसी तरह की गड़बड़ी न हो। इसे तुम माता की आज्ञा समझना।

मैंने पत्र और कवच लेकर धन्नू से कहा—तुम आज यहीं रहो। तुम्हारे खाने-पीने का बन्दोबस्त किये देता हूँ।

उसने कहा—जी नहीं, माई जी ने बहुत तरह से कह दिया है कि "तू ख़ुद खड़ा होकर अपने सामने ही कवच पहनवा देना और आज ही रात में वहाँ से लौट कर मुझे ख़बर देना कि मेरा लड़का कवच पहन चुका।"

इससे उसको रहने के लिए मैंने फिर आग्रह नहीं किया। उसे दो आने देकर कहा—"यह लो, बाज़ार से कुछ चना-चबैना लेकर रास्ते में खाते हुए चले जाना।" कवच को मैंने बाँह में पहिर लिया। धन्नू मुझे प्रणाम करके चला गया।

उस दिन, रात को खा पीकर निश्चिन्त हो हम दोनों आदमी यथासमय सो रहे। सिरहाने के जँगले खुले हुए थे। आकाश बादलों से घिरा था। बीच बीच में बूँदा-बाँदी हो जाती थी। हवा के प्रबल झोंके आकर मेघों को उड़ा देते थे। मेघ हट जाने से चाँदनी निकल आती थी। हम दोनों कुछ देर तक गपशप करके चुप हुए। मैं तो रास्ते का थका था, आँख मूँदते ही नींद आगई।

निःशब्द रात में एकाएक नींद टूट जाने पर देखा कि हवा लगने से दिया बुझ गया है। बिखरे हुए बादलों के बीच की

चाँदनी खिड़की की राह से घर के भीतर आकर सामने की दीवार के कुछ अंश को आलोकित कर रही थी। नींद से जकड़ी हुई आँखों को धीरे धीरे खोल कर देखा तो मालूम हुआ मानों कङ्काल (ठठरी) मात्र देह को लिये एक बूढ़ा शख़्स मेरी चारपाई के ऊपर दोनों हाथ जमाये घुटने तोड़े बैठा है और मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। उसका चेहरा पुराने रोगी के ऐसा था। गालों का चमड़ा सिकुड़ कर लटक गया था। मुँह में दाँत न रहने के कारण दोनों होंठ नीचे को धँस गये थे। सिर के थोड़े से सफ़ेद बाल सीधे खड़े थे। उसकी आँखों से मानों क्रोध, घृणा और विद्वेष की ज्वाला निकल रही थी।

यह देखकर मेरा सारा शरीर काँप उठा। मारे डर के मैंने आँखें मूँद लीं। किन्तु मैं इस अवस्था में अधिक समय तक नहीं रह सका। फिर आँखें खोलीं तो देखा कि वह बीभत्स मूर्त्ति बिलकुल उसी तरह बैठी है। इससे मैंने फिर आँखें बन्द कर लीं। तब एकाएक माँ के पत्र की बात याद आई। मैंने मन में कहा, मुझे डर क्या है! मेरे हाथ में रामकवच है और धीरे से मैं तारक ब्रह्म का नाम भी लेने लगा। कुछ देर में जो फिर आँख खोली तो वह मूर्त्ति दिखाई नहीं दी। तब मैं साहस करके उठ बैठा और दबे हुए गले से अपने साथी को पुकारने लगा। रामविहारी बाबू उठकर बोले—क्या है साहब?

तब मैंने चिराग़ जला कर उनको सारी घटना कह सुनाई।

इससे वे भी बहुत डरे। सारी रात हम दोनों ने बात-चीत में ही बिता दी। सबेरे हम उस मकान को छोड़ कर दूसरी जगह उठ गये।

भोजन करके मैं साढ़े दस बजे स्कूल गया। टिफ़िन के समय चिट्ठीरसा ने एक चिट्ठी दी। देखा तो रामप्रपन्न गोसाईं का पत्र था। लिफ़ाफ़े पर कल की तारीख़ और मुहर थी। चिट्ठी में लिखा था—

श्रीहरिः

शुभाशीर्वादाः सन्तु।

वत्स, कल तुमसे भेंट होने के अनन्तर मैं तुम्हारे घर गया, और तुम्हारे लिए तुम्हारी मा को एक 'रामकवच' दे आया। मैंने उनसे अनुरोधपूर्वक यह भी कहा कि आज ही वह कवच किसी तरह तुम्हारे पास भेज दें जिसमें तुम रात होने के पहले ही इस कवच को पहन सको। शायद आज रात को तुम्हें किसी तरह का भय होगा, परन्तु इस 'रामकवच' के प्रभाव से तुम्हारा कुछ अनिष्ट न होगा। कवच को तुम ख़ूब सावधानी से पहने रहना। यदि फिर कभी भय का कारण संघटित हो तो राम-नाम जपना। सदा पवित्रता से रहना। यहाँ कुशल है, भगवती तुम्हारा कल्याण करे।

कुशलाभिलाषी

श्रीरामप्रपन्न

चिट्ठी पढ़कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैंने वह चिट्ठी रामविहारी बाबू को दिखलाई। वे भी बड़े चकित हुए।

दिवाली की छुट्टी के समय घर जाकर मैं सबसे पहले

गोसाईं जी को प्रणाम करने गया। उन्होंने संकट से मेरा उद्धार किया है, इसके लिए उनके निकट बहुतेरी कृतज्ञता प्रकट करके पूछा—अच्छा, कृपा करके यह बताइए कि मुझे उस रात को भय होगा—यह बात आपने कैसे जान ली ?

गोसाईं ने मुस्कुरा कर कहा—तुमने जब उस दिन आकर मुझे प्रणाम किया तभी मैंने देखा कि एक प्रेतात्मा तुम्हारे पीछे पीछे घूम रही है। किसी कारण से वह तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज़ है और तुम्हारा प्राण-नाश करने ही की इच्छा से उसने तुम्हारा साथ पकड़ा है। केवल उपयुक्त अवसर नहीं मिला है, इसी से वह अब तक कृतकार्य नहीं हो सकी है। तुम्हारे चले जाने पर मैंने विचार कर देखा तो मालूम हुआ कि वह अवसर आज ही रात को आवेगा। इसी से झटपट एक 'राम-कवच' लिखकर मैं तुम्हारी माँ को दे आया था। जो हो, तुम कभी इस कवच का त्याग नहीं करना।

मैंने कहा—गोसाईं जी ! मेरे साथ जो आदमी उस घर में सोता था उसे कोई भय क्यों नहीं हुआ ? हम दोनों ही एक साथ उस मकान में थे। फिर मेरे ही ऊपर उस भूत की इतनी नाराज़ी क्यों ?

गोसाईं ने पूछा—उसका नाम क्या है ?

"उसका नाम रामविहारी है।"

"वह ब्राह्मण है, और नियम धर्म से रहता है। इसी कारण से भूत उसका सहसा कुछ नहीं कर सकता। तुम

कायस्थ हो, तुम्हारा प्राण-नाश करना उसके लिए कुछ कठिन काम न था।

यह सुनकर मैं कुछ देर तक चुपचाप सोचने लगा। फिर कहा—क्या वह भूत अब भी मेरा अनिष्ट करना चाहता है?

"हाँ, चाहता तो है। वह एक बार तुम्हें फिर दिखाई देगा। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि वह कब दिखाई देगा। परन्तु इस रामकवच के प्रभाव से तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा।"

इसके बाद अठारह वर्ष बीत गये। उस भूत की बात को मैं प्रायः भूल-सा गया। पर 'रामकवच' को बराबर बड़ी सावधानी से पहने रहा। मैं द्वितीय शिक्षक से क्रमशः प्रथम शिक्षक के पद पर आरूढ़ हुआ। फिर और भी कई वर्ष तक नामवरी के साथ काम करके शिक्षा-विभाग में ही डिपुटी इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हुआ। मेरा मासिक वेतन डेढ़ सौ रुपया हुआ। देहात में जगह जगह घूम कर मुझे स्कूलों का निरीक्षण करना पड़ता था। एक दिन मैं देहात की एक पाठशाला देखने जा रहा था। सवारी बैलगाड़ी की थी। सन्ध्या होने पर ब्यालू करके गाड़ी पर सवार हो उस गाँव की ओर रवाना हुआ।

शरद्-ऋतु की सुहावनी रात थी। निर्मल आकाश में चाँदनी की अपूर्व शोभा थी। डिस्ट्रिक् बोर्ड की पक्की सड़क पर गाड़ी मन्द गति से जा रही थी। मैंने पहले सोने की चेष्टा की,

दो घण्टे तक बराबर करवट बदलता रहा। जब किसी तरह नींद नहीं आई तब आँखें पोंछ कर उठ बैठा। देखा, गाड़ीवान अपने बैठने की उसी थोड़ी-सी जगह में किसी तरह हाथ पैर सिकोड़ कर सो गया है। चाँदनी रात थी। रास्ता बहुत बढ़िया था। दोनों बैल धीरे धीरे अपने मन से चले जा रहे थे। रास्ते के दोनों तरफ़ पेड़ लगे थे। कोई दूर दूर पर और कोई नज़दीक ही नज़दीक थे। सन सन करती हुई हवा बह रही थी। बेचारा गाड़ीवान आराम से सोया है, यह देखकर उसे जगाने की मुझे इच्छा नहीं हुई। परन्तु बैलों का अरक्षित अवस्था में अपने मन से राह चलना भी ठीक नहीं जँचा। कहीं वे लीक छोड़ कर सड़क के नीचे उतर पड़ें तो गाड़ी उलट जाने का ख़ौफ़ है। यह सोच कर मैं फिर नहीं सोया, बैठा ही रहा।

इस तरह शायद एक घण्टा बीता होगा। मैं भी कुछ कुछ ऊँघने लगा। आँखें झप जाने के कारण मैं बैठे ही बैठे झुकने और फिर चौंक कर जागने लगा। इतने में एकाएक बैल रुक गये। गाड़ी ज़रा धक्का खाकर खड़ी हो गई। मैं भी जाग पड़ा।

आँखें खोल कर देखा यह क्या! वही भयङ्कर मूर्त्ति सामने खड़ी है। दोनों बैलों के आगे रास्ता रोक कर गाड़ी के जूए के ऊपर दोनों दुबले हाथ रक्खे वही बुड्ढा, अस्थि-चर्मावशिष्ट देह लिये, खड़ा है और क्रोधाग्नि से भरे हुए नेत्रों से मेरी ओर ताक रहा है। उसे देखकर मारे डर के मेरा शरीर सर्द हो

गया। मैं काँपने लगा। छाती के पास हाथ रख कर तारक ब्रह्म का नाम जपने लगा। कुछ देर में जप करते करते देखा तो वह मूर्ति, छाया की भाँति, विलीन हो रही है। जब वह एकबारगी अदृश्य हो गई तब दोनों बैल गाड़ी को पीछे की ओर घुमाकर बड़े वेग से दौड़ने लगे। जिस रास्ते से हम आये थे उसी रास्ते से लौट चले।

गाड़ी की खड़खड़ाहट से गाड़ीवान की नींद टूट गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। हमसे बोला—"बाबू यह क्या? बैल इस तरह क्यों दौड़े जा रहे हैं?" मैंने उससे सच्ची बात न कह कर सिर्फ़ इतना ही कहा—"शायद रास्ते में किसी तरह डर गये हों, इसी से डर कर घर की ओर दौड़े जा रहे हैं।" तब गाड़ीवान ने गाड़ी को रोकने और उसको घुमाकर आगे ले चलने के लिए बड़ी चेष्टा की। बैलों की पूँछ पकड़ कर ख़ूब जोर से अपनी ओर खींची तो भी वे खड़े नहीं हुए। दौड़ते ही चले गये। आख़िर जब एक गाँव में बाज़ार के नज़दीक पहुँचे और वहाँ बहुतेरे लोगों और बैलगाड़ियों को देख पाया तब खड़े हुए। बैलों को बेतरह थके देखकर मैंने गाड़ीवान से कहा—अब आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं, आज रात को यहीं ठहर जाओ। बैलों को खोल दो, उन्हें दाना-घास दो। यहाँ से कल सबेरे चलेंगे।

इसके बाद सात वर्ष हो गये परन्तु फिर कभी किसी तरह का भय नहीं हुआ। उस 'रामकवच' को मैं अब भी धारण किये

हुए हूँ और जब तक जीऊँगा, धारण किये रहूँगा। मेरी माँ और गोसाईं जी के लिखे हुए वे दोनों पत्र अब तक मेरे पास मौजूद हैं। अगर कोई देखना चाहे तो मैं दिखा सकता हूँ।

बाबू भवानीप्रसाद से जो कुछ सुना, उसे मैंने अपने हाथ से ऊपर ज्यों का त्यों लिखा है।

सिद्धिनाथ।

यह घटना मेरे कहने के मुताबिक़ श्रीयुत सिद्धिनाथ जी ने अपने हाथ से लिखी है। यह घटना मेरी आँखों की देखी हुई है तथा अक्षरशः सत्य है।

लहरपुर—गोरखपुर। } श्री भवानीप्रसाद—
गवर्नमेन्ट पेन्शनर।

लेख सुनकर सभा में स्थित सभी लोग कुछ देर तक मन्त्र-मुग्ध की भाँति चुप बैठे रहे। फिर सेक्रेटरी ने कहा—सिद्धिनाथ जी, उन दोनों पत्रों को आपने अपनी आँख से देखा भी है?

"जी हाँ।"

"डाक से जो चिट्ठी आई थी उसका लिफ़ाफ़ा है?"

"जी हाँ, है।"

"मुहर तारीख़ ठीक है?"

"ठीक है।"

"तब तो"—कह कर सेक्रेटरी महाशय चुप हो रहे। सभा के सभी लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

अब सभापति महाशय खाँस कर बोले—इसके लिए आप लोग इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं ? भवानीप्रसाद जी ने जिस घटना का वर्णन किया है उसे अक्षरशः सच मान लेने पर भी भूत का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।

सभा में से एक व्यक्ति बोल उठा—उसे भूत नहीं तो और क्या कहेंगे।

सभापति ने गम्भीर भाव से कहा—"इलेक्ट्रिसिटी।"

इस पर सब लोग चुप हो रहे। सभापति फिर धीरे धीरे अपने पूर्वकथित वाक्य को युक्तियुक्त सिद्ध करने की इच्छा से यों कहने लगे—

"भूत नहीं, इलेक्ट्रिसिटी। मनुष्य की आत्मा थोड़ी-सी बिजली के सिवा और कुछ नहीं है। जब गङ्गा का जल बढ़ता है तब किनारे को डुबोकर और भी बहुत दूर तक फैल जाता है। फिर जब गङ्गा का जल घट जाता है तब किनारे के बाहर, इधर उधर, जल विच्छिन्न अवस्था में पड़ा रह जाता है। वह गङ्गा के प्रवाह के अन्तर्गत न होने पर भी गङ्गा का ही भूतपूर्व अंश कहा जायगा। यही हाल मनुष्य की आत्मा के ह्रास और वृद्धि का है। किसी कारण से आत्मा-रूप विद्युत् की वृद्धि हो जाय तो उसका कुछ अंश मनुष्य के शरीर से छलककर बाहर भी आ पड़ता है और जब घटता है तब आत्मा अर्थात् विद्युत् का कुछ अंश बिखरी हुई अवस्था में बाहर ही रह जाता है। वह बाहर का अंश बराबर मनुष्य के पीछे पीछे घूमता फिरता है। अगर मनुष्य

कुसंस्कारापन्न हुआ तो उसे देखकर भूत समझता है और डर भी जाता है।"

सिद्धिनाथ ने कहा—उसे भूत कहिए चाहे इलेक्ट्रिसिटी कहिए, पर वह तारक ब्रह्म का नाम लेने से गायब क्यों हुआ ?

सभापति ने हँस कर उत्तर दिया—यह आप नहीं समझ सके ? गङ्गा का जल जब फिर बढ़ता है तब क्या होता है ? वह पूर्व का विच्छिन्न अंश फिर प्रवाह के साथ मिल जाता है—उसका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त हो जाता है। इसी तरह तारक ब्रह्म का नाम जपने से उस बाबू की आत्मा अर्थात् इलेक्ट्रीसिटी बड़े वेग से बढ़ चली और बाहर के जिस विच्छिन्न अंश को उसने भूत समझ लिया था वह भीतर के प्रवाहित अंश के साथ मिलकर एक हो गया। इससे यह नहीं समझना कि वह बिला गया।

यह नया समाधान सुनकर सभा में स्थित सभी लोगों के चेहरे पर कुछ आश्चर्य और प्रशंसा करने का भाव झलक उठा। कोई कोई मन्द स्वर से कहने लगे—सभापति महाशय ने बड़ी अच्छी युक्ति निकाली है। हम लोगों का सन्देह दूर हो गया।

सिद्धिनाथ ने कहा—अच्छा तो उन दोनों बैलों ने उस तरह क्यों किया ? अगर सचमुच ही बैलों ने कुछ देखा नहीं तो भयभीत होकर वे दौड़ने क्यों लगे ?

सभापति ने कहा—बैल का शरीर एक विशेष विद्युन्मान यन्त्र है अर्थात् गैलवैनोमीटर। थोड़ी-सी एलेक्ट्रीसिटी

पास आने पर भी बैल उसको तुरन्त जान सकता है। इसी से हिन्दू-शास्त्र में बैल को पवित्र कहा है, यहाँ तक कि वृषभ को धर्म का रूप माना है। यही कारण है कि इतने जानवर रहने पर भी महादेव ने बैल को ही अपना वाहन बनाया।

पण्डित जी ने कहा—आपका यह कहना बहुत ही ठीक है। महादेव जी का वाहन बैल है यह शास्त्र में भी लिखा है। उसका प्रमाण देता हूँ। यथा—

इसी समय घड़ी में टन् टन् करके ग्यारह बज गये। शब्द-वारिधि जी के प्रमाण देने में बाधा देकर सभापति ने कहा—रात बहुत बीती। अब सभा विसर्जन हो।

सब सदस्य उठ उठ कर बाहर आने लगे। सेक्रेटरी ने कहा—मोती बाबू को चिट्ठी लिखने की बात याद रहेगी न?

सभापति—ज़रूर याद रहेगी। कल सबेरे ही उठ कर चिट्ठी लिख राककुमार बाबू के पास भेज दूँगा।

सभासद् बाहर आये। चारों ओर गहरा अन्धकार छाया था। आकाश बादलों से ढका हुआ था। पानी की बूँदें टपक रही थीं। उस निर्जन मैदान के बीच से, उस निःशब्द रात में, जाने में कितनों ही की छाती धड़कने लगी। अवश्य ही यह धड़कन भूत के भय से नहीं थी, क्योंकि भूत तो होता ही नहीं। कुछ डर था तो केवल यही कि पेड़ों की ओट में कहीं विच्छिन्न इलेक्ट्रीसिटी न छिपी हो।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ज़मींदारी कचहरी के समीप ही एक साधारण-सी कोठरी में मोतीलाल की बैठक थी। दीवारों पर हिन्दू-देवी-देवताओं की कई अच्छी अच्छी तसवीरें टँगी थीं। उनके सिवा स्वामी विशुद्धानन्द, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और दयानन्द सरस्वती आदि महात्माओं के चित्र भी थे। कोठरी में एक ओर एक काँच की अलमारी थी जिसमें अँगरेज़ी, संस्कृत और हिन्दी के अनेक धर्म-ग्रन्थ थे। कुछ फ़ारसी की पुस्तकें भी थीं। खिड़की के पास एक टेबल रक्खी थी। सामने कुरसी पर एक मारवाड़ी पण्डित बैठे थे। उसके पास ही एक चौकी पर शतरंजी बिछी थी, जिस पर मोतीलाल और प्रयाग से आये हुए उनके एक मित्र बैठे थे।

भोर का समय है। खिड़की की राह से मन्द मन्द बयार आ रही है। आगत मित्र मोतीलाल के साथ शास्त्र-चर्चा कर रहे हैं—बीच बीच में पण्डित जी भी टीका-टिप्पणी करते जाते हैं। इनका घर मारवाड़ में है, बहुत दिनों से प्रयाग में रहते हैं। ये विशुद्ध हिन्दी-भाषा अच्छी तरह समझते हैं। किन्तु बोलने में गड़बड़ाते हैं। ये ज्योतिषी हैं। दारागंज का एक मारवाड़ी इनको कुछ मासिक वृत्ति देकर अपने यहाँ ठहराये हुए है। ये ख़रीद-फ़रोख़्त का शुभ मुहूर्त बता दिया करते हैं। कभी

कभी पश्चिम की अनेक रियासतों में भी घूम फिर आते हैं। कितने ही ज़मींदारों के यहाँ से ये कुछ सालाना भी पाते हैं। जहाँ सालाना नियत नहीं है वहाँ भी जाते हैं। अकसर बड़े आदमियों से कहा करते हैं—"बाबू साहब, आपके ग्रह अभी बहुत ख़राब जा रहे हैं किन्तु अमुक तारीख़ के बाद एक अत्यन्त शुभग्रह का उदय होगा। उस दिन सबेरे उठकर स्नान करने के पूर्व एक कच्चा फल—कच्चा नारियल हो तो और अच्छा—वरुण देवता का नाम लेकर नदी में बहा दीजिएगा और फिर स्नान करके दोनों कानों पर लाल रङ्ग के फूल धारण कीजिएगा।" पण्डित जी सामुद्रिक विद्या में भी निपुण हैं। लोगों का हाथ देखकर कहते हैं—बाल्यावस्था में आपको एक बार सख़्त बीमारी हुई थी। प्राण बचने की कोई आशा न थी। एक बार ऊँची जगह से नीचे गिरने और एक दफ़े पानी में डूबते डूबते बच जाने का प्रसंग आया होगा। जवानी में तीर्थ-भ्रमण और बुढ़ापे में वैराग्य लिखा है।" ये बातें अधिकांश मिल भी जाती हैं। नवरात्र के अनन्तर दो तीन महीने बाहर घूम फिर कर कुछ द्रव्य संग्रह करके पण्डित जी फिर प्रयाग लौट आते हैं। इनके पैरों में नागौरी जूता है। पुराना कुछ मैला-सा टसर का अँगरखा पहने हैं। कन्धे पर बनारसी दुपट्टा और सिर पर मारवाड़ी पगड़ी है। उम्र चालीस वर्ष के क़रीब होगी। मूँछें टेढ़ी और कुछ लम्बी हैं। दाढ़ी घुटी हुई है, अँगरखे के पाकेट में पीतल की दो डिबियाँ हैं। बड़ी डिबिया में तम्बाकू

और छोटी में चूना रहता है। बीच बीच में पण्डित जी तम्बाकू के पत्ते के साथ चूना मिला कर बाईं हथेली पर रख दहने हाथ के अँगूठे से ख़ूब ज़ोर से मलते हैं और उसे चुटकी से ले नीचे के होंठ को खींच कर उसमें डालते हैं। तेज़ तम्बाकू की तासीर से बीच बीच में पण्डित जी जम्हाई लेते हैं और जम्हाई के साथ साथ अँगड़ाई लेकर चुटकी बजाते हुए 'सीताराम सीताराम' कहते हैं।

मोतीलाल के आगत मित्र का नाम नारायणप्रसाद है। यह मोतीलाल का सहपाठी है। एम० ए० पास करके अब डिपुटीगरी पाने का प्रयत्न कर रहा है। नवम्बर में परीक्षा होगी—उसके लिए तैयार हो रहा है। प्रयत्न सफल होने का कुछ भरोसा भी मिला है। बड़े दिन के समय लखनऊ जाकर बहुत रुपया ख़र्च करके नारायण बाबू के पिता बड़े बड़े हाकिमों को डाली दे आये हैं। नारायण बाबू के एक कारी बहन है। वह अब ब्याहने योग्य हो गई है। उसके साथ मोतीलाल के ब्याह की बात चलाने से सफलता की कोई आशा है या नहीं—गुप्त रीति से यही जानने के लिए नारायण बाबू आये हैं।

इतने में घड़ी में सात बज गये। एक नौकर एक प्याला गरम चाय लाकर सामने आ खड़ा हुआ। नारायण बाबू चौकी से उठ टेबल के पास एक बेञ्च पर जा बैठे और चाय पीने लगे। चौकी पर बैठकर चाय नहीं पी और प्याले को टेबल के ऊपर भी नहीं रक्खा,—मोतीलाल शायद इसे अनाचार

समझे, यही नारायण बाबू के मन में आशङ्का थी। चाय पीकर और नौकर के लाये हुए पानी से हाथ-मुँह धोकर वे फिर चौकी पर आ बैठे। अपनी नवाङ्कुरित दाढ़ी पर उँगली फेरते फेरते बोले—

इसके बाद—क्या बात हो रही थी ? हाँ तुमने जो कहा—"अपनी आध्यात्मिक उन्नति संसार-बन्धन से छुटे बिना नहीं हो सकती इसलिए मुझे संन्यासी होना पड़ेगा—" यह तुम्हारी बड़ी भूल है। मनुष्य इस गृहस्थाश्रम में रह कर ही धर्म कर्म कर सकता है, भजन साधन कर सकता है,—अपनी मुक्ति का उपाय ढूँढ़ सकता है। इसके लिए मनुष्य को जङ्गल में जाने की ज़रूरत नहीं। कहिए पण्डित जी, यह बात ठीक है न ?

पण्डित जी—हाँ बाबू, आप ठीक कहते हैं। बहुत ठीक। देखिए, जनक जी महाराज क्यतना भारी महात्मा थे, राजर्षि थे—गृही भी थे। गृहस्थाश्रम में रह कर ही वे ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिये थे।

मोतीलाल—माना कि घर पर रह कर भी धर्माचरण किया जा सकता है, किन्तु धार्मिक गृही जो गति पाता है, उसकी अपेक्षा क्या संसार-त्यागी तपस्वी उत्तम गति नहीं पाते ? शास्त्र में देखता हूँ कि तपस्या में निरत ऋषि मुनि, संसारी बखेड़े से दूर हट कर जङ्गल या पहाड़ की गुफा में रहते थे तथा लोगों की आँख बचाकर बहुत दिनों तक तपस्या करते थे।

नारायण बाबू—यह कुछ आवश्यक नहीं कि तपस्या करने के लिए जङ्गल में ही जाना चाहिए। मैं कहता हूँ, घर बैठ कर भी तपस्या हो सकती है और उसी तपस्या में अधिक फल है। संसार का मोह, माया, मद, मात्सर्य आदि छोड़ कर जो तपस्या की जाती है वही सच्ची तपस्या है। वन में जाकर तपस्या करना मानों धोखा देकर मुक्ति-लाभ करना है।

मोतीलाल—देखिए, पहले यह समझना होगा कि तपस्या क्या चीज़ है। शास्त्र ने तपस्या तीन प्रकार की बतलाई है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। यथा—

सुरविप्रगुरुप्राज्ञपूजापावित्र्यमार्जवम्।
अहिंसाब्रह्मचर्यं च शारीरं विद्धि तत्तपः॥
सत्यं प्रियं हितं वाक्यं यतो नोद्विजते जनः।
वेदाद्यभ्यसनं चापि तपो वाङ्मयमुच्यते॥
सौम्यत्वं चेतसःशुद्धिर्मौनमिन्द्रिय-निग्रहः।
स्वभावस्य पराशुद्धिरुच्यते मानसं तपः॥

अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का आदर; पवित्रता, सरलता, अहिंसा और ब्रह्मचर्य, इसे शारीरिक तप जानो। ऐसा सत्य, प्रिय और हितकारक वचन बोलना कि जिससे किसी के मन में दुःख न हो, तथा वेदादि शास्त्र का अध्ययन करना वाचिक तप कहलाता है। सौम्यत्व (शान्तता), चित्तशुद्धि, मौन (मितभाषिता), जितेन्द्रियता और स्वभाव को अतिशय पवित्र रखना मानसिक तप है। अब देखना है

कि गृहस्थ व्यक्ति शारीरिक तप पूरे तौर से कर सकता है या नहीं, देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों की सेवा, पूजा तो किसी तरह हो भी सकती है, किन्तु संसारी झमेले में रह कर सदा पवित्रता का पालन, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य की रक्षा क्या कभी हो सकती है ? जो गृहस्थाश्रम में रहेगा उसे व्याह करना ही पड़ेगा, उसके सन्तान आदि होंगे ही, उनके भरण-पोषण के लिए उसे धन-प्राप्ति भी करनी ही पड़ेगी;—इसलिए ब्रह्मचर्य की रक्षा, अहिंसा और स्वभाव की विशुद्धता उसके द्वारा कैसे हो सकती है ? संसार के चारों ओर घोर अपवित्रता फैली हुई है। मनुष्य कितना ही सावधान क्यों न हो, इतनी अपवित्रताओं के बीच में रह कर अपने को किसी तरह बचा नहीं सकता।

पण्डित जी—बहुत ठीक है बाबू साहब, गोसाईं तुलसीदास जी ने एक दोहा कहा है—"काजर की कोठरी में कैसेा हू सयानो जाय, काजर की एक रेख लागि है पै लागि है।"

नारायण बाबू ने मोती से कहा—देखो तुम्हारी यह सब तपस्या और मुक्ति आदि मन का भ्रम-मात्र है। एक विद्वान् ने कहा है—

किसने कब देखा कहो, अलख मुक्ति का द्वार ?
जबै आप प्रभु बद्ध है, रचि अगणित संसार ॥

देखो भाई, मैं तुम्हारी भाँति शास्त्र-पुराण की बातें नहीं जानता। जो मेरी समझ में आता है वही कहता हूँ। जब

मनुष्य होकर संसार में जन्म लिया है तब मनुष्य का यह दुःख-शोक, पाप-ताप यदि किसी तरह कुछ मिटा सकूँ, मनुष्य के स्वास्थ्य, ज्ञान और सुख के अंश को यदि कुछ बढ़ा सकूँ तभी अपने जीवन को सार्थक मानूँगा—तभी अपने कर्त्तव्य को सम्पन्न समझूँगा।

मोतीलाल—तुम हिन्दू सन्तान होकर मुक्ति को स्वीकार नहीं करते! तब तो मालूम होता है, तुम आत्मा का अस्तित्व भी नहीं मानते होगे?

"आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने पर मुक्ति की आवश्यकता स्वयं सिद्ध हो जाती है, किन्तु वन में जा पेड़ों के पत्ते खाकर अपने चारों ओर आग जलाने और उसके बीच में पैरों के बल लटक कर नीचे को सिर करके तपस्या करने ही से आत्मा की मुक्ति होगी इसे स्वीकार नहीं करता।"

"तुम क्रिस्तान पादरी की युक्ति का अवलम्बन करके यह कहते हो। कौन कहता है कि पेड़ के पत्ते खाना, पंचअँगीठी तापना या सिर नीचे करके पैर ऊपर लटका कर रहना ही मुक्ति का साधन है? एकान्त में रहकर एकाग्र मन से ईश्वर का ध्यान करने ही के लिए ऋषि मुनि वन को जाते थे। मुक्ति पदार्थ कुछ हाथी घोड़ा नहीं है। "शरीरेन्द्रियाभ्यामात्मनो मुक्तत्वं मुक्तिः।" वेदान्त के मत से नित्य-सुख-प्राप्ति ही मुक्ति है। नैयायिकों के मत से दुःख का अत्यन्त अभाव होना ही मुक्ति है। बातें दोनों एक ही हुईं। वेदान्त-रामायण में लिखा है—

समाधिस्थो हृदि सुखी क्रीडते यः प्रकाशते।
ब्रह्मभावं स सम्प्राप्य नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥

अर्थात् जो समाधिस्थ पुरुष मन में ही सुखी रहता है, मन में ही खेलता है, और मन में ही प्रकाशित रहता है वही पुरुष ब्रह्मभाव को पाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

नारायण बाबू ने फिर धीरतापूर्वक कहा—यह तो हुआ आत्म-सुख। अपनी आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति और अपनी नित्य सुख-प्राप्ति को मैं मनुष्य-जीवन का उच्चतम लक्ष्य नहीं मानता।

"तब तुम किसे उच्चतम लक्ष्य मानते हो?"

"देश-सेवा और जाति-सेवा को। जो दुखी हो उसके दुःख दूर करने की चेष्टा; जो रोगी हो उसकी रोगपीड़ा शान्त करने का प्रयत्न और जो अज्ञानी हो उसे ज्ञान प्रदान करना मेरी समझ में उच्च लक्ष्य है। मेरे मत से लोकसेवा ही मनुष्य का परम धर्म है।"

मोतीलाल ने कहा—लोकसेवा? इसमें सन्देह नहीं कि लोकसेवा सत्कर्म है किन्तु लोकसेवा ही मनुष्य का परम धर्म है इस बात को मैं नहीं सकारता। यह बात हिन्दू-समाज में नहीं है—यह तो तुम अँगरेज़ी पढ़कर कहते हो।

पण्डित जी बोले—हाँ, बाबू साहब, यह बात बहुत ठीक है। यह बात किसी पोथी में नहीं देखता कि लोकसेवा हिन्दू का परम धर्म है। यदि गौ-सेवा कहें तो यह अलबत्ता हिन्दू का धर्म है। मैंने एक दफ़े गोरक्षिणी सभा में इस सम्बन्ध में

एक वक्तृता भी दी थी, चन्दा वसूल करने के लिए कई जगह घूमा था—किन्तु ज़्यादा वसूल नहीं कर सका। आज-कल अँग-रेज़ी पढ़ लिख कर कोई हिन्दू धर्म को नहीं मानता। इन दिनों अँगरेज़ी पढ़े ऐसे कितने ही बड़े आदमी हैं जो घर पर आये हुए साधु-संन्यासी, पण्डित-ब्राह्मण को भोजन तक नहीं देते—किन्तु अस्पताल में हज़ार रुपया चन्दा देते हैं। बाप का श्राद्ध मुट्ठी बाँध कर करते हैं किन्तु कहीं दुर्भिक्ष हो तो वहाँ ख़ूब रुपया ख़र्च कर डालते हैं। अन्न-दान महादान है सही, किन्तु वह क्या डोम, चमार, कुर्म्मी, कहार को देने से होगा? साधु संन्यासी पण्डित ज्योतिषी को ही अन्न देने में पुण्य होता है।

पण्डित जी की बात सुनकर मोतीलाल और नारायण बाबू दोनों ही मुस्कुराने लगे।

इस तरह तर्क-वितर्क में नव बज गये। तब एक नौकर ने आकर कहा—छोटे बाबू, एक आदमी आया है। वह आप से भेंट करना चाहता है।

"कौन?"

"शङ्करपुर का एक किसान।"

"अच्छा, आने दो।"

कुछ देर में एक अधेड़ आदमी ने सामने हाज़िर हो हाथ जोड़ कर मोतीलाल को प्रणाम किया। वह कुर्त्ता पहने और सिर पर टोपी दिये था। कन्धे पर एक मैला-सा अँगोछा था।

मोतीलाल ने उस आगत व्यक्ति को न पहचान कर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

"मेरा नाम हरिदास है। मेरा घर शङ्करपुर में है।"

"अच्छा, क्या काम है ?"

"मैं हजूर की ही रियाया हूँ।"

हरिदास ने जेब से एक चिट्ठी निकाली और—"मैं एक काम से आजमगढ़ गया था,—वहाँ मेरे वकील के बेटे रामकुमार बाबू ने हजूर को देने के लिए एक चिट्ठी दी है," कह कर उसने चिट्ठी मोतीलाल के हाथ में दी।

मोतीलाल ने चिट्ठी लेकर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठने के लिए हरिदास को कहा। वह बैठ गया।

मोतीलाल मन ही मन चिट्ठी पढ़ने लगे। समग्र चिट्ठी पढ़ चुकने पर बोले—अच्छा, आज ही इस चिट्ठी का जवाब डाक से दे दूँगा।

हरिदास हाथ जोड़ कर बोला—हजूर, ऐसी आज्ञा न हो। उन्होंने मुझसे कहा है, वे लोग हजूर के दर्शन के अभिलाषी हैं। काली-पूजा के एक दिन पहले हजूर का वहाँ जाना आवश्यक है। जो हजूर न जायँगे तो वे लोग बड़े दुखी होंगे। उन्होंने मुझसे कह दिया है, निमन्त्रण का स्वीकार-पत्र लेकर आना। मुझको परसों फिर आजमगढ़ जाना होगा।

यह सुनकर मोतीलाल कुछ सोचने लगे। फिर बोले—अभी तो मेरे चिट्ठी लिखने का समय नहीं है। जा सकूँगा या

नहीं, यह भी विचारना होगा। तुम आज़मगढ़ जाने के पहले एक बार यहाँ आ जाना। जो उत्तर देना होगा, दे दूँगा।

हरिदास उठ खड़ा हुआ। हँसते हँसते बोला—हजूर कुछ उत्तर देने ही से काम न चलेगा। यदि आप जाना स्वीकार न करेंगे तो वे लोग मुझ पर बड़े ही असन्तुष्ट होंगे। मैं कल पिछले पहर यहाँ हाजिर होकर हजूर की चिट्ठी ले लूँगा।

मोतीलाल—अच्छा, कल साँझ को आना। देखा जायगा।

हरिदास प्रणाम करके चला गया। नारायण बाबू के साथ मोतीलाल का फिर तर्क आरम्भ हुआ।

नारायण बाबू ने कहा—देखो तुम जो यह मुक्ति मुक्ति करके पागल हो रहे हो, यह केवल मृग-तृष्णा है। आत्मा हो तो उसकी मुक्ति होगी। आत्मा है, इसी का क्या प्रमाण? यदि कहीं कोई प्रमाण मिला हो तो बताओ।

मोतीलाल—प्रमाण की बात क्या पूछते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इसका कुछ है नहीं। क्योंकि न मैं इसे आँख से देख सकता हूँ और न दूसरा ही कोई इसे देख सकता है।

"और किसी तरह का प्रमाण दे सकते हो?"

"प्रमाण अपने मन में है। आदिकाल से, सब देशों में, सब जातियों में, यह विश्वास है कि मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता रहती है। सभ्य, असभ्य सभी जाति के लोगों के मन में यह एक प्रबल धारणा है कि मृत्यु के साथ ही साथ सब काण्ड समाप्त नहीं हो जाता। मृत्यु के बाद यदि कुछ शेष

न रहता तो सब काल में, सब जातियों के मनों में, यह विश्वास क्यों उत्पन्न होता? मनुष्य की पिपासा के अनुरूप ही जल है। जैसी भूख है, वैसा ही भोजन है। सभी लोग इच्छा के अधीन हैं। इच्छा पूरी होने ही में परितृप्ति है। असाध्य वस्तु में किसी को इष्ट-साधन की उत्पत्ति नहीं होती। यदि परलोक न होता तो उसके सम्बन्ध में ऐसी प्रबल धारणा मनुष्य के मन में क्यों उत्पन्न होती?"

यह सुन कर नारायण बाबू मुस्कुराने लगे। वे बोले—असभ्य जाति के मन में परलोक की धारणा क्योंकर हुई है, यह हर्बर्ट स्पेन्सर ने अच्छी तरह सोच देखा है। वे कहते हैं कि, जिन कारणों से मनुष्य अधिक स्वप्न देखता है वे कारण असभ्यों की जीवनयात्रा की प्रणाली में पूर्णरूप से विद्यमान हैं। उन्हें भूख भी बहुत अधिक लगती है और वे भोजन भी खूब डटकर करते हैं, अर्थात् जितना ही उन्हें भूखे रहने का अभ्यास है उतना ही अधिक भोजन करने का भी है। मान लो वे शिकार करने के लिए जङ्गल में घुसे हैं, दो दिन तक भूखे रह गये, कहीं कुछ खाने को मिला ही नहीं। फिर जब खाने लगे तो दो दिन की खाद्य-सामग्री एक ही दिन में खा डाली। विन्ध्याचल में जाकर धन्ना देकर भूखे प्यासे रहने से 'माता' स्वप्न देती हैं यह बात नहीं है। तुम दो दिन कुछ न खाओ और एक घर में सो रहो तो देखना कैसे कैसे अद्भुत स्वप्न देख पड़ते हैं। फिर अति भोजन से भी वैसा ही होता है। एक असभ्य

दिनभर भूखा-प्यासा शिकार के पीछे घूमता रहा, रात में एक जगह सो गया। स्वप्न में देखा, मानो वह शिकार करने जङ्गल में गया है; एक बहुत बड़ा हिरन मिला, उसे एक ही बाण में मार डाला। बड़ी ख़ुशी से उसे घर लाकर काट कूट कर चूल्हे पर चढ़ा दिया। मांस पक जाने पर ज्यों ही परोस कर खाना चाहा कि अकस्मात् उसकी नींद टूट गई। अथवा दूसरे दिन गले तक पेट भर के सोया है: सपना देखा, एक भालू ने आकर उसे धर दबाया। वह चिल्ला उठा। नींद टूट गई। साथियों ने पूछा—'क्यों रे, तू चिल्ला क्यों उठा? तुझे क्या हुआ है?' असभ्य लोग नहीं जानते कि स्वप्न क्या चीज़ है। वे यह सोच ही नहीं सकते कि 'सपना देखा है।' वह बोला—'क्या कहूँ भाई, मैं शिकार ढूँढ़ते ढूँढ़ते एक घने जङ्गल में जा पड़ा। साथ में कोई था नहीं। एक झुरमुट से भालू ने दौड़कर मुझे पकड़ लिया। तब मैं कैसे न चिल्लाता?' साथियों ने कहा—'धत्तेरे की, पागल कहीं का! तू तो बराबर यहीं सोया था।'—प्रतिदिन इसी तरह की अनेक लोगों की अनेक घटनाओं से, असभ्यों के मन में क्रमशः विश्वास हुआ कि 'मुझे छोड़ और एक 'मैं' (other self) है।' इसी लिए उस दूसरे 'मैं' को क्रमशः आत्मा मानने की धारणा हुई।

मोतीलाल—अगर यही हो तो क्या हर्ज है?

नारायण बाबू ने कहा—वाह! तुम्हारी समझ तो बड़ी विलक्षण है। तुम कहना चाहते हो कि मनुष्य की आत्मा

शिकार करने के लिए घूमती फिरती है। और भालू उसे पकड़ भी सकता है। अगर वह तीर चला सकती है और भालू उसे पकड़ सकता है, तब तो वह आत्मा जड़-देह-विशिष्ट हुई। क्या तुम आत्मा को जड़ पदार्थ मानते हो?

"नहीं, इसे मैं कदापि नहीं मानता। किन्तु असभ्यों की भ्रान्ति धारणा से क्रमशः सभ्य जाति की उन्नत सत्य धारणा उत्पन्न होती है।"

नारायण बाबू ने कहा—मेरा कहना यह है। तुम कहते हो कि परलोक और आत्मा के अस्तित्व-सम्बन्ध में एक धारणा, एक वासना, मनुष्य-सृष्टि के आदिकाल में भी वर्तमान थी। मैं दिखलाता हूँ—हम लोग जो यह समझते हैं कि आत्मा है, सो हमारी यह धारणा ठीक नहीं। यह सम्पूर्ण जड़वाद है। अब भी ऐसी अनेक असभ्य जातियाँ हैं जो माँ-बाप के मरने पर क़ब्र के भीतर खाने-पीने की चीजें और पहिनने के कपड़े रख देती हैं। उनकी धारणा यह रहती है कि मेरी माँ या मेरा बाप यह खाना खायगा, ये कपड़े पहनेगा। बहुत दिन की बात नहीं है जब मडागास्कर की रानी मर गई तब क़ब्र के भीतर बहुतेरी रेशमी पोशाकें, गहने, काँच के बर्तन, टेबल, कुरसी और एक बक्स में तेंतीस हज़ार रुपये रानी की लाश के साथ गाड़ दिये गये थे।

मोतीलाल—यह भूल है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु देखो,

इस जीवन के परे और भी एक जीवन है—यह प्रबल वासना कहाँ से आई ?

"क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वासना रहने ही से उसकी पूर्त्ति होती है ? स्पेन्सर ने 'सोशिआलोजी' में लिखा है कि भिन्न भिन्न असभ्य जातियों को स्वर्ग की वासना कैसी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। पाटागोनिय गण की प्रबल वासना है कि स्वर्ग में जाकर वे दिन रात इतना मद्यपान करेंगे (To enjoy the happiness of being eternally drunk) कि अनन्तकाल तक उसका नशा न उतरेगा। क्या तुम कह सकते हो कि परलोक में उनके लिए अवश्य ही यह व्यवस्था है ? तुम्हारी प्रबल वासना भी इसी श्रेणी की है। तुम्हारी इस कामना का उत्तर जान स्टुअर्ट मिल ने अच्छा दिया है। वह कहता है—एक बाबू दफ़्तर से जब तीस रुपया महीना पाता है तब उसके मन में यह प्रबल वासना रहती है कि मैं किसी समय इस आफ़िस का बड़ा बाबू होकर तीन सौ रुपया महीना पाऊँगा। देखा जाता है कि प्रायः बाबुओं के जीवन में इस वासना की पूर्त्ति नहीं होती।

"इससे क्या सिद्ध हुआ ?"

"इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रबल बासना होने ही से उसकी पूर्ति निश्चय संभावित है—यह समझना भूल है।"

यह सुन कर मोतीलाल कुछ देर चुप रहे फिर बोले—तर्क के द्वारा इन बातों की मीमांसा नहीं होती। किसी काल में होगी

इसकी भी संभावना नहीं है। तर्क के द्वारा या अपनी बुद्धि के द्वारा मैं यह जान सका हूँ, सो भी नहीं। त्रिकालदर्शी पूज्यवर मुनि ऋषि जो कह गये हैं उन्हीं की कही हुई बातों पर मैं भक्ति-भाव से विश्वास करता हूँ।

इस बार नारायण बाबू निरुत्तर हुए। मोतीलाल के कथन में ऐसी एक सरलता और दृढ़ता भरी थी कि उसका किसी तरह प्रतिवाद करने में वे बड़े संकोच का अनुभव करने लगे। तर्क की गति को फेर कर उसे अन्य पथ पर लाने के अभिप्राय से नारायण बाबू ने पण्डित जी से कहा—महाराज, आप लोग ज्योतिष की गणना करके जो जो बातें बताते हैं उनमें से कुछ भी ठीक नहीं होतीं, यह क्यों ?

अब पण्डित जी के साथ नारायण बाबू का भयङ्कर तर्क-युद्ध होने लगा। मोतीलाल चुपचाप उन दोनों का वादानुवाद सुनने लगे।

सोलहवाँ परिच्छेद

जिस समय मोतीलाल की बैठक में पूर्व परिच्छेद-वर्णित शास्त्र-सम्बन्धी आलोचना हो रही थी उस समय दूसरी कोठरी में गोपीकान्त का दिमाग़ और ही प्रकार की चिन्ता से चकरा रहा था। वे एक छोटी-सी कोठरी में फ़र्श के ऊपर मसनद के सहारे बैठकर फ़र्शी हुक्के से तम्बाकू पी रहे थे। उनके सामने एक खुली चिट्ठी पड़ी थी।

दो तीन बार नली से धुवाँ खींच कर गोपी बाबू पत्र उठा कर फिर पढ़ने लगे। पढ़कर फिर उसे फेंक भौं सिकोड़ कर सोचने लगे।

पत्र में ऐसी कोई विशेष बात नहीं लिखी थी—केवल देवीपुर के ज़िलेदार मथुराप्रसाद ने दो महीने की छुट्टी के लिए प्रार्थना की है। मथुराप्रसाद बड़ा ही विश्वासपात्र अमला है। उसकी जगह किसको बहाल करके भेजेंगे, यही उनकी चिन्ता का विषय है। देवीपुर का अमला अत्यन्त चतुर और सर्वोपरि विश्वस्त होना ज़रूरी है। गोपी बाबू के ढूँढ़ने से भी ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता था। इधर मथुराप्रसाद की छुट्टी मंज़ूर न करें तो भी नहीं बनता था। ऐसी हालत में क्या किया जाय? बाबू बड़ी उलझन में पड़े हैं।

ऐसे अवसर में रौनक़लाल का ध्यान उनके मन में आया,

इधर कई दिनों से उन्होंने उसका जहाँ तक परिचय पाया है उससे वह चतुर और विश्वस्त जान पड़ता है। फिर भी वह नया है। उसके ऊपर निर्भर हो रहना ठीक नहीं। एक बात यह है कि वह अभी मेरे यहाँ नये काम पर बहाल हुआ है, अपनी भविष्य-उन्नति की आशा से विश्वास-रक्षा के लिए विशेष यत्नवान् हो सकता है। आदमी गम्भीर है, बहुत बातें नहीं करता। यह भी एक सद्गुण है। उसे एक बार बुला कर पूछने में क्या हानि है?

यह सोचकर गोपी बाबू ने रौनक़लाल को बुलाया। रौनक़ दफ़्तर में बैठा अपना काम कर रहा था। बाबू ने बुलाया है, सुनकर, कुछ डरता और धीरे धीरे पैर उठाता हुआ, बाबू के पास हाज़िर हुआ। बड़े विनीतभाव से प्रणाम करके चुपचाप खड़ा रहा।

हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बाबू ने पूछा—रौनक़, तुम ज़िलेदारी का काम जानते हो?

"जी हाँ जानता हूँ।"

"कभी किया है?"

"जी हुज़ूर, सदर आफ़िस में रहकर नायबी का काम किया है और दिहात में रहकर ज़िलेदारी भी की है। यह सब काम मेरा किया हुआ है।"

"पहले तुम कहाँ काम करते थे?"

"जी ग़ाज़ीपुर ज़िले में बाबू शिशुपालसिंह साहब के इलाक़े में। वे अब नहीं हैं। उनका लड़का उनकी गद्दी पर बैठा है।"

बाबू कुछ देर तक चुप रहे। दूसरी ओर देखकर सोचने लगे। अन्त में रौनक़लाल की ओर मुँह करके बोले—देखो ज़मींदारी के काम में समय समय पर अनेक प्रकार का छल-कपट करना पड़ता है। ठीक धर्म-पुत्र युधिष्ठिर की भाँति तराज़ू पर तौल तौल कर न्यायपूर्वक काम करने से ज़मींदारी चलाना एकबारगी असंभव है। यह तो तुम जानते हो?

रौनक़ इसका कुछ उत्तर न दे धरती की ओर दृष्टि करके मन्द मन्द हँसने लगा।

यह देखकर बाबू सन्तुष्ट हुए। यदि वह नमक-मिर्च लगा कर बोलता—'हाँ हुज़ूर—मैं इसमें पीछे पैर नहीं दे सकता' तो रौनक़ की कार्यपटुता के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह होता। उन्होंने कहा—तुम होशियार हो, इसमें सन्देह नहीं। अवश्य ही यह सब तुम्हारा जाना हुआ है। आज-कल अँगरेज़ का राज्य है, बड़ा ही सख़्त क़ानून है। ज़मींदारी काम में भी नुक़सान न पहुँचे और मालिक की भी इज्ज़त-आबरू क़ायम रहे, इन दोनों को सँभाल कर जो मुलाज़िम चलता है वही चतुर गिना जाता है। उसकी उन्नति होती है, उसकी पद-वृद्धि होती है।

रौनक़ धीरे धीरे महीन स्वर में कहने लगा—हुज़ूर, मैं कम पढ़ा लिखा हूँ तो भी इतना समझता हूँ कि जिसका नमक खाता हूँ, उसका उपकार प्राण देकर भी करना होगा। हुज़ूर

अभी मालिक की मान-मर्यादा बचाकर चलने की बात कहते हैं, सो हुज़ूर की इस बात पर तावेदार अर्ज़ करता है—मालिक की इज्ज़त बचाने के लिए यह दास छः वर्ष जेल काट आया है।

गोपी बाबू चकित होकर बोले—तुम जेल काट आये हो ?

रौनक़ ने गर्व के साथ कहा—जी हाँ।

"क्यों, किस अपराध में ?"

"हुज़ूर, एक बदमाश रियाया के साथ मार पीट हो गई थी। उसमें एक आदमी का ख़ून भी हो गया था। एकबारगी मामला संगीन हो पड़ा। मालिक का अपराध मैं अपने ऊपर ले छः वर्ष जेल काट आया। अब तक यह बात किसी से नहीं कही थी—आज हुज़ूर के ज़िक्र करने पर लाचार होकर कहनी पड़ी।"

गोपी बाबू का मन रौनक़लाल के प्रति ख़ूब घुल गया। मन में सोचा, "हाँ—यह बेशक होशियार है और मेरे मन के लायक़ है।" इतनी देर तक रौनक़ खड़ा था, उसे बैठने की आज्ञा मिली। रौनक़ फ़र्श से हट कर बैठा। बाबू ने पूछा—जेल से छूट कर आये कितने दिन हुए ?

"बहुत दिन नहीं हुए, पिछले भादों में आया हूँ।"

"मालूम होता है, जब तुम जेल में थे उसी समय तुम्हारे पुराने मालिक का देहान्त हो गया।"

"जी हाँ, जेल से निकल कर उनके श्रीचरण देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ"—कह कर रौनक़ ने अपने मुँह पर रोने का-सा भाव दिखाया।

गोपी बाबू ने कहा—समझता हूँ। अगर वे जीते रहते तो तुम्हें नौकरी के लिए दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता। तुम्हारे जैसे नौकर को क्या वे छोड़ सकते? उनके लड़के ने शायद तुम्हारे गुण को नहीं समझा।

"जी हाँ—उन्होंने मुझको फिर अपने यहाँ रखने के लिए बड़ा हठ किया था। बचपन से ही उनको मैंने गोद में खेला कर बड़ा किया था न,—नौकर होने पर भी मुझको वे रौनक़ चचा कहते थे। उन्होंने कहा—'रौनक़ चचा! तुम्हारे न रहने से मेरी ज़मींदारी का काम बिलकुल अबतर हो जायगा।' किन्तु वहाँ मेरा जी नहीं लगा। क्योंकि, पहले जिस मालिक के लिए प्राण देने में भी पीछे पैर नहीं रखता था वे नहीं रहे। इसके बाद, जेल में रहते रहते मैं सब खो चुका। मेरे घर के सब लोग एक एक कर मर गये। जेल से आने पर उन लोगों को भी नहीं देखा। बाप-दादों के समय का जो पक्का मकान था वह भी, हर साल मरम्मत न होने के कारण, गिर पड़ा था। इन सब कारणों से मेरा जी वहाँ से उचट गया। यह शोकमय दृश्य मुझसे देखा नहीं गया। इसी से निकल पड़ा। अब तो एक पेट की बात रही। और कोई रहा नहीं। जहाँ जाऊँगा वहीं मुट्ठी भर अन्न खाने को मिल जायगा। हुज़ूर का

नाम सुनकर आया था। आते ही मुझ पर हुज़ूर की दया भी हो गई—आश्रय मिल गया।"

गोपीकान्त बाबू मुस्कुराते हुए बोले—तुम्हारे ऐसा नौकर मिलना मेरे लिए तो बड़ा ही अच्छा हुआ, किन्तु तुमको इतनी लापरवाही के साथ छोड़ देना तुम्हारे मालिक के लड़के के लिए मुनासिब नहीं था।

"हुज़ूर, अगर वे उस तरह हठ करके रोकते—अगर कहते, अच्छा तुम्हारा मकान गिर पड़ा है तो उसकी परवा मत करो, मैं अपने ख़र्च से तुम्हारा घर बनवाये देता हूँ; अथवा इतना भी कहते, अहा! हम लोगों के लिए तुमने बड़ा कष्ट पाया है, अच्छा यह पाँच सौ रुपया लो तुमको पुरस्कार देता हूँ तो मैं क्या करता, नहीं कह सकता। क्या असल बात हुज़ूर को मालूम है—वह ज़माना कुछ और था, और अब नया युग आया है। पुराने समय की बात न रही। बूढ़े मालिक की अमलदारी में किस तरह इज्ज़त-आबरू से समय बिताया, नये बाबू के अमल में क्या अब उस तरह होगा? आजकल के इन अँगरेज़ी-नवीस कालेज के छोकरों से मैं बहुत डरता हूँ। साँप से, बाघ से और पगले सियार से जैसे डरता हूँ वैसे ही इन अल्पवयस्क चश्माधारी छोकरों से भी छड़कता हूँ। क्यों डरता हूँ, यह नहीं जानता, किन्तु मन में एक तरह का भय बना रहता है।" कहकर रौनक़ चुप हो रहा।

चश्माधारी कालेजीय युवक के प्रति रौनक़ की इस अश्रद्धा से बाबू की मानसिक वीणा में एक मीठा तार बज उठा। उन्होंने निश्चय किया—रौनक़ ही को देवीपुर की ज़िलेदारी के काम पर क़ायम मुक़ाम मुक़र्रर करके भेजूँगा। प्रकाश्य में कहा—देखो, यहाँ से तीन कोस पर हमारा एक बड़ा मौज़ा है। उसका नाम देवीपुर है। उसकी सालाना आय पाँच छः हज़ार रुपया है। वहाँ के ज़िलेदार मथुराप्रसाद ने दो महीने की छुट्टी के लिए दरख़ास्त दी है। उनका लड़का बहुत बीमार है। लखनऊ जाकर वे उसका इलाज करावेंगे। दो महीने तुम उनका काम सँभाल दो।

रौनक़ ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर माँ-बाप हैं। जो आज्ञा देंगे, ताबेदार वही करेगा।

बाबू—तुम अभी पन्द्रह रुपया महीना पाते हो न?

"जी हाँ।"

"जो दो महीने तुम एवज़ी करोगे, उन महीनों की मथुरा-प्रसाद की पूरी तलब तुमको मिलेगी। ३०) रुपये मासिक के हिसाब से पाओगे। अगर तुम्हारे काम से मैं ख़ुश हूँगा तो मुफ़स्सिल के किसी महाल की ज़िलेदारी का काम ख़ाली होने पर तुम्हें असालतन कर दूँगा।"

रौनक़ हाथ जोड़ नीची दृष्टि करके बैठ रहा। बाबू कुछ देर चुपचाप हुक्क़ा पीकर कुछ सोचते रहे, फिर बोले—उस महाल के सम्बन्ध में एक गुप्त बात है। देखो, बाहर कोई है तो नहीं।

रौनक़ बाहर जाकर बरामदे में ज़रा घूम आया, फिर बोला—हुज़ूर, कोई नहीं है।

"अच्छा, ज़रा खिसक कर नज़दीक आ बैठो।"

बाबू जिस गलीचे पर बैठे थे उसके पास ही क़र्शीचादर पर रौनक़ सकुच कर बैठ गया। बाबू ने धीमे स्वर में कहा—देखो, उस देवीपुर गाँव में एक घर ग्वाला है। नाम है धनीराम और मनीराम। छोटा भाई मनीराम एक युवती स्त्री को छोड़कर मर गया। उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। छोटे भाई की ज़मीन को अपने कब्ज़े में करके धनीराम उसकी पैदावार खाता था और उस अनाथा विधवा को हद से ज़्यादा तकलीफ़ देता था। भरपेट भोजन तक नहीं देता था। रोज़ उसे मारता-पीटता था। उसके कष्ट की सीमा न थी। जब वह किसी तरह तकलीफ़ बरदाश्त न कर सकी तब घर छोड़ कर भाग गई। अभी वह कहीं छिपी हुई है। तुम वहाँ जाकर उस धनीराम के ऊपर ख़ूब कड़ी नज़र रखना और यह हाल, जो अभी मैंने तुमसे कहा है, उसे किसी तरह मालूम न हो। देखो, अगर वह थाने या सदर में दरख़्वास्त देने जाय तो तुरन्त मुझे ख़बर देना। समझ गये न?

रौनक़—हाँ सरकार, समझ गया। सब ठीक हो जायगा। आप किसी तरह की चिन्ता न करें। ऐसा उपाय करूँगा जिससे वह सात जन्म में भी उसका पता न पावेगा।

यह सुनकर गोपीकान्त बाबू के मन में कुछ कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने पूछा—क्या उपाय करोगे ?

"जी, उसके अनेक उपाय हो सकते हैं। अच्छा, अभी जो मुझे सूझा है वह निवेदन करता हूँ। क़ुसूर माफ़ करेंगे। उस स्त्री का नाम क्या है ?"

गोपी बाबू—नाम से क्या मतलब है ?

"हुज़ूर, मतलब है। एक जाली चिट्ठी तैयार करने की बात सोची है।"

"उसका नाम लीलावती है।"

"मैंने सोचा है, लीलावती की भेजी हुई एक जाली चिट्ठी पहले ही से तैयार कर रक्खूँगा। देवीपुर जाने के दो चार दिन बाद एक दिन धनीराम को बुला भेजूँगा। जब वह आवेगा तब उसे निर्जन स्थान में ले जाकर कहूँगा—'क्यों धनीराम, मनीराम तो तुम्हारा सगा भाई था ?' वह कहेगा—'जी हाँ'। 'मैं कहूँगा—'तुम्हारा भाई तो मर गया है ?' वह कहेगा—'हाँ।' मैं पूछूँगा—'उसका वारिस कौन है ?' बहुत सम्भव है, वह कहेगा—'मैं हूँ।' मैं कहूँगा—'उसकी स्त्री है न ?' वह कहेगा—'हाँ है।' तब मैं कहूँगा—'तो तुम कैसे वारिस हुए ? वारिस हुई उसकी स्त्री। मनीराम के हिस्से की जितनी ज़मीन है उसकी मालकिन ता ज़िन्दगी उसकी स्त्री रहेगी। उसके मर जाने पर तुम वारिस होगे। दाय भाग का यही मत है। अलीगढ़ के क़ानून-सार में भी यह बात लिखी है।' यह सुनकर वह कुछ

घबरा-सा जायगा। तब मैं कैशबक्स से वह चिट्ठी निकाल कर और चश्मा लगाकर मन ही मन पढ़ूँगा। फिर कहूँगा—'देखो, काशी से यह चिट्ठी आई है। पढ़ता हूँ, सुनो—

श्री श्रीविश्वनाथशरणम्।

मान्यवर श्रीयुक्त मथुराप्रसाद साहब ज़िलेदार देवीपुर के निकट निवेदन है। हुज़ूर के आशीर्वाद से यहाँ कुशल है। मैं अनाथा स्त्री हूँ। मेरा कोई रक्षक नहीं। देवीपुर गाँव में मेरी ससुराल है। मेरे स्वामी की मृत्यु हो गई। मैं जब से विधवा हुई तब से अपने जेठ के घर रहने लगी। किन्तु वह न मुझे खाने के लिए भरपेट अन्न देता था और न पहिनने के लिए कपड़े, बल्कि वह मुझे ज़हर खिलाकर मार डालना चाहता था। इसी से मैं डरकर घर छोड़ यहाँ भाग आई हूँ। नित्य गङ्गा-स्नान करके बाबा विश्वनाथ का दर्शन करती हूँ। इसी तरह तीर्थ-वास करके अपने जीवन को बिता देना चाहती हूँ। मेरे खाने-पीने के लिए कम से कम दस रुपया महीना चाहिए। मेरे पति के हिस्से की जितनी ज़मीन है उसकी कुल पैदावार मेरा जेठ धनीराम लूटता खाता है। जीवित अवस्था तक तो मैं ही अपने पति के अंश की अधिकारिणी हूँ। इसी कारण से उसने मुझे ज़हर खिलाकर मार डालना चाहा था। मैं चाहती तो थाने में इसकी रिपोर्ट कर सकती। नालिश दायर कर सकती, किन्तु उसकी ज़रूरत नहीं देखती। किसी तरह मेरी गुज़र होने ही से मैं निश्चिन्त होकर भगवान् का भजन कर सकूँगी। अतएव इस दासी का निवेदन यह है कि मेरे हिस्से की ज़मीन की उपज से आप हर महीने दस रुपया धनीराम से लेकर नीचे लिखे पते पर

मनीआर्डर-द्वारा भेजवा दिया करें। आप मेरे मालिक के मुनीब हैं। गाँव के हर्ता कर्ता हैं। आप ही मेरे जमादार, दारोग़ा और आप ही मेरे मजिस्टर जज हैं। इस कारण मैं आपकी ही शरण लेती हूँ। कृपा करके ऐसा उपाय कर दीजिए जिससे इस अनाथा विधवा की प्राण-रक्षा हो। इति।

काशीनाथ पण्डा के मकान पर,
दशाश्वमेध घाट, बनारस सिटी।

निवेदिका—
लीलावती दासी

चिट्ठी सुनाकर कहूँगा, 'क्यों रे चाण्डाल, तेरा यह व्यवहार! विधवा भ्रातृवधू को अन्न-वस्त्र का कष्ट देकर देश-निकाले की सज़ा दी है? विष खिलाकर उसे मार डालना चाहता था? तू तो आदमी नहीं, भारी राक्षस मालूम होता है! अगर मैं थाने के दारोग़ा को यह चिट्ठी भेज दूँ तो तेरी क्या दशा हो? अभी कान्स्टेबल आ मुश्कें बाँध कर जूता मारते मारते तुझे पकड़ कर ले जायँगे। अन्त में दफ़ा ३०७ के अनुसार चालान होकर दस वर्ष के लिए 'बड़े घर' की हवा खानी होगी।' वह अवश्य ही अपना दोष अस्वीकार करेगा। तब उससे कहूँगा—"जा, अगर अपनी भलाई चाहता है तो इस पते से हर महीने दस रुपया उसके पास भेज दिया कर। वह जो लिखती है, मैं तुझसे रुपया वसूल करके हर महीने उसको भेज दूँ, सो यह मुझसे नहीं होगा। क्या मुझे और काम नहीं है? अपना काम तो मैं पूरा कर ही नहीं सकता उस पर फिर दूसरे का काम! क्या मैं अदालत का चपरासी हूँ जो डिगरी जारी

करता फिरूँगा ? तेरी बहू का हक़ है तो वह अदालत में जाकर नालिश करे या चूल्हे में जाय। यह कह कर आँखें लाल करके चुप हो रहूँगा। वह अपनी बहू का पता तो किसी काल में पावेगा ही नहीं। और दफ़ा ३०७ में गिरफ़्तार होने के भय से थाने में भी नहीं जा सकेगा।"

अब रौनक़ चुप हो रहा। गोपीकान्त इतनी देर तक चकित होकर उसके मुँह की ओर देख रहे थे। उनके हुक्के की गुड़-गुड़ाहट बन्द हो गई थी। हाथ से नली छूट कर गिर पड़ी थी। रौनक़लाल की प्रत्युत्पन्न बुद्धि और प्रपञ्च-विद्या का परिचय पाकर वे दङ्ग हो गये। बाहर से देखने में तो वह बड़ा ही गँवार-सा मालूम होता है। भेट होने पर प्रणाम करके अपराधी की भाँति दब कर कुछ दूर हट कर खड़ा होता है। इसके भीतर इतनी चालाकी भरी है, यह गोपीकान्त को स्वप्न में भी आशा न थी। रौनक़ के ऊपर उनका मन बड़ा ही प्रसन्न हो उठा। सोचने लगे, यह तो एक रत्न ही मालूम होता है। इसको मैं कभी अपने पास से अलग न होने दूँगा। प्रकाश में कहा—अच्छा, रौनक़, अगर वह सचमुच उसके नाम से मनीआर्डर भेज दे तो ?

रौनक़—हुज़ूर, यह मुमकिन नहीं। रुपया ऐसी चीज़ है कि उसे कोई सहज ही हाथ से अलग नहीं करता। इसी लिए तो उससे यह भी कह देना होगा, 'तू भेज दिया कर, मुझसे यह सब काम न होगा।' मान लीजिए, अगर वह काशीनाथ पण्डा के घर के पते से रुपया भेजेगा ही तो वहाँ सचमुच एक

काशीनाथ पण्डा है, वह सही करके रुपया ले लेगा। उसके लिए कोई चिन्ता नहीं। काशीनाथ को मैं भली भाँति जानता हूँ।

बाबू ने कहा—अच्छा, यही सही। इसी तरह का कोई प्रबन्ध करना। तुम्हारी बुद्धि-विवेचना देखकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। सिर्फ़ देवीपुर में ऐवज़ी करने ही तक के लिए नहीं बल्कि मैंने हमेशा के लिए तुम्हारा मासिक वेतन ३०) रु० कर दिया। जी लगाकर काम करोगे तो तुम्हारा महीना और भी बढ़ा दूँगा।

रौनक़ की आँख से मानों कृतज्ञता उछलने लगी। वह बोला—हुज़ूर माँ-बाप हैं, दास के ऊपर दयाभाव बना रहे।

"तो तुम परसों देवीपुर चले जाओ। मथुराप्रसाद से चार्ज ले अच्छी तरह काग़ज़ पत्र समझ कर काम शुरू कर दो। परसों से उसकी छुट्टी मैंने मंज़ूर की।"

"जो आज्ञा" कह कर रौनक़ प्रणाम करके चला। बाहर आकर देखा तो कचहरी के सामने से होकर बग़ल में छतरी दबाये हरिदास जा रहा है। रौनक़ एक खंभे की आड़ में खड़ा हो रहा जिससे हरिदास उसे देख न सके।

सदर फाटक से हरिदास के बाहर हो जाने पर रौनक़ ने दफ़्तर में जाकर एक साथी कर्मचारी से पूछा—अभी एक आदमी बग़ल में छतरी दबाये बाहर गया है, वह कौन था?

"शंकरपुर की एक रियाया। नाम हरिदास है।"

"क्या मालगुज़ारी देने आया था?"

"नहीं, छोटे बाबू से मुलाक़ात करने गया था। पूछने पर उसने कहा—उनसे कुछ काम है।"

"क्या काम ?"

"क्या मालूम, कुछ खुलासा नहीं कहा।"

ओफ़् कहकर रौनक़ अपना काम करने लगा। किन्तु उस दिन लिखने में उससे बहुत भूलें होने लगीं। क्योंकि उस समय उसके मन में पल पल पर नये नये कौशल का आविर्भाव हो रहा था।

सत्रहवाँ परिच्छेद

आज दिन के पिछले पहर रौनक़लाल दूसरे कर्मचारी को अपना काम सौंप कर गोपीकान्त बाबू के पास बिदा होने की आज्ञा लेने गया। उस समय बाबू कई मित्रों के साथ चौसर खेल रहे थे। रौनक़ सामने जा खड़ा हुआ। उसे देखकर भी वे पहले कुछ नहीं बोले। चौसर की एक चाल सोचने में व्यस्त थे। कुछ देर अपेक्षा करके रौनक़ आप ही बोला—"हुज़ूर का हुक्म हुआ था, कल मैं देवीपुर जाऊँगा।" तब बाबू उसकी ओर देखे बिना ही बोले—"कल जाओगे?" रौनक़ ने कहा—"जी हाँ, कल सबेरे ही जाऊँगा।" "अच्छा, ख़ूब सावधानी से काम करना" कहकर बाबू ने फिर चौसर के खेल में मन लगाया। रौनक़ प्रणाम करके चला गया।

अब साँझ होने में ज्यादा देर नहीं है। सदर रास्ते से अपने घर जाने की सड़क पर पैर रखते समय रौनक़ ने एकाएक देखा कि बग़ल में छतरी दबाये हरिदास दफ़्तरवाले मकान की ओर जा रहा है। उसे देखते ही रौनक़ एक पेड़ की ओट में छिप रहा। उसके दृष्टि-पथ से बाहर निकल जाने पर फिर चलने लगा। घर पर आ, हाथ-पैर धोकर एक चिलम तम्बाकू भरते भरते रौनक़ भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा। वह

सोचने लगा, हरिदास यहाँ इस तरह जल्दी जल्दी क्यों आता है ? उसका मतलब क्या है ? कुछ गुप्त उद्देश्य तो नहीं है ?

तम्बाकू भर कर दो चार कश खींच चिलम को हाथ से रख दिया। दोनों आँखों को ऊपर की ओर उठा कर फिर वह चिन्ता में निमग्न हुआ। सोचने लगा—इस ग्वाले साले का विश्वास नहीं, न जाने क्या करने आता है। कल छोटे बाबू के पास जाकर न मालूम चुपचाप क्या विचार कर रहा था। ज़मीन या लगान के सम्बन्ध में तो छोटे बाबू से कोई बातचीत हुई ही न होगी—क्योंकि वे इन बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। वे तो दिन भर अपने पूजा-पाठ में ही लगे रहते हैं। समय बचता है तो धर्मशास्त्र की पोथी पढ़ते हैं। तो क्या हरिदास अब धर्मात्मा हो गया है ? छोटे बाबू के पास धर्म की कथा सुनने आता है; उन्हें गुरु बना कर चेला बनना चाहता है ? किन्तु छोटे बाबू जैसे नैष्ठिक हैं उससे तो विश्वास नहीं होता कि वे ग्वाले को शिष्य बना लेंगे। अवश्य ही हरिदास का कोई दूसरा उद्देश है। मालूम होता है, उसे किसी तरह यह ख़बर लग गई है कि रौनक़लाल यहाँ नौकरी करने आया है। शायद वह छोटे बाबू के पास मेरा ही गुण-दोष कहने आया था। वह समझता है कि छोटे बाबू का मिज़ाज बड़ा कड़ा है। यदि सुनेंगे कि रौनक़ जेल हो आया है—यह एक भारी जालिया है—तो सम्भव है, वे अपने बड़े भाई से कहकर रौनक़ को अर्धचन्द्र

दिलाने की व्यवस्था करेंगे। अगर हरिदास के मन में यह आशा है तो उसकी यह आशा दुराशा-मात्र है। क्योंकि मेरे सौभाग्य से बड़े बाबू ऐसे नीति-रोग-ग्रस्त मक्खन के पुतले नहीं हैं जो यह बात सुन कर मूर्च्छित हो पड़ें।

रौनक़ इसी सोच विचार में उलझा था कि चिलम की आग बुझ गई। दो तीन बार निगाली से उसने धुआँ खींचा पर आग न सुलगी—धुआँ बाहर न निकला। अब उसके मन की भावना दूसरी ओर गई। सोचा, अच्छा आज मैं जब बाबू के पास बिदा होने गया तब उन्होंने मेरे साथ अच्छी तरह बातचीत क्यों नहीं की? मेरे मुँह की ओर देखा तक नहीं। मुझ पर नाराज़ तो नहीं हो गये? कहीं छोटे बाबू ने मेरे बारे में उनसे कुछ कह तो नहीं दिया, नहीं तो उनके मन का भाव तुरन्त ही बदल क्यों गया? मुझे जेल हुआ था, या मैंने जाल किया था, यह सुनकर बड़े बाबू कभी मुझ पर असन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि उनके मुँह से प्रसन्नता का ही भाव झलक रहा था। ज़रूर ही हरिदास ने मेरी शिकायत की है कि रौनक़ बड़ा ही नमकहराम और विश्वासघाती है, नहीं तो जेल की बात सुनकर बाबू की श्रद्धा मुझ पर और भी बढ़ गई थी। अभी ज्यादा देर नहीं हुई है। अभी छोटे बाबू का सायं-सन्ध्या करने का समय है। हरिदास अभी बैठा ही होगा। सायंकृत्य समाप्त होने के पहले ही बाबू से उसकी भेंट हो जायगी—यह उम्मीद कम है।

एक बार चलकर ख़बर ले आना चाहिए; नहीं तो सारी रात छटपटाता रहूँगा, नींद न आवेगी !

यह सोच कर रौनक़ उठा। तब साँझ हो गई थी। रात का अन्धकार सर्वत्र छा गया था। घर के दर्वाज़े में ताला बन्द करके रौनक़ बाहर निकला। दफ़्तरवाले मकान में जाकर देखा सभी मुनीब गुमाश्ते चले गये हैं। दफ़्तर में ताला लगा है। सामने का मैदान सूना पड़ा है। केवल दो एक दरबान सदर फाटक पर बैठे हैं। एक दरबान ने पूछा—नाज़िर बाबू, आप फिर आये हैं ?

"हाँ, एक ज़रूरी काग़ज़ यहीं छोड़ गया था, वह देवीपुर ले जाना होगा, इसी से अभी आया था। दफ़्तर तो बन्द हो गया।" यह कहकर रौनक़ ने मोतीलाल की बैठक की ओर देखा। एक खुली खिड़की की राह से रोशनी निकल रही थी। धीरे धीरे वह उसी ओर अग्रसर हुआ। वह खिड़की पश्चिम ओर की दीवार में धरती से कुछ ऊपर थी। खिड़की के नीचे कितनी ही टूटी फूटी ईंटें पड़ी थीं। इसके सिवा वहाँ घुइयों और छोटे छोटे जङ्गली पौधों का जङ्गल भी था। पैर की आहट बचाकर रौनक़ धीरे धीरे उस खिड़की के पास आकर खड़ा हुआ। खिड़की उसके क़द से ऊँची होने के कारण भीतर का कोई दृश्य दिखाई नहीं दिया। केवल इतना समझ सका कि दो आदमी बातें कर रहे हैं। गले की आवाज़ से यह भी मालूम हुआ कि छोटे बाबू और हरिदास

हैं। किन्तु उन दोनों में जो बातें होती थीं वह सब सुनाई नहीं दीं। जो सुन पड़ीं वह यही—

छोटे बाबू—कब उत्सव है ?

हरिदास—दिवाली के दिन। किन्तु उन लोगों ने बहुत तरह से कहा है कि उत्सव के एक दिन पहले ही हजूर को वहाँ पहुँचना चाहिए।

छोटे बाबू—अच्छा जायँगे। कल तुम जब आये थे तब मेरे एक मित्र नारायण बाबू यहाँ बैठे थे। उनका घर आज़मगढ़ के नज़दीक ही है। वे बहुत आग्रह से कह गये हैं कि मैं उनके यहाँ जाकर पाँच सात दिन रहूँ। आज़मगढ़ में नवरात्र-पूजा के दिन उन लोगों का वार्षिकोत्सव देखकर दूसरे दिन नारायण बाबू के यहाँ जाऊँगा। तुम कब जाओगे ?

"मैं कल सबेरे ही रवाना होऊँगा। दिवाली के बाद ही अब उधर से लौटूँगा।"

"अच्छा, तुम जाओ। मैं चिट्ठी का जवाब लिखे देता हूँ उसे लेते जाओ। उनसे ज़बानी भी कह देना कि मैं उत्सव के एक दिन पहले आ पहुँचूँगा।"

इसके बाद मन्द स्वर में उन दोनों के बीच और क्या क्या बातें हुईं, यह रौनक़लाल को नहीं मालूम। घुँइयों के जङ्गल में कुछ खड़खड़ाने लगा। भयानक अँधेरा था, कुछ सूझता न था। उस जङ्गल में साँप होने की आशङ्का करके रौनक़ डर गया। अब उसे वहाँ ठहरने का साहस न हुआ।

"हे माँ मनसा देवी, रक्षा करो" यह मन ही मन कहता हुआ वह धीरे धीरे वहाँ से खिसक पड़ा। दफ़्तर के सामने-वाले मैदान से निकल, फाटक पार होकर, वह अपने घर की ओर अग्रसर हुआ।

कुछ आगे बढ़ने पर एक सिपाही उसके सामने आकर बोला—कौन है, नाज़िर बाबू ?

रौनक़ का कलेजा धड़क उठा। अभी वह खिड़की के पास अँधेरे में खड़ा होकर चोर की भाँति उन दोनों की बातें सुन आया है, क्या इसी से छोटे बाबू ने उसे पकड़ने के लिए यह आदमी भेजा है ? दबे स्वर में रौनक़ ने कहा—हाँ, क्या है ?

"आपको बाबू बुलाते हैं।"

"कौन बाबू ?"

"कौन बाबू ?—मालिक—बड़े बाबू।"

"बड़े बाबू ने बुलाया है, क्यों ?"

"मुझे क्या मालूम। मैं यह नहीं जानता। मुझे सिर्फ़ हुक्म दिया है—जाओ नाज़िर को बुला लाओ।"

रौनक़ सिपाही के साथ साथ चला। कुछ क्षण में बैठक की एक कोठरी में प्रवेश करके देखा कि बाबू अकेले वहाँ एक किताब पढ़ रहे हैं। रौनक़ ने प्रणाम करके कहा—हुज़ूर ! दास का स्मरण किसलिए किया गया है ?

"हाँ, कल तुम देवीपुर को रवाना होते हो ?"

"जी हाँ, सबेरे उठ कर जाने का विचार किया है।"

"जाने का क्या बन्दोबस्त किया है ?"

"यों ही चल देता, परन्तु साथ में ज़रूरी चीज़ें भी ले जानी होंगी, इसलिए एक बैलगाड़ी ठीक कर रक्खी है।"

बाबू ने कहा—जो चीज़ वस्तु साथ ले जानी हो वह बैलगाड़ी ही पर रवाना कर दो। किन्तु तुम मेरी तरफ़ से ज़िलेदार होकर जाते हो, इसलिए तुम्हारा बैलगाड़ी पर जाना ठीक नहीं—इसमें इज्ज़त जाती है। मैं अभी ताँगे के लिए कह देता हूँ। तुम उसी पर जाना।

इतनी देर में रौनक़ के मन से सारी आशङ्काएँ और संशय दूर हुआ। बाबू उस पर नाराज़ नहीं हैं। किसी ने उनसे मेरी कुछ शिकायत नहीं की है। रौनक़ ने हाथ जोड़कर कहा—हुज़ूर की जैसी मर्ज़ी।

कुछ देर बाद बाबू बोले—एक बात और है। उस दिन मैंने एक स्त्री के बारे में कहा था न ?

"जी हाँ, याद है।"

"अभी तुरन्त ही धनीराम को बुला कर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। हाँ, उस पर नज़र हमेशा रखना। देखो अगर वह थाने में दरख़्वास्त देने जाता हो तो झट यह ख़बर मुझे देना।"

"बहुत अच्छा।"

"उस स्त्री को घर छोड़े एक महीने से ऊपर हुआ है। अगर थाने में रिपोर्ट करनी होती तो धनीराम अब तक बैठा नहीं रहता। जो करना चाहता, ज़रूर करता। जब उसने अब

तक कुछ नहीं किया है तो अब करेगा भी नहीं। सम्पत्ति बँटाने-वाले हक़दार के टल जाने ही में उसने कुशल समझ ली है। अब स्वयं उस बात की चर्चा चलाने की ज़रूरत नहीं।"

"जो हुक्म।"

"पीछे अगर कुछ करने की ज़रूरत होगी तो तुमको समझा दूँगा। बीच बीच में तुम यहाँ आकर मुझे बराबर वहाँ की ख़बर दिया करना। हफ़्ते में एक दिन या दो दिन, जैसा आवश्यक देखना वैसा करना।"

"जी हाँ, हफ़्ते में यहाँ दो एक बार हाज़िर होकर जो हाल होगा, सब कह जाया करूँगा।"

"अच्छा तो अब जाओ।"

बाबू के पैर छू करके रौनक़ दुबारा बिदा हुआ।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

रौनक़ दफ़्तर के हाते से बाहर होकर अँधेरे मार्ग से धीरे धीरे अपने घर की ओर बढ़ चला। मन की दुश्चिन्ता दूर होने से उसका हृदय प्रसन्न हो उठा है। अपने मन की उमङ्ग से गुन-गुना कर वह गीत गाने लगा।

सदर रास्ते से उतर कर पोखर के किनारेवाले अपने घर की ओर जाते समय रौनक़ ने तारों की धुँधली रोशनी में देखा कि उससे पाँच छः हाथ के फ़ासले पर सिर से पैर तक सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई एक स्त्री उसकी ओर आ रही है। देखते ही रौनक़ के होश उड़ गये। उसने सोचा, भाग चलना चाहिए—यह अवश्य ही चुड़ैल है। किन्तु डर से उसके दोनों पैर इतने भारी हो गये कि वह भाग नहीं सका। थरथरा कर वहीं खड़ा हो रहा। इतने में वह नारीमूर्ति उसकी ओर कुछ और बढ़ कर डरते डरते बोली—कौन है?

अब रौनक़ की जान में जान आई। समझ गया कि यह बसन्ती का कण्ठ-स्वर है। उसने पास जाकर कहा—कौन, बसन्ती?

बसन्ती—इतनी रात को कहाँ गये थे?

"अभी बहुत रात कहाँ हुई, यही तो साँझ हुई है। तुम कहाँ से?"

बसन्ती इस बात का जवाब न देकर बोली—क्या तुम कल सबेरे देवीपुर जाते हो ?

"हाँ, तुमसे किसने कहा ?"

"मुझसे किसने कहा है ! तुम तो मुझसे बिना ही कुछ कहे-सुने, इसी तरह, चुपचाप चल देते ?"

रौनक़ समझ गया, बसन्ती को अभिमान हुआ है। अनुमान किया, शायद वह मेरे घर गई थी। दर्वाज़े में ताला लगा देखकर लौटी आ रही है। उसने तुरन्त बात बना कर कहा—तुम्हीं से भेंट करने के लिए तो मैं साँझ से तुमको ढूँढ़ता फिरता हूँ। नहीं तो इस घने अन्धकार में, जब हाथ पर हाथ नहीं सूझता, कभी मैं घर से निकलता हूँ ?

"मुझको खोजते थे ?" बसन्ती कुछ मुलायम पड़ी।

रौनक़ ने अधीर स्वर में कहा—"तुमको नहीं तो किसको खोजूँगा ? इस दुनिया में मेरे और कौन है ? चलो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ? मेरे घर चलो, तुमसे बहुत बातें कहनी हैं।" यह कह कर आगे आगे रौनक़ चला, उसके पीछे पीछे बसन्ती भी चली।

घर जाकर सदर दरवाज़े में भीतर से साँकल लगा, द्वार बन्द करके, उसारे में चटाई बिछा कर रौनक़ बैठा और बसन्ती को भी बैठने का अनुरोध किया। बसन्ती ने ख़ूब ज़ोर से सिर हिला कर चटाई पर बैठने से अनिच्छा सूचित की। कुछ दूर हट कर वह भूमि में ही बैठ गई।

रौनक़—अब क्या होगा ?

बसन्ती—होगा क्या ? तुम्हारी मति गति का कुछ ठिकाना है ! अब इन बातों को रहने दो। मैं समझ गई, तुम कैसे आदमी हो। आप देवीपुर के ज़िलेदार हुए हैं—ज़िलेदार साहब।

रौनक़—अभी पक्का नहीं हुआ हूँ। एवज़ी है।

"मैं कच्चा गहर नहीं समझती। आप बड़े आदमी हुए हैं, इसी से अब आपका पैर धरती पर नहीं पड़ता।"

रौनक़ ने दिल्लगी के तौर पर कहा—बड़ा आदमी क्यों नहीं हूँगा ? लोग कहते हैं कि स्त्री के भाग्य से धन होता है। अगर तुम मुझसे ब्याह करो तो देखो मैं बड़ा आदमी होता हूँ या नहीं। पर तुम्हारी तो दया होती ही नहीं। तुम्हारे साथ ब्याह करने की इच्छा करते ही देखो मुझे ज़िलेदारी मिल गई। ब्याह होने पर मैनेजरी मिल जाय तो क्या तअज्जुब है ?

बसन्ती—क्या दया नहीं होती है ? उस दिन मैं क्या कह गई थी ! मैं तो अपने मुँह से कह गई थी कि राज़ी हूँ। आपने ही कहा, एक दिन हम तुम दोनों बैठ कर सब बातों का ठीक ठाक कर लेंगे। इसके बाद न कोई कथा हुई न बार्ता। अब आप यहाँ से चम्पत होने की फ़िक्र में हैं।

रौनक़—इसी को कहते हैं स्त्री-चरित्र ! कहो तो उस दिन से फिर कभी तुम यहाँ आई भी ? जब तुम आतीं तभी तो कोई बात स्थिर होती ? मैं रोज़ साँझ को बैठकर सोचता था कि आज बसन्ती आवेगी। पहर रात तक तुम्हारे आने

की राह देखकर हताश हो मन में कहता था कि आज नहीं आई तो कल ज़रूर आवेगी—परन्तु कहाँ बसन्ती, कहाँ कौन। अब उलटे मुझी को दोष देती हो ?

यह सुनकर बसन्ती कुछ लजा गई। मन ही मन कहा कि रौनक़ ठीक ही तो कहता है। आज जब उसने सुना कि रौनक़लाल ज़िलेदार होकर देवीपुर जा रहा है तब उसके मन में आग लग गई। सोचा, रौनक़ ने जो उसके साथ ब्याह करने की बात कही थी वह छल-मात्र था। उसे गवाँर समझ कर रौनक़ ने दिल्लगी में यह बात कह दी थी। इससे वह मारे क्रोध के हतज्ञान होकर साँझ होने पर रौनक़ की खोज में आई थी।

बसन्ती को चुप देखकर रौनक़ ने कहा—इधर आगमन क्यों नहीं होता था ? उस दिन जो राँधकर खिला गई और कह गई कि सुभीता पाते ही आऊँगी सो फिर दर्शन तक नहीं।

बसन्ती—कहिए कैसे आऊँ ? मेरा आना क्या सहज है ? हम हैं बड़े आदमी के घर की नौकरनी। क्या यों ही रास्ते रास्ते घूम फिर सकती हैं ? आज मालकिन से कितना बहाना करके आई हूँ।

"अच्छा तो कोई हर्ज नहीं। मैंने समझा था, मुझसे ब्याह करना होगा—शायद इसी भय से तुम भागी भागी फिरती हो।"

बसन्ती—मैं भागती हूँ या आप भागते हैं ? देवीपुर जा रहे हैं, ब्याह का ठीक ठाक, उसका दिन कैसे स्थिर होगा ?

रौनक़—होगा क्यों नहीं! उसके लिए चिन्ता ही क्या, कोई दिन स्थिर कर लिया जायगा।

यह सुनकर बसन्ती फिर क्रोध से जल उठी। बोली—ऐसी लापरवाही से बोल रहे हो।

"तुमने लापरवाही कैसे समझी? स्त्री का हृदय है न। बात बात में अविश्वास!"

बसन्ती ने रुष्ट होकर कहा—अगर आपको मेरे साथ ब्याह करने की इच्छा सचमुच ही हो तो सब बातों का जल्दी ठीक ठाक कर डालिए। यहाँ अब मेरा मन नहीं लगता। अगर ब्याह करना मंजूर न हो तो साफ़ साफ़ कह दीजिए। मेरी मौसी मर गई है, वह मुझे कुछ रुपया दे गई है। सोचती हूँ, न होगा तो काशी चली जाऊँगी। मेरे पास जो रुपया-पैसा है और मौसी जो दे गई है वह सब मिलाकर इतना हो जायगा कि जिससे मेरा काशी का ख़र्च अच्छी तरह चल जायगा। भगवान् का भजन करूँगी, गंगा-स्नान करूँगी और स्वतन्त्रता से रहूँगी। अब मैं दासी का काम करके ज़िन्दगी नहीं बिताना चाहती।

यह सुनकर रौनक़ को धक से रुपये की बात याद आ गई। सोचा, उस दिन हिसाब किया तो मालूम हुआ कि इसके हाथ में ढाई सौ रुपये के लगभग हैं। फिर मौसी से रुपया पाने की बात कहती है। कौन जाने वह कितना रुपया दे गई है। पूछने से यह बतलावेगी भी नहीं। जो पूछूँ तो मुझ पर सन्देह भी

हो सकता है। तब रौनक़ ने बसन्ती का रुपया हथियाने का एक और उपाय सोचा।

वह समझाकर लल्लो पत्तो करके कहने लगा—बसन्ती तुम क्या समझती हो, अगर मैं आज ही तुमसे ब्याह कर सकता तो क्या कल के लिए रुक रहता? तुम असल बात नहीं जानतीं। यह सधवा का ब्याह नहीं है, यह है विधवा का ब्याह। विधवा के ब्याह में बड़ा बखेड़ा होता है। कुमारी का ब्याह दो चार मन्त्र पढ़कर आग में ज़रा-सा घी डाल देने ही से हो जाता है। विधवा-ब्याह का मन्त्र पढ़ा सके ऐसा होशियार पुरोहित इन गँवई गाँवों में मिलना कठिन है। मुरादाबाद के सिवा उस ढङ्ग का पुरोहित अन्यत्र नहीं मिलेगा। इससे मुरादाबाद गये बिना यह ब्याह भी नहीं होगा। मुरादाबाद जाने और वहाँ एक मकान भाड़े पर लेकर रहने में बहुत रुपये की ज़रूरत है। मेरे पास तीन बीस अर्थात् साठ रुपये हैं। आशा नहीं कि इसमें सब ख़र्च हो सके। इसी लिए तो कुछ विलम्ब कर रहा हूँ, नहीं तो अब तक न जाने यह काम कब हो गया होता। भगवान् की कृपा से ख़र्च के लिए रुपये का एक उपाय भी हो गया है।

बसन्ती उत्साह-पूर्वक बोली—क्या उपाय हुआ है?

रौनक़—एक सिद्ध महात्मा से भेट हो गई है। उन्होंने कुछ रुपया मिलने का उपाय कर दिया है

बसन्ती का कुतूहल बहुत बढ़ गया। बोली—बतलाइए न, क्या उपाय हुआ है ?

रौनक़ ने गम्भीरतापूर्वक कहा—स्त्रियों को ये बातें सुनने की ज़रूरत नहीं।

बसन्ती ने बिनती करके कहा—नहीं; बतलाइए, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।

तब रौनक़ ने धीरे धीरे यों कहना आरम्भ किया—

"कल साँझ को मैं नदी-किनारे घूमने गया था। वहाँ देखा कि पीपल के पेड़ के नीचे धूनी जलाये एक साधु बैठे हैं। उनके सिर की जटाओं का क्या कहना है ! वे धरती में लोट रही थीं। ख़ूब मोटी भुजाएँ, गौर वर्ण, चौड़ी छाती और उस पर लगी हुई विभूति तथा गले में रुद्राक्ष की माला थी। पास ही नरकपाल रक्खा हुआ था। बाघंबर पर बैठे साक्षात् शिव के समान मालूम होते थे। देखते ही भक्ति उत्पन्न हुई। मैं उनके पास गया। बाबा को प्रणाम करके हाथ जोड़ सिर झुकाकर मैं बैठ गया। मुझे देखकर बाबा ने पूछा—'क्यों रे भगत ! तेरा मुँह ऐसा उदास क्यों है ?' मैंने कहा—'बाबा ! मैं बड़ा ग़रीब हूँ। ब्याह करने की इच्छा है—दुलहिन भी मिल गई है, केवल रुपये के अभाव से ब्याह नहीं कर सकता। इसी शोच से मेरा चेहरा ऐसा फीका पड़ गया है।' यह सुनकर बाबा खिलखिला कर हँसने लगे। उन्होंने कहा—'रुपया तो मिट्टी है ! तुझे कितने रुपये चाहिए'। मैंने हाथ जोड़कर

कहा—'दो सौ रुपया मिलने ही से मेरा ब्याह हो जायगा।' यह सुनकर बाबा ने कहा—'तेरे पास कितना रुपया है?' मैंने कहा—'बहुत होगा तो पचास साठ। मैं ग़रीब आदमी रुपया कहाँ पाऊँगा?' बाबा ने कहा—'अच्छा कुछ परवा नहीं। हम तुझको एक मन्त्र सिखा देंगे, उस मन्त्र के प्रभाव से तेरा एक एक रुपया चार चार हो जायगा।' मैंने कहा, 'बाबा, कृपा करके वह मन्त्र बता दीजिए, बड़ी कृपा होगी।' बाबा ने कहा—'जा नदी में स्नान कर आ।' मैं नदी में स्नान कर आया और बाबा के पास भीगे कपड़े पहिने आ बैठा। बाबा ने कहा—'हम जो जो बातें कहते हैं उन्हें मन लगा कर सुन। तेरे जितने रुपये हों उन्हें एक काठ के सन्दूक़ में बन्द कर देना। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात को किसी बेवा औरत से कहना कि वह सिर के बाल खोल, धरती में माथा रख, दाँत से दौना (द्रोण-पुष्प) की जड़ उखाड़ कर ला दे। उस जड़ को पानी से धो दहने हाथ में ले १०८ बार मन्त्र पढ़ कर लाल डोरे से कस कर बक्स की जंज़ीर में बाँध देना। बक्स में पीतल का ताला लगा कर कुंजी उस औरत को दे देना। रोज़ आधी रात के समय बक्स के ऊपर हाथ रख कर एक सौ आठ बार मन्त्र जपना। एक महीने के बाद जब फिर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात आवे तब उस औरत को बुला कर उसी के हाथ से बक्स खुलवाना। कुबेर देवता की कृपा से देखोगे कि बक्स का रुपया चौगुना

होगया।' यह कह कर बाबा ने मेरे कान में मन्त्र कह दिया। मन्त्र बहुत बड़ा नहीं, तीन ही अक्षर का है।"

बसन्ती गाल में हाथ लगाये चुपचाप रौनक़ की अनूठी बातें सुन रही थी। रौनक़ के चुप हो जाने पर भी कुछ देर तक उसके मुँह से बात न निकली।

आख़िर वह दाँत से जीभ काट कर बोली—अरे दादा क्या यह सच है?

रौनक़—बिना जाँच किये नहीं कहा जा सकता कि यह सच है या नहीं। बाबा जी ने जैसा कहा है उसी तरह करके देखूँगा। रुपया चौगुना हुआ तो अच्छा ही—न हुआ तो मेरा असल रुपया कहाँ जायगा?

"कब परीक्षा कीजिएगा?"

रौनक़ ने कुछ सोच कर कहा—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। अभी दो महीने के लिए एवज़ी करने देवीपुर जा रहा हूँ—इन दो महीनों के भीतर तो बनेगा नहीं। देवीपुर से लौट कर बाबू से एक महीने की छुट्टी लेकर घर जाऊँगा। वहाँ मेरी फूफी रहती है। वह विधवा है। उसी से अँधेरे पाख की चतुर्दशी की रात में जड़ी उखड़वाऊँगा। किन्तु फूफी बहुत बूढ़ी होगई है, उसको अब आँख से बहुत कम सूझता है। यही मुश्किल है।

रौनक़ जानता था कि बसन्ती अवश्य ही कहेगी, "आगामी चौदस की रात में यहीं परीक्षा हो।" परीक्षा का फलाफल

जानने के लिए बसन्ती की उत्कण्ठा कहाँ तक बढ़ी है, यह उसके स्वर से ही ज़ाहिर हो चुका था। रौनक़ ने जो सोचा था वही हुआ। बसन्ती कुछ देर में बोली—अच्छा, चतुर्दशी के तो अब बहुत दिन नहीं हैं; उस रात को आप देवीपुर से यहाँ आइए न ?

रौनक़—आना तो कठिन नहीं, किन्तु विधवा कहाँ मिलेगी ? और विधवा भी ऐसी हो जो रात में यहाँ आना कबूल करे तथा किसी से इस बात की चर्चा न करे। बाबा जी ने मना कर दिया था कि जड़ी का हाल किसी दूसरे को मालूम न होने पावे।

"मैं तो हूई हूँ। न कोई मिलेगी तो मैं ही वह जड़ी उखाड़ कर ला दूँगी।"

रौनक़ मानो परम कृतज्ञ होकर बोला—अहा, जो तुम यह स्वीकार कर लो तो मुझे और कहीं जाने की ज़रूरत ही क्या है ? आज सप्तमी है, आज के सातवें आठवें दिन चतुर्दशी होगी। यदि तुम निश्चय करके कहो तो मैं चतुर्दशी की रात यहाँ आऊँ।

"मैं पक्का वादा करती हूँ। आपका यह काम मैं ज़रूर कर दूँगी। तो आप किस वक्त आवेंगे ?"

"यहाँ से देवीपुर तीन कोस है। वहाँ का काम करके दफ़्तर बन्द कर कुछ दिन रहते चलूँगा तो साँझ होते होते यहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"अच्छा, मैं उस समय कुछ बहाना करके मालकिन से

एक घंटे की छुट्टी लेकर आऊँगी। किन्तु दौने का पेड़ कहाँ मिलेगा ?"

रौनक़ ने हँसकर कहा—घोड़ा मिल जाने पर चाबुक मिलना कौन कठिन है। यदि तुम आ जाओगी तो दौने के पेड़ के लिए काम न रुकेगा। दौने के पेड़ कितने लोगी ? मेरे आँगन के कोने ही में तो ढेर के ढेर लगे हैं। चलो अभी दिखला दूँ।

रौनक़ ने हाथ में दिया लिया। दोनों उठ कर आँगन के कोने में गये। बसन्ती ने देखा, दौने के बहुतेरे पेड़ उपजे हुए हैं। वह बोली—अगर उखाड़ते समय पेड़ टूट जाय और जड़ न निकले तो ?

रौनक़—दौने का पेड़ इतना कमज़ोर नहीं होता कि दाँत से कट कर टूट जाय। पहले उसे अच्छी तरह हिला कर उखाड़ने से क्यों नहीं उखड़ेगा। उसे तो छोटा-सा लड़का भी उखाड़ सकता है। अगर ऐसे न हो तो खुरपी से पहले उसकी जड़ की मिट्टी खोद कर आँचल के छोर से पेड़ को बाँधना और फिर उस कपड़े की गाँठ को दाँत से दबा कर पेड़ उखाड़ लेना।

बसन्ती प्रसन्न दृष्टि से रौनक़ के मुँह की ओर देखकर बोली—तुम्हारी बुद्धि बड़ी विलक्षण है।

"इतनी बुद्धि रहने पर भी तो तुम्हारा मन नहीं पा सका" कहते कहते दोनों फिर उसारे में लौट आये।

बसन्ती अब खड़े खड़े ही बोली—बहुत देर हो गई, अब मैं जाती हूँ।

"कुछ देर और न बैठोगी ? मन की कितनी ही बातें तुम से कहनी हैं। यदि भगवान् की दया हुई, साधु के मन्त्र के प्रभाव से रुपया चौगुना बढ़ गया तो अगहन महीने के अन्त तक मुरादाबाद जाकर ब्याह का काम कर डालूँगा।" यह कहते कहते रौनक़ बसन्ती के साथ साथ दरवाज़े तक गया।

बसन्ती ने कहा—चतुर्दशी को सन्ध्या-समय आप अवश्य आवेंगे न ?

"अवश्य। तुमको इस बात का स्मरण रहना चाहिए।"

"रहेगा" कह कर बसन्ती चली गई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

आज नव बजे दिन को रौनक़लाल ने देवीपुर पहुँच कर मथुराप्रसाद से चार्ज ले काग़ज़ पत्र और तहवील अपने ज़िम्मे कर ली। तीसरे पहर मथुराप्रसाद ने घर की यात्रा की।

नये पद पर नियुक्त होकर रौनक़ ने बड़ा ही साधुभाव धारण किया। नाई को बुलाकर अपनी दाढ़ी मूँछ मुँड़वा डाली। कार्य न होने पर एक हरिनाम जपने की झोली हाथ में लेकर और खड़ाऊँ पहिन कर घूमने लगा। ब्राह्मण को देखते ही धरती पर सिर टेक कर प्रणाम करता था। साधु-संन्यासी को बड़े आदर से अपने घर बुला उन्हें यथेच्छ भोजन कराता था। छोटे बड़े सभी श्रेणी के लोगों की स्त्रियों को माँ कह कर पुकारने लगा। प्रजा को सता कर अन्यायपूर्वक लिये गये पैसे से गोरक्त और ब्रह्मरक्त की तुलना कर, ग़रीब प्रजा को अपनी सन्तान के बराबर मान कर, रौनक़ थोड़े ही दिनों में गाँव में विलक्षण रूप से परिचित हो गया। सभी लोग उसका दयाधर्म देखकर दंग हो रहे।

इस तरह एक हफ़्ता बीता। इसके बाद रौनक़ ने कमलपुर जाकर मालिक से भेंट की। बाबू एक सूनी कोठरी में बैठे थे। वहीं उसकी तलबी हुई। बाबू ने कहा—कहो रौनक़लाल, वहाँ का क्या हाल है?

"हुजूर के श्रीचरणों की असीस से सब कुशल मङ्गल है। जब से मैं गया हूँ तब से २७२।।।) वसूल हुआ है। पन्द्रह दिन के भीतर और तीन चार सौ रुपया वसूल होने की आशा है। छोटे क़ौम की रियाया अधिक हैं—वे लोग बड़े पाजी हैं। मालगुज़ारी देने में बड़ी हुज्जत करते हैं।"

"अच्छा, उस महाल के सब गाँव तो तुम देख चुके ?"

"जी नहीं, सब गाँव तो अभी तक नहीं देखे हैं। कुछ गाँव देखना अभी बाक़ी रह गया है। सुबह आठ बजे से ग्यारह बजे तक दफ़्तर करके स्नान भोजन करता हूँ। एक बजे घोड़े पर सवार होकर महाल देखने निकलता हूँ। साँझ को वापस आता हूँ। सभी गाँवों में हुजूर का अतुल प्रताप छाया है। हुजूर को धाक से बाघ बकरी एक ही घाट में पानी पीते हैं। यह देखकर बड़ी ख़ुशी हुई।"

रौनक़लाल की ख़ुशामदी बातों से गोपीकान्त बहुत ख़ुश हुए। उससे बोले—अच्छा अच्छा, तुमको जैसा परिश्रमी देखता हूँ, तुम बेशक अपनी तरक्क़ी बहुत जल्द कर सकोगे।

रौनक़लाल ने सिर निहुरा कर कहा—हुजूर की दया से सब हो सकता है।

ज़मींदारी के सम्बन्ध में और भी कुछ देर तक बातचीत हुई। इसके बाद बाबू ने कहा—उस मामले का भी कुछ पता लगा ?

"हुजूर का हुक्म था इसलिए उस पर मैं सिर्फ़ बराबर

नज़र रखता था। और वह भी बड़ी सावधानी से, जिसमें कोई किसी तरह का सन्देह न कर सके। धनीराम के घर के नज़दीक होकर हमेशा जाता आता था। मुफ़स्सिल देखने का काम हो जाने पर ज़रा असुविधा होगी। क्योंकि बिना किसी प्रयोजन के हमेशा उधर कैसे जाऊँगा। इसी से एक उपाय सोचा है किन्तु उस काम के लिए हुज़ूर का हुक्म दरकार है।"

बाबू—कहो, क्या उपाय सोचा है।

"यही कि उस धनीराम के घर के पास ही थोड़ी ज़मीन बिला बन्दोबस्ती पड़ी है। एक घर रियाया थी, वह मर गई है। उसके कोई वारिस भी नहीं है। वह ज़मीन सर्कार में ही आ गई है। उसी को साफ़ कराके वहाँ एक बाग़ लगाना शुरू कर दूँ तो बड़ा अच्छा हो। चारों ओर बाँसों के घेरे से घेर कर नीबू, आम, केला, कटहल और लीची आदि के पेड़ और अच्छे अच्छे फूलों के पेड़ भी उसमें लगवा दिये जायँ। इस बहाने से उधर जाने आने का एक मौक़ा हाथ लगेगा। कोई कुछ सन्देह भी न करेगा।"

बाबू ने कहा—यह तुमने अच्छी बात सोची है। मैंने मंज़ूरी देदी। बीच में एक बँगला भी खड़ा कर दो। उसके भीतर ईंटों की एक हाथ ऊँची सहन भी कुछ लम्बी चौड़ी बनवा लेना जिसमें बैठकर कभी कभी कचहरी का काम भी कर सकोगे।

"जी सरकार, ऐसा होने से तो बड़ा ही अच्छा होगा। फल के छोटे छोटे पेड़ कहाँ मिलेंगे, यही सोच रहा हूँ।"

बाबू ने कहा—उसके लिए फ़िक्र मत करो। बाग में फलों के अनेक छोटे छोटे पौधे हैं। जितने दरकार हों, बैलगाड़ी पर लाद कर ले जाना।

"बहुत अच्छा, यही करूँगा। एक बात की और इत्तला करनी थी। एक विषय में कुछ सन्देह हुआ है।"

"क्या ?"

"इस धनीराम के घर के पास से होकर जाते समय एक दिन देखा कि एक आदमी उसके घर से निकल कर जा रहा है। वह दिहाती किसान के ऐसा नहीं जान पड़ा। इसी से मेरे मन में सहसा कुछ सन्देह हुआ। वह बगल में छतरी दबाये, कुरता पहिने, सिर पर टोपी दिये और कन्धे पर अँगौछा डाले हुए था। उम्र लगभग पचास के होगी। धनीराम के घर से बाहर होते देखकर मैंने पूछा, 'तुम्हारा घर कहाँ है ?' उसने कहा, 'मेरा घर शङ्करपुर में है।' मैंने नाम पूछा। उसने कहा, 'हरिदास।' मैंने उसकी जाति पूछी तो कहा—"मैं ग्वाला हूँ।" मैंने कहा—'शायद मैंने तुमको कहीं देखा है ?' उसने कहा—'कहाँ।' मैंने कहा—'यही सात आठ दिन हुए, बाबू साहब के मकान पर कमलपुर में।' यह सुनकर वह कुछ ठिठक गया। इससे मेरा सन्देह और भी बढ़ गया। मैंने पूछा, 'यहाँ क्या करने आये थे ?' 'तो एक काम था।' कहकर आगे बढ़ा। आज फिर यहाँ आते समय देखा है कि वह देवीपुर की ओर जा रहा था। मैंने पूछा—'कहो ग्वालेराम, कहाँ जा रहे हो ?' उसने कहा—'माल-

गुज़ारी वसूल करने हरबोला जाता हूँ।' लौटकर दरयाफ़्त करना होगा, वह देवीपुर गया था या नहीं।"

यह कहकर रौनक़लाल चुप हो रहा। गोपीकान्त ने चिन्तित स्वर में कहा—शङ्करपुर का हरिदास ?

"जी हाँ, उसने तो यही कहा है।"

"उसे तो मैंने यहाँ आते कभी नहीं देखा।"

"हुज़ूर, मैंने तो उसे दो तीन दिन यहाँ देखा है। शायद दीवान जी के पास किसी काम से आया होगा।"

बाबू ने दीवान को बुला भेजा। दीवान ने आकर कहा—"हरिदास दो दिन बराबर यहाँ आया था। किन्तु दफ़्तर में नहीं आया। छोटे बाबू की बैठक में गया था।" यह कहकर दीवान चला गया।

बाबू ने कहा—देखो रौनक़, तुम जाकर चुपचाप ख़बर लो कि हरिदास के साथ धनीराम का कोई सम्बन्ध है या नहीं। और इन्हीं दिनों वह उसके घर आता जाता है या इसके पहले भी आता जाता था।

"बहुत अच्छा, मैं जाते ही इसका पता लगाऊँगा। जैसा होगा हुजूर को ख़बर दूँगा।" कहकर वह बाबू से आज्ञा ले बिदा हुआ।

कचहरी के सामने से निकल छोटे बाबू की बैठक के आगे से होकर जाते समय रौनक़ ने देखा कि बरामदे के नीचे सीढ़ी के पास कितना ही कूड़ा करकट पड़ा है। उसमें

एक पोस्ट कार्ड भी था। रौनक़ ने कुतूहल-वश उसे उठा लिया। देखा कि एक पुराना कार्ड है। मोतीलाल बाबू के नाम से किसी ने भेजा था। इधर उधर किसी को न देख रौनक़ ने झट उसे अपनी पाकेट में रख लिया।

घर जा, भोजन करके कुछ देर विश्राम किया, फिर दिन के पिछले पहर रौनक़ घोड़े पर सवार हो बाग़ीचे में गया। फाटक पार होकर माली के घर के पास जा वह घोड़े से उतर पड़ा। माली ने घोड़े को समीप ही आम के पेड़ के तने में बाँध दिया।

रौनक़ ने कहा—कहो चौधरी, अच्छे हो?

"जी हाँ, आपकी दुआ से।"

"बाबू ने कुछ कहला भेजा है?"

"जी, एक दरबान आकर कह गया है कि देवीपुर के दफ़्तर में कुछ फलों के पौधे भेज देने होंगे।"

"हाँ, इसी लिए मैं आया हूँ। चलो बाग़ में कुछ पौधे ठीक कर आवें।—ओफ़ अभी बड़ी धूप है। तब तक एक चिलम तम्बाकू भर लाओ। धूप घट जाने दो, तब पेड़ देखने चलूँगा।"

माली तम्बाकू भरने गया। इतने में उसका छोटा लड़का रमफलवा नाचते नाचते कहीं से वहाँ आ पहुँचा। रौनक़ की दाढ़ी मूछ मुड़ी देखकर पहले तो उसने नहीं पहचाना। इधर रौनक़ उसका नाम भूल गया था—वह बोला, 'क्यों रे बदमशवा।' तब लड़के ने आकर रौनक़ के साथ जान पहचान

की और दो पैसे पाकर मन की उमङ्ग से नाचते नाचते वहाँ से चला गया।

माली तम्बाकू भरकर ले आया और बोला—मेरा महीना बढ़ाने की बात आपने बाबू से कही थी ?

"नहीं चौधरी, अब भी कुछ कहने का मौक़ा नहीं मिला है। यह जो देवीपुर में बाग़ लगाने की बात ठानी है, उसी अवसर में बाबू से कहूँगा। कोई सन्धि पाये बिना कैसे कहूँ ? मौक़ा मिलने पर क्या मैं छोड़ दूँगा ? देखो, देवीपुर के इस बाग़ के लिए एक अच्छे माली की ज़रूरत है। अगर मैं तुम्हारे लिए बाबू से कहूँ और वे तुम्हें छोड़ दें तो मैं तुमको देवीपुर ले जाकर पूरी तलब दे सकता हूँ। वह बाग़ तो मेरे ही हाथ में रहेगा। बाबू तुमको छोड़ेंगे, ऐसा तो जान नहीं पड़ता।"

माली—क्या जाने।

रौनक़ ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, तुमको वे हर्गिज़ नहीं छोड़ेंगे। तुम्हारे चले जाने पर लीलावती की निगरानी कौन करेगा ? तुम्हारे ऐसा दूसरा विश्वासपात्र आदमी कहाँ पावेंगे ?"

माली ने सन्दिग्ध भाव से रौनक़ की ओर देखकर कहा—बाबू, कौन लीलावती ?

रौनक़ ने मुस्करा कर कहा—भला, भला। इसी तरह सावधान होकर रहना चाहिए। तुम अब तक भी नहीं जानते

कि लीलावती कौन है। देवीपुर के धनीराम ग्वाले की बहू, जिसको तुम लोग बहू जी कहते हो।

माली अचम्भे के साथ बोला—आपको कैसे मालूम हुआ। आपसे किसने कहा है?

"और कौन कहेगा? खुद बाबू साहब ने कहा है। क्या तुम समझते हो कि उनकी कोई बात मुझसे छिपी है? मेरे साथ बाबू का मन मिल गया है। यहाँ तक कि एक साथ बैठकर (रौनक़ ने काल्पनिक गिलास हाथ में ले पीने का इशारा करके) यह भी होता है। नहीं तो इतने लोगों के रहने पर भी उन्होंने मुझी को देवीपुर का ज़िलेदार नियत करके क्यों भेजा? सिर्फ़ धनीराम को क़ब्ज़े में रखने के लिए। ये सब काम विश्वासी लोगों के सिवा और किसी के हाथ में नहीं दिये जा सकते। गुमाश्तों में एक मेरे ऊपर और नौकरों में तुम्हारे ऊपर—इन्हीं दोनों पर उनका पूरा विश्वास है। नहीं तो मुझको बाबू की नौकरी किये अभी हुए कै दिन हैं—तीन महीने भी पूरे नहीं हुए। पन्द्रह रुपये महीने पर भर्ती हुआ था। दो महीने बाद तीस रुपये मासिक पर ज़िलेदारी के पद पर नियुक्त हुआ हूँ। बाबू अच्छी तरह जानते हैं कि कौन विश्वासी और कौन अविश्वासी है।"

माली ने दुःखसूचक स्वर में कहा—विश्वासी नौकर होने का फल आपको तो अच्छा मिला पर मुझको क्या मिला?

"मिलेगा, ज़रूर मिलेगा। तुम्हारी भी तरक्क़ी होगी।

धैर्य धरो। मैं बाबू से कहकर तुम्हारा महीना अवश्य ही बढ़वा दूँगा। तुम जी लगाकर काम तो किये जाओ। और उस मामले में ख़ूब हुशियार रहना। समझ गये न ?

"मुझे यह समझाने की ज़रूरत नहीं।"

"अच्छा यह तो कहो, अब भी लीलावती रोती चिल्लाती है ?"

"हाँ, अब भी उसी तरह रोती है।"

"अगर उसे मौक़ा मिल जाय तो क्या भाग जायगी ?"

"भागेगी नहीं तो क्या करेगी।"

"ताला ख़ूब सावधानी से बन्द करना। वह बुढ़िया शायद तुम्हारी सास है ?"

"जी हाँ।"

"इसी से बाबू ने कहा था, उसे अच्छी तरह समझाकर कह देना कि जब वह नदी से पानी लेने जाय तब पीछे का दरवाज़ा मज़बूती के साथ बन्द करके जाय। यह न समझे कि नदी तो पास ही में है, झटपट पानी ले आती हूँ—ताला न भी बन्द किया तो क्या।"

"यही तो किया जाता है। बाबू का हुक्म ही यही है।"

"यह जानता हूँ, फिर भी सावधान किये देता हूँ। जानते ही हो, लोग कहते हैं 'सावधान रहने से चोरी नहीं होती।' कुंजी तो तुम्हारे ही ज़िम्मे रहती है। जब बुढ़िया को ज़रूरत हो तब वह तुमसे माँग ले और काम हो जाने पर फिर तुमको देदे।

क्योंकि वह तो बुढ़िया स्त्री है, उसकी मति गति का ठिकाना ही क्या ? कहीं कुंजी खो दे तो फिर मुश्किल हो जाय।"

"कुंजी मैं ही अपने पास रखता हूँ।"

"कहाँ रखते हो ? घर में किसी जगह मत रख दिया करो। शायद लड़का उसे खेलने के लिए ले जाकर फेंक दे। उसे अपनी कमर में डोरे से कसकर बाँध रखना।"

"जी हाँ—उसी तरह बाँधे रहता हूँ" कहकर माली ने कमर से कुंजी निकालकर दिखला दी।

रौनक़ ने कहा—कुंजी वैसी तो मज़बूत मालूम होती नहीं, देखूँ भला।

माली ने कुंजी उसके हाथ में देदी। रौनक़ उसे भली भाँति देखकर बोला—नहीं, एकदम मामूली भी नहीं है। अभी इसी से काम लो। फिर बाबू से कहकर एक विलायती ताला भेजवा दूँगा। अगर इस दरमियान में वह राज़ी हो गई तो फिर ताला कुंजी की ज़रूरत नहीं होगी।

माली ने कहा—राज़ी होने के लक्षण दिखाई नहीं देते। एक दिन बाबू से कहती थी—"अगर आप मुझसे कुछ कहेंगे तो मैं छत से कूद कर जान दे दूँगी।"

रौनक़ काँप कर बोला—भगवान् न करें, उसकी ऐसी मति हो। अच्छा, वह बाबू का नाँव गाँव जानती है ?

माली ने हँस कर कहा—नहीं, बाबू ने पहले ही से बुढ़िया को सिखा दिया था कि यदि वह पूछे, यह कौन गाँव है, तो

बीसवाँ परिच्छेद

कालीपूजा के एक दिन पूर्व, दिन के पिछले पहर, रौनक़-लाल पैदल ही बाग़ीचे में आ पहुँचा। उसके हाथ में एक छोटा-सा चमड़े का बैग था। माली अपने घर के सामने बैठा तम्बाकू पी रहा था—रौनक़ को देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला—आइए बाबू।

"वाह, वाह! तम्बाकू तो मौजूद ही है" कह कर रौनक़ चारपाई के ऊपर बैग रख कर बैठ गया।

माली ने कहा—केले की डंडी काटे लाता हूँ।

"नहीं, मेरे पास हुक्का है" कह कर रौनक़ ने बैग से हुक्का निकाला। दो चार कश खींच कर बोला—"हाँ एक बात पूछता हूँ। हरिदास नाम का कोई ग्वाला है, उसे जानते हो?"

माली ने सोच कर कहा—हरिदास? नहीं याद तो नहीं आता। क्यों?

"मैं जब इस बाग़ीचे में अभी आ रहा था तब देखा कि बग़ल में छतरी दबाये, कुरता पहिने और सिर में मुड़ेठा बाँधे एक अधेड़ आदमी आम के पेड़ के नीचे खड़ा होकर बाग़ीचे के मकान की ओर बड़े ग़ौर के साथ देख रहा है। मैंने सोचा, यह कौन आदमी है, मैं इसके पीछे खड़ा हूँ, यह

भी इसे मालूम नहीं। आखिर मैंने उसके आगे जाकर पूछा—"तुम कौन हो?" उसने थम कर कहा—'मेरा नाम हरिदास है।' मैंने कहा—'यहाँ क्या कर रहे हो?' तो 'कुछ नहीं, बागीचे की शोभा देख रहा हूँ।' यह कह कर बड़े वेग से चला गया।"

माली ने कहा—क्या जाने बाबू, कभी किसी को इस तरह ताकते तो नहीं देखा है। कौन जाने वह किस मतलब से आया था।

रौनक़ गम्भीरतापूर्वक बोला—किन्तु मुझे भारी सन्देह होता है। अरे! एक भूल हो गई—उसका घर नहीं पूछा। ख़ैर, तुम इस बात का पता लगाना कि आस पास के किसी गाँव में हरिदास नाम का कोई ग्वाला रहता है या नहीं।

"बहुत अच्छा, पता लगाऊँगा। यह ख़बर तो बाबू साहब को भी देनी चाहिए।"

"अवश्य, किन्तु मैं तो आज बाबू साहब से भेंट कर नहीं सकता। आज मैं अपने एक ख़ास काम से आया हूँ। बड़े तड़के यहाँ से फिर चला जाऊँगा। मैं एक तरह से छिपकर ही आया हूँ। तुम एक काम कर सको तो अच्छा हो। कल सबेरे जाकर बाबू से तुम्हीं कहना, मेरा नाम लेने की ज़रूरत नहीं। तुम इस तरह कहना जैसे तुम्हीं ने देखा है। तुम्हारी इस होशियारी से बाबू ख़ुश भी होंगे। कहना कि बाग़ के भीतर तुम जा रहे थे, उसी समय तुमने देखा। समझ

गये न ? जो मैंने देखा है उसे तुम अपना देखा हुआ कह कर बयान करना।"

माली—अच्छा कह दूँगा, नाम पूछने पर हरिदास बतला-ऊँगा। और क्या कहूँगा ? बग़ल में मुड़ासा—

रौनक़—नहीं नहीं, कहना बग़ल में छतरी थी और सिर पर मुड़ासा, कुरता पहिने हुए था। उमर पचास के क़रीब, नाम हरिदास। स्मरण रहेगा न ?

"हाँ रहेगा।"

तब रौनक़लाल ने माली को उत्तम रूप से तालीम दी। वह गवाहों को अच्छी तालीम देना बहुत दिनों से जानता है।

फिर रौनक़ ने कहा—यह सब तो हो गया। अब यह कहो—जो लाने के लिए मैं कह गया था वह ला रक्खा है न ?

"जी हाँ," कह कर माली ने तीनों बोतलें लाकर सामने रख दीं।

बोतलें देखकर रौनक़ ने पूछा—इनमें एक रुपयावाली कौन है ?

"जिसके मुँह पर सील मुहर की हुई है वही एक रुपये-वाली है। और जो सिर्फ़ काक से बन्द हैं वह आठ आने-वाली हैं।"

रौनक़ ने मुहरवाली बोतल को बैग में रख लिया। बाक़ी दोनों माली को देकर कहा—ये तुम लो।

इस अप्रत्याशित उपहार को पाने की ख़ुशी से माली के, दोनों पंक्तियों के, दाँत बाहर निकल पड़े। बोला—दोनों बोतलें ?

"हाँ, ये दोनों तुम्हारे ही लिए मँगवाई थीं। तुम्हारी स्त्री है, सास है, आख़िर उन्हें भी तो कुछ चाहिए। इसमें लज्जा क्या है ? क्या मैं नहीं जानता कि तुम्हारी जाति में इसका चलन है ? तुम तो माली हो, अच्छे अच्छे कायस्थों को मैंने पीते देखा है। उनके घरों की स्त्रियाँ भी पीती हैं।

माली ने संकुचित होकर कहा—हाँ बाबू, कुछ दिन से इसका व्यवहार बहुत बढ़ गया है। कायस्थ की कौन कहे कितने ही ब्राह्मण भी इससे नहीं बचे हैं।

साँझ हो गई। माली एक चिलम तम्बाकू भरने के लिए भीतर गया। साथ में दोनों बोतलें लेता गया।

रौनक़ ने बाहर बैठे बैठे सुना—"बुढ़िया कह रही है, तुम अकेले दो बोतलें कैसे पिओगे ? एक बोतल तुम लो—एक बोतल हमें दो। हम माँ बेटी दोनों मिल कर पियेंगी।"

दूसरी चिलम तम्बाकू पीकर रौनक़ बिदा हुआ। माली ने कहा—कल आप कब आवेंगे ?

रौनक़—आज रात तो यहीं कमलपुर में ही रहूँगा। कल तड़के उठकर चला जाऊँगा। कल देवीपुर में तीन चार सौ रुपया वसूल होने की बात है। उन रुपयों को ले दोपहर तक ड्योढ़ी पर हाज़िर हो जाऊँगा। काली जी का प्रसाद नहीं छूटने पावेगा।

माली ने कहा—मैं भी जाऊँगा। हर साल जाता हूँ। कल सबेरे ही जाऊँगा। बाबू से हरिदास की बात कहूँगा। इसके बाद प्रसाद लेकर घर आऊँगा।

"ज़रूर जाना। बल्कि रमफलवा को भी साथ लेते जाना। शायद उसने काली जी की पूजा न देखी हो, साथ चला जायगा तो देख आवेगा।" कह कर रौनक़ धीरे धीरे बाग़ीचे से चला गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

कमलपुर में अपने घर जाकर रौनक़लाल ने चिराग़ जलाया। इसके बाद तालाब से पानी लाकर चूल्हा जला रसोई चढ़ा दी। और कुछ नहीं सिर्फ़ पूरियाँ बनेंगी। आज रात में रौनक़ को बहुत काम करना है। बड़ा ही भयङ्कर काम करने की बात मन में ठानी है।

रात के नव बजे बसन्ती ने आकर दर्शन दिया। रौनक़ झट उठ कर बोला—प्यारी बसन्ती आ गई! मैं सोच रहा था, तुमको याद होगी या न होगी।

बसन्ती—मैं वैसी भूलनेवाली नहीं हूँ।

"बैठो बैठो, हवेली के सब लोग अच्छे हैं?"

"हाँ सब लोग अच्छे हैं। छोटे बाबू यहाँ नहीं हैं। आज खा-पीकर कहीं गये हैं।"

"कहाँ गये हैं?"

"घर में किसी से कुछ नहीं कह गये। आज साँझ को मालिक और मालकिन में यही बात हो रही थी। बाबू ने कहा—देखो तो ऐसा भाई, बिछौना कपड़ा और बक्स लेकर कहाँ चला गया, मालूम नहीं। एक बार पूछा तक नहीं। यह भी नहीं कहा कि कितने दिनों में लौटेगा और कहाँ जा रहा है।"

रौनक़—देखता हूँ, भाई भाई में अभी तक मेल नहीं हुआ है।

बसन्ती ने हँसकर कहा—मेल कैसे होगा ? उनकी समझ कुछ और, इनकी समझ कुछ और।

"बड़े लोगों को सभी बातें सोहती हैं। तुम्हारे हमारे घर में ऐसा होता तो न जाने कितनी निन्दा होती"—कह कर रौनक़ पूरियाँ सेकने लगा।

बसन्ती ने मुस्करा कर कहा—उस दिन जो आपने कहा था वह आज होगा न ?

"अवश्य ही होगा। उसी के लिए तो आज आया हूँ।"

"कितनी देर है, आज मैं देर तक नहीं रह सकूँगी।

"कुछ देर नहीं है। बसन्ती, तब तक तुम एक काम करो। इस उसारे में अच्छी तरह झाड़ू देकर पानी छिड़क दो। घर में एक कुशासन है, वह लाकर यहाँ बिछा दो। धूपदानी भी लिये आना, यहाँ से आग ले जाकर धूप जला दो। सोने के कमरे में ताक पर एक टीन के डिब्बे में धूप है, वह ले आना। तब तक मैं रसोई बनाये लेता हूँ। हाँ, सदर दर्वाज़े के किवाड़ बन्द कर आई हो न, जिसमें कोई आ न जाय।"

"साँकल लगा आई हूँ" कह कर बसन्ती रौनक़ का बताया काम करने गई।

इतने में रौनक़ ने कड़ाही नीचे उतार दी। उधर बसन्ती भी सब ठीक ठाक कर आई। वह बोली—सब हो गया।

"बहुत अच्छा। तुम कपड़े बदल, खूब पवित्र होकर, आई हो न ?"

"हाँ, कपड़े बदल कर आई हूँ।"

रौनक़ ने चौके से निकल कर कपड़े बदल एक लाल वस्त्र धारण किया। पञ्चपात्र से थोड़ा गङ्गाजल ले अपने और बसन्ती के शरीर पर छिड़का। फिर कहा—चलो अब दौने की जड़ उखाड़ लावें।

रौनक़ ने हाथ में चिराग़ लिया। आँगन के कोने में दोनों आदमी जा खड़े हुए। बसन्ती ने सिर के बाल खोल कर धरती में माथा लगा आँचल के छोर से बाँध कर और उसे दाँतों से खूब पकड़ कर दौने के पेड़ को जड़ सहित उखाड़ डाला। रौनक़ ने कहा—जय माँ काली ! साधु की बात पूरी करो।

दौने (द्रोणपुष्पी) की जड़ लेकर दोनों फिर उसारे में आये। रौनक़लाल एक छोटा-सा काठ का कैश-बक्स ले आया। वह पीतल का ताला भी लाया। कैश-बक्स खोल कर रुपयों से भरी एक खैरुए की थैली निकाली। थोड़ा-सा लाल डोरा भी लाया।

फिर आसन पर बैठ कर धूपदान में और भी कुछ धूप डाला। आँख मूँद कर सिर ऊपर को उठा छाती के पास दाहिना हाथ रख वह काली का नाम जपने लगा।

कुछ देर तक यों ही करके उसने कैश-बक्स खोल कर सामने रक्खा। फिर उसके भीतर गङ्गाजल छिड़क दिया। थैली

से रुपया उँड़ेल कर बीस बीस रुपये के तीन थाक लगा कर उसने कहा—देखो, बसन्ती ! एक विषम समस्या में पड़ गया हूँ।

"क्या ?"

"ये साठ रुपये हैं। सोचता हूँ, सब रुपये बक्स में रख दूँ या कुछ रुपया रख छोड़ूँ ?"

"क्यों ? जितना अधिक रुपया रखोगे उतना ही अधिक होगा।"

"तुम नहीं समझती हो, यह भौतिक लीला है। कौन जाने, यदि सब रुपये उड़ जायँ तो पीछे पछताने ही से क्या होगा। इससे पचास रुपये बक्स में रक्खे देता हूँ और दस रुपये बाहर ही रखता हूँ। साधु बाबा ने जो कहा है वह अगर सच हुआ तो इन पचास रुपया से दो सौ रुपये हो जायँगे। तब इस दस का भी चालीस कर लिया जायगा। कहो तुम्हारी क्या राय है ?"

"अच्छा, तब फिर दो सौ को बढ़ा कर आठ सौ क्यों नहीं कर लिया जायगा ?"

रौनक़ ने हँस कर कहा—यह होता है कहीं पगली। वह रुपया तो अछूता नहीं रहेगा, उससे काम नहीं चलेगा। फिर नया रुपया देना होगा।

"तो वही करो। दस रुपया रख छोड़ो।"

रौनक़ ने तब पचास रुपया गिन कर बक्स में रक्खा। ताला लगाते समय बसन्ती ने कहा—ठहरिए, ठहरिए।

रौनक़ ने चकित हो आँख उठाकर पूछा—क्यों ?

बसन्ती ने आँचल की गाँठ खोल दो रुपया निकाल कर कहा—मेरे भी ये दो रुपये उसमें रख दीजिए। मेरे आठ रुपये हो जायँगे ?

"अभी यह मैं कैसे कहूँ ? मेरा होगा तो तुम्हारा भी होगा और मेरा रुपया उड़ जायगा तो उसके साथ साथ तेरा भी। फिर पीछे मुझे दोष मत देना, यह मैं अभी कहे देता हूँ।"

"नहीं, मैं दोष नहीं दूँगी"—कह कर बसन्ती ने दोनों रुपये दे दिये।

दोनों रुपये भी बक्स में रख कर रौनक़ ताला बन्द करने लगा तो बसन्ती ने कहा—मैं एक बहुत मज़बूत ताला लाई हूँ। यही इसमें लगाइए।

कुछ काल के लिए रौनक़लाल के मुँह पर उदासी छा गई। किन्तु उसने तुरन्त अपने को सँभाल कर कहा—यही सही, तुम अपना ही ताला दो।

ताला बन्द होने पर बसन्ती ने कुंजी लेकर अपने आँचल के खूँट में बाँध रक्खी। बक्स की जंज़ीर में लाल डोरे से जड़ी को बाँध कर रौनक़ ने कहा—जय माँ काली, साधु की बात पूरी करो।

बसन्ती बोली—रात हुई। अब मैं जाती हूँ।

"जाओ, आधी रात को बक्स के ऊपर हाथ रख कर

१०८ बार मन्त्र जपना होगा। एक महीने बाद चतुर्दशी की रात में फिर आना। बक्स खोल कर देखूँगा, माँ काली क्या करती हैं। कहीं तुम आने की बात न भूल जाना।"

"नहीं भूलूँगी" कहकर बसन्ती उठ चली। रौनक़ दर्वाज़े तक उसके साथ गया, बोला—आज भूत चतुर्दशी की रात है। भूत-प्रेत, डाकिनी, योगिनी सब आज रात में घूमेंगी। सावधानी से जाना।

बसन्ती के चले जाने पर सदर दर्वाज़े को भीतर से बन्द करके रौनक़ आ बैठा। बोतल को खोल कर कुछ शराब पी।

मन में कहने लगा—औरत बड़ी चालाक है, अपना ताला लाई थी। जैसे मैं उस बक्स को खोल ही नहीं सकूँगा। मेरे पास सौ कुंजियों का गुच्छा है। किसी न किसी से तो खुल ही जायगा।

दो एक गिलास और पीते पीते दस बज गये। तब रौनक़ ने भर पेट भोजन किया। एक चिलम तम्बाकू भर कर पीते पीते रौनक़ भाँति भाँति की बातें सोचने लगा। क्रमशः रात गहरी हुई। रौनक़ ने उठ कर उस लाल कपड़े को साड़ी की तरह लपेट कर पहिना। दूसरे सन्दूक़ से लम्बी जटायें निकाल कर माथे पर रख लीं। एक त्रिशूल निकाल कर उसके अगले भाग में, तेल में घोला हुआ, सिन्दूर लगा दिया। इसके बाद आइने के सामने खड़े होकर उसने अपने छद्मरूप की अच्छी तरह जाँच कर ली। अब वह एक गिलास भर मद्य और पी

कर कुंजी के गुच्छे को अपनी कमर में बाँध, सदर फाटक में ताला लगा कर, एक ओर चल दिया।

रास्ते में जाते समय उसने हँसकर मन में कहा—"बसन्ती से कहा था, आज रात में अनेक भूत, प्रेत, डाकिनी, योगिनी निकलेंगी। सो अनेक नहीं तो एक डाकिनी तो निकली ही। माली साला इस समय अपने घरवालों के साथ दारू के नशे में बेहोश पड़ा होगा। नदी-किनारे जाकर देखूँ मेरे खाने के योग्य एक आध लाश मिलती है या नहीं।" यह कह कर वह बड़ी तेज़ी के साथ अन्धकार में गायब हो गया।

बाईसवाँ परिच्छेद

रौनक़ के चले जाने पर सन्ध्या होने के अनन्तर बाग़ीचे में माली ने अपने घर के सामने चारपाई पर बैठ कर रौनक़-लाल की दी हुई एक बोतल खोली। उसकी स्त्री पीतल के कटोरे में कुछ भूनी हुई मछलियाँ और बेसन की फुलौरियाँ दे गई। माली उसके साथ बड़ी लज्जत से बोतल का रस गिलास में ढाल कर थोड़ा थोड़ा पीने लगा। माली की सास उसी राह से जा रही थी। उसे देखकर वह बोला,—माई महल बन्द कर आई हो न ?

बुढ़िया—नहीं, पानी देकर आई हूँ। अभी चूल्हे में आग नहीं दी है।

"तो बहुत विलम्ब नहीं करना। सब काम जल्दी ख़तम कर मकान बन्द करके कुंजी मुझे दे देना।"

बुढ़िया ने धीरे धीरे घर के पिछवाड़े की ओर जाकर पूर्व-वर्णित द्वार का ताला खोला। भीतर जाकर अन्दर से ज़ंजीर लगा कर उस ताले को बन्द कर दिया। वहाँ बड़ा ही अँधेरा था। दीवार को हाथ से टटोल एक ताक़ से दिया-सलाई उतार कर बुढ़िया ने चिराग़ जलाया। उस कोठरी के एक कोने में ऊपर जाने के लिए ज़ीना था। हाथ में चिराग़ लेकर बुढ़िया सीढ़ी पर चढ़ कर ऊपर गई।

ऊपर एक लम्बा, कम चौड़ा, बरामदा था। उसका किनारा लकड़ी की झिलमिली से घिरा था। दूसरी ओर एक दर्वाजा था, जिसमें बाहर से जंजीर लगी थी। जंजीर खोल कर बुढ़िया भीतर गई। अन्दर की जगह कम लम्बी चौड़ी, पर खुली हुई थी। वह ऊँची दीवारों से घिरी थी। उसमें दो तीन कोठरियों के दर्वाज़े थे, जिनमें एक खुला था। भीतर से कुछ रोशनी बाहर आ रही थी। बुढ़िया ने उसी कोठरी में प्रवेश किया।

कोठरी भली भाँति सजी हुई थी। टेबल, कुरसी, चौकी, तसवीर, आइने आदि कितनी ही चीजें उस कोठरी की शोभा बढ़ा रही थीं। एक बहुत बढ़िया हाथीदाँत का पलँग बिछा था तथापि एक दुबली पतली युवती नीचे चटाई पर लेटी थी। टेबल के ऊपर एक बड़ा आइना और अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल की शीशियाँ रक्खी थीं। किन्तु इस रमणी की केश-राशि रुक्ष और बिखरी हुई थी। चटाई के ऊपर अपनी बाईं बाँह को तकिया बना कर लीलावती लेटी हुई थी।

बुढ़िया को आते देखकर लीलावती चकित भाव से उठ बैठी। बत्ती तेज़ कर दी। उस प्रकाश में वह अभागिनी बड़ी ही सुन्दर दीख पड़ी। उम्र उसकी अट्ठारह उन्नीस वर्ष से अधिक न होगी। दोनों आँखें बड़ी और कोमलता से भरी थीं। पर चेहरा अत्यन्त उदास था।

वृद्धा को देखकर लीलावती ने कहा—कहो माई, आज इतनी देर क्यों हुई ?

"कल हमारे यहाँ त्योहार है न, इसी से खाने-पीने की वस्तुएँ बना रही थी।"

"त्यौहार क्या है ?"

"कल दिवाली है।"

"क्या है दिवाली ?"

"हाँ, बढ़िया बढ़िया चीजें बना कर लोग खाते-पीते हैं। रात में सब लोग अपने अपने घरों में बहुत चिराग़ जलाते हैं। लक्ष्मी जी की और काली माई की पूजा होती है। क्या तुम नहीं जानतीं ?"

"अरे ! कल लक्ष्मी-पूजा है ? आज नरकचतुर्दशी है, इसी से इतना अन्धकार है।"

"हाँ बेटी, कल काली-पूजा है—दिवाली है। बाबू साहब के यहाँ पूजा होगी। बकरों का बलिदान होगा। कल वहाँ से प्रसाद आवेगा। तुम लोगी न ?"

"मांस ?"

"हाँ, बकरे का गोश्त।"

"राम राम, मैं मछली मांस नहीं खाती। मैं बेवा हूँ।"

"बेवा होने से क्या हुआ ? तुम तो बाभन बनिये की लडकी नहीं हो। हमारे यहाँ के ग्वालों की स्त्रियाँ विधवा होने पर भी मांस मछली खाती हैं।"

"हम नहीं खाती हैं। खाने से पाप होता है।"

"तुम्हारे यहाँ का रिवाज बड़ा खराब है। हमारे यहाँ

ग्वाले की लड़की बेवा हो जाय तो उसको फिर दूसरे के यहाँ बिठला देते हैं। एक बार की कौन कहे, चार चार पाँच पाँच बार बिठलाई जाती हैं। माँ-बाप अपनी खुशी से बेवा लड़की को दूसरे के यहाँ बिठला देते हैं। कैसा अच्छा व्यवहार है। तुम अगर हमारे देश में होतीं तो तुम्हें भी रँड़ापे का दुःख न भोगना पड़ता। तुम्हारी यह कच्ची उम्र, ऐसा खूबसूरत चेहरा! हाय हाय, देखकर कलेजा फटता है। तुम्हें देखकर कितने ही लोग तुम्हें घर बिठलाने के लिए पागल हो उठते।"

लीलावती काँप कर बोली—नहीं नहीं—छिः छिः, ऐसी बात मत बोलो।

बुढ़िया चुप हो रही। लीलावती ने कहा—माई, इस दिलदारगंज से मेरा देवीपुर कितनी दूर है?

"बहुत दूर। सात आठ कोस।"

"यहाँ के बाबू मुझे और कितने दिन अटका रक्खेंगे? उनसे कहो कि मुझे अब छोड़ दें।"

बुढ़िया—अगर छोड़ देंगे तो तुम कहाँ जाओगी?

"क्यों? मेरे सास-ससुर का घर है—माई-बाप का घर है। कहीं चली जाऊँगी। ईश्वर ने मेरे रहने के लिए बहुत घर दिये हैं।"

"वे लोग क्या तुमको अब अपने घर में रक्खेंगे?"

यह सुनकर लीलावती हताश हो गाल पर हाथ रख कर चुप हो रही। भागने का कोई उपाय न रहने पर भी वह

कभी कभी मन में सोचती थी कि अगर किसी दिन भागने का सुयोग मिल भी जाय तो मैं भाग कर जाऊँगी कहाँ—कौन मुझे आश्रय देगा ? कौन विश्वास करेगा कि मैं निष्कलङ्क हूँ ? आज बुढ़िया के मुँह से भी यह बात सुनकर लीलावती के मन में घोर नैराश्य उत्पन्न हुआ।

कुछ देर बाद वृद्धा बोली—रात हुई, आटा सान लो; मैं चूल्हा जलाये देती हूँ।

लीलावती—नहीं माई—रहने दो। आज चूल्हा जलाने की ज़रूरत नहीं है।

"खाओगी नहीं ?"

"नहीं, आज कुछ न खाऊँगी।"

"कुछ नहीं खाओगी ?"

"कुछ अमरूद रक्खे हैं, वही खा लूँगी।"

वृद्धा ने इस पर अधिक हठ नहीं किया। वह हैरानी से बच गई इससे प्रसन्न ही हुई। घर में जो एक बोतल रक्खी थी उसी में बुढ़िया का जी गड़ा था। इसी से उसने जाने की छुट्टी माँगी।

लीलावती ने कहा—इतनी जल्दी क्या है ? ज़रा और बैठो। तुम्हारा हुक्का क्या हुआ ? तम्बाकू नहीं पिओगी ?

वृद्धा बोली—अच्छा एक चिलम तम्बाकू पी लेती हूँ। तुम अपनी ससुराल की कोई बात कहो।

बुढ़िया तम्बाकू भरने बैठी। लीला ने कहा—मेरी ससुराल की कौन बात सुनोगी ?

"वहाँ तुम्हारे कौन कौन हैं ?"

"मेरे जेठ हैं, जेठानी हैं, और उनके दो लड़के हैं।"

"लड़के कितने बड़े हैं ?"

"एक दस वर्ष का है और दूसरा चार वर्ष का। मैं बेवा हो गई—मेरे कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। इसी से छोटे लड़के को मैं बड़े प्यार से पालने लगी। वह मेरे पास रहता और मेरे ही पास सोता था। मुझे माँ कह कर पुकारता था।" यह कहते कहते लीलावती की आँखों में आँसू भर आये।

बुढ़िया ने कहा—ये लोग तुम्हें कैसे पकड़ लाये ?

"मेरी बुद्धि के दोष से। छोटा लड़का हमेशा मेरे ही पास रहता था, मुझे माँ कहता था—यह बात मेरी जेठानी को बहुत बुरी लगती थी। उसे मैं नहीं सुहाती थी। वह मुझे फूटी आँखों नहीं देखना चाहती थी। मेरे जेठ भी जब तब मुझे कुवाच्य कह बैठते थे। मेरे किसी काम में रत्ती भर भी दोष पा जाते तो मेरी जेठानी और जेठ क्रोध से चिल्ला चिल्ला कर धरती और आसमान को एक कर डालते थे। बहुत दिनों तक इस तरह दुख सहते सहते आखिर मेरा मन ऊब गया। मैंने उनसे कहा—"मैं अपने नैहर जाऊँगी। यहाँ न रहूँगी।" यह सुनकर वे और भी बिगड़ उठे। वे मुझे और भी दुःख देने लगे। जब मैं उन दुखों को किसी तरह नहीं सह सकी

तब सोचा कि यहाँ से भाग कर बाप के घर चली जाऊँ तभी जान बचे; पर मुझे पहुँचा कौन देगा ? गाँव में एक बुढ़िया थी, वह मेरी ही जाति की थी। उसी के साथ मैं चुपचाप सलाह करने लगी। एक दिन साँझ को मैं उसे साथ ले घर से निकल पड़ी। पर वह विश्वासघात करके मुझे यहाँ ले आई। जिस दुःख से छूटने के लिए मैं भागी थी उसका दस-गुना दुःख यहाँ आकर भोगना पड़ा। भगवान् ने अब तक मेरा धर्म बचाया है यही कुशल है। अब यहाँ से किसी तरह छुटकारा पाऊँ तभी प्राण बचें।"

लीलावती की बातें जिस समय ख़तम हुई उस समय उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली। उसकी यह दशा देखकर बुढ़िया बोली—"बेटी, रो मत, रो मत। काली माई तुम्हारा भला करेंगी।" इसके बाद बुढ़िया हुक्का पीना बन्द करके घर से बाहर हो गई। बाहर से दर्वाजे में ताला बन्द करके उसे दो तीन बार अच्छी तरह झटका देकर देख लिया। घर जाकर कुंजी दामाद के हाथ में दे आप रसोई बनाने चली गई।

वृद्धा के चले जाने पर लीलावती बड़ी देर तक गाल पर हाथ रक्खे बैठी रही। बुढ़िया की अन्तिम बात—"काली माई तुम्हारा भला करेंगी" उसके मन में बारंबार लहराने लगी। खिड़की खोल कर देखा तो बाहर घोर अन्धकार था। जङ्गल में लगातार झिल्लियों का शब्द हो रहा था। पेड़ों पर

असंख्य जुगनू जगमगा रहे थे। खिड़की के पास चिन्तित हृदय से लीलावती बड़ी देर तक खड़ी रही। वह बेचारी उस अन्धकार की ओर आँसू भरी दृष्टि से देखती हुई बड़े ही आर्त स्वर से कहने लगी—माँ दुर्गा काली! मैंने बचपन से तुम्हारी कितनी सेवा-भक्ति की है, कितना ही तुम्हारा भजन किया है। कल तुम्हारी पूजा होगी। इसी से आज रात में तुम अन्धकार का रूप धारण कर सारे संसार में छा गई हो। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया—तब क्यों इतना कष्ट पा रही हूँ? माता! असमय में ही तुम मेरे स्वामी को हर ले गई—जहाँ आश्रय लिया था वहाँ से भी मुझे निकाल बाहर किया। माँ, अगर मैं अपराधिनी हूँ, मुझसे कोई अपराध हुआ है, तो क्षमा करो। इस विपद् से मेरा उद्धार करो। ऐसा उपाय करो जिससे मेरी धर्मरक्षा हो। यदि तुम्हें यह भी मंजूर न हो तो अपनी डाकिनी योगिनी से कह दो कि आज रात में ही वे यहाँ आकर मुझे मार डालें। ऐसा होने से भी मेरा उद्धार हो जायगा। माँ, भद्रकाली! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

इस तरह प्रार्थना करने के अनन्तर अभागिनी के हृदय का बोझ बहुत कुछ हलका हुआ। तब वह खिड़की बन्द करके फिर चटाई पर सो रही। चिराग़ टिमटिमा रहा था—किवाड़ खुला ही रहा। आँख मूँद कर लीलावती मन में कहने लगी—"हे माँ काली! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।"

इसी तरह मन ही मन प्रार्थना करते करते वह निद्रा से अभिभूत हो सो गई।

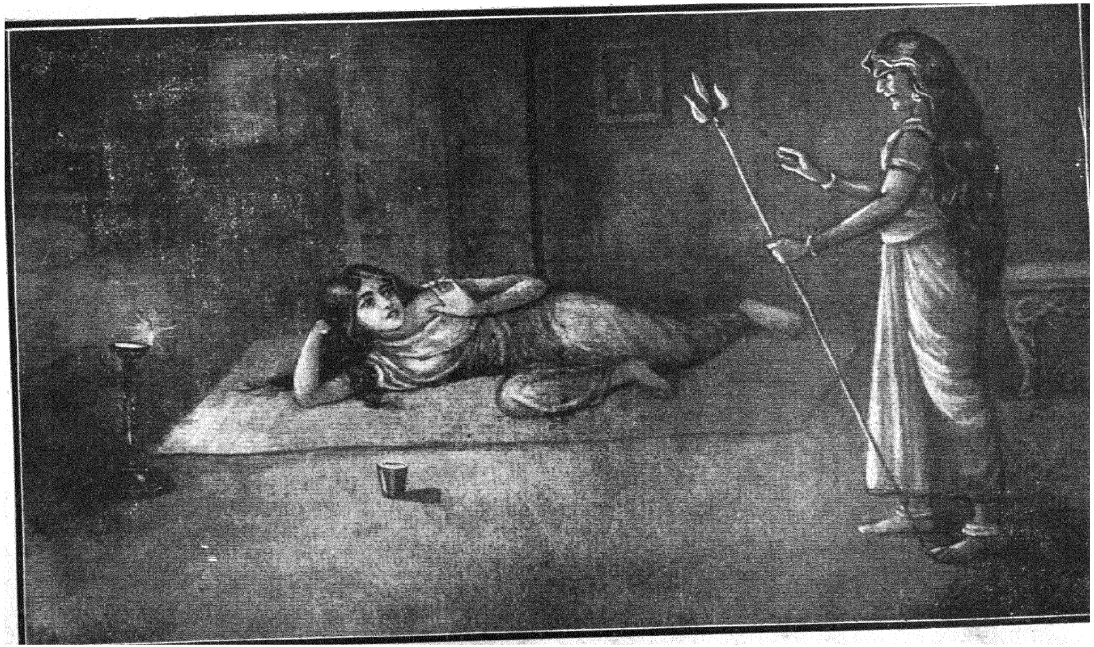
❀ ❀ ❀ ❀ ❀

आधी रात का समय था। चारों ओर घोर अन्धकार छाया था। बिलकुल सन्नाटा था। लीलावती उसी निद्रित अवस्था में पड़ी थी। एकाएक उसके मस्तक में किसी कठिन पदार्थ का स्पर्श होने से उसकी नींद टूट गई। आँख खोल कर देखा तो दिये की रोशनी खूब बढ़ी हुई है। लाल साड़ी पहने काले रंग की एक स्त्री सामने खड़ी है। उसके हाथ में त्रिशूल मन्द मन्द हिल रहा है और उसका अगला हिस्सा लोहू से लिप्त है। इस दृश्य को क्षणमात्र देखकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। डर से उसका सारा शरीर सर्द हो गया। वह वास्तव में जागती है या सपने में कोई भयङ्कर दृश्य देख रही है—इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकी।

कुछ देर बाद मानों किसी ने अस्वाभाविक विकृत कण्ठ से कहा—कुछ डर नहीं।

यह सुन कर लीलावती ने फिर आँखें खोलीं। छद्मवेशी रौनक़लाल तब धीरे धीरे सिर हिला कर बोला—डरो मत,—मैं माँ काली की डाकिनी हूँ। डरो मत।

तब लीलावती को सोने के पहले की प्रार्थना याद आई। उसे स्मरण हुआ, उसने कहा था—'माँ, मेरा उद्धार करो, या अपनी डाकिनी से कहो, आकर मुझे मार डाले।' अब लीलावती



लाल साड़ी पहने काले रङ्ग की एक स्त्री सामने खड़ी है।—पृ० २४०

काँपते काँपते उठ बैठी। वह दोनों हाथ जोड़ काँपते हुए स्वर से बोली—माँ मुझे मार डालो।

यह सुनकर डाकिनी खिलखिला कर हँस उठी। बोली—डरो मत, मैं तुमको नहीं मारूँगी। कल मेरी स्वामिनी की पूजा है। आज रात में वे कैलास से उतर कर धरती पर आई हैं। माँ ने मुझे तुम्हारी खबर लेने को भेजा है—तू रोती क्यों है? तुम्हारे रोने से माँ का आसन डोल गया है। कहो तुम क्यों रोती हो?

उसी तरह हाथ जोड़े लीलावती कहने लगी—माँ, मैं एक ग़रीब किसान के घर की विधवा स्त्री हूँ। मुझको बाबू ने पकड़ कर इस मकान में बन्द कर रक्खा है।

"किसने बन्द कर रक्खा है?"

"दिलदारगंज के बड़े बाबू ने।"

"दिलदारगंज का बाबू तो काली का बड़ा भक्त है। वह प्रतिवर्ष बहुत बलिदान देकर और बहुत मदिरा चढ़ाकर काली जी की पूजा करता है। मैं तुझको छुड़ा सकती हूँ किन्तु एक प्रतिज्ञा कर।"

छूटने की आशा से लीलावती का भय दूर हुआ। वह हाथ जोड़ कर बोली—माँ, क्या प्रतिज्ञा करनी होगी?

"तू जब तक जीती रहे तब तक किसी से दिलदारगंज के बाबू की चर्चा न करना।"

लीलावती—प्रतिज्ञा करती हूँ—किसी के आगे उनका नाम न लूँगी।

"यदि किसी को उनका नाम बतावेगी तो मैं आकर यह त्रिशूल तेरी छाती में भोंक दूँगी। ख़बरदार।"

"नहीं माँ, प्राण रहते मैं किसी को बाबू का नाम नहीं बताऊँगी। मुझे इस क़ैद से छुड़ाओ।"

"तो उठ, मेरे साथ आ।" यह कह कर रौनक़ घर से निकला। थरथराते हुए पैरों से लीलावती भी उसके पीछे पीछे चली।

झिलमिली से बन्द बरामदे में आकर रौनक़ ने कहा—"ठहर, मैं चिराग़ लिये आती हूँ।" वह लौट कर घर में गया और चिराग़ हाथ में ले अपने कपड़े से मोतीलाल के नाम का वह कार्ड, जो उसने मोतीलाल की बैठक के पास से आते समय कूड़े-करकट में से उठा कर जेब में रख लिया था, निकाल कर लीलावती की चटाई के ऊपर रख दिया।

घर के बाहर आकर रौनक़ ने चिराग़ फेंक दिया। उसने त्रिशूल का पिछला हिस्सा लीलावती के हाथ में देकर कहा—इसे ख़ूब मज़बूती से पकड़ कर मेरे पीछे पीछे चली आ।

अब दोनों व्यक्ति उस घने अन्धकार में अदृश्य हो गये। बाहर की खुली हवा में आकर लीलावती ने मानों नया जीवन पाया। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में मानो नये बल का सञ्चार हुआ। त्रिशूल को मुट्ठी में दबाये, डाकिनी के पीछे पीछे, वह तीव्र गति

से चल कर बहुत दूर निकल आई। यद्यपि मार्ग के परिश्रम से उसके सर्वाङ्ग से पसीना चूने लगा फिर भी उसे कुछ थकावट नहीं मालूम हुई।

इस प्रकार कोई दो घंटे चलकर दोनों सड़क के किनारे एक मन्दिर के पास आ पहुँचे। डाकिनी ने कहा—जानती है यह कामेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है ?

लीलावती—शिवनगर के कामेश्वरनाथ ?

"हाँ, शिवनगर गाँव यहाँ से नज़दीक ही है। अभी अँधेरे में दिखाई नहीं देता। कभी इस मन्दिर में आई थी ?"

"हाँ, कई बार इनका दर्शन-पूजन कर गई हूँ। यहाँ से मेरा गाँव दो कोस है।"

डाकिनी ने कहा—ले, अब मैं तेरे साथ नहीं रह सकती। अब रात बहुत नहीं है। सूर्योदय के पहले ही माँ सिंहासन पर बैठेंगी। हम सब डाकिनी योगिनी मिल कर माँ का सिंगार करेंगी। मैं अब जाती हूँ। तू यही सीधी सड़क पकड़ कर अपने घर चली जा। थोड़ी ही दूर पर देवीपुर गाँव मिलेगा। कुछ रात रहते ही तू वहाँ पहुँच जायगी।

तब लीलावती ने धरती में घुटने टेक डाकिनी के पैर छूकर प्रणाम किया और कहा—माँ, अगर वे मुझे अपने घर में न रहने दें तो मैं क्या करूँगी ? कहाँ जाऊँगी ?

रौनक़ ने कहा—उन्होंने लोगों से कहा है कि तू बाप के घर गई है। किसी कलङ्क का डर नहीं। फिर भी अगर वे

तुझे ग्रहण न करें तो तू कहना—मेरे स्वामी की सम्पत्ति बाँट कर आधी मुझे दे दो। मैं काशीवास करूँगी।

"अगर वे इतने पर भी न मानें, मुझे घर में न रहने दें तो ?"

"नहीं रहने दें तो तू गाँव के ज़िलेदार के पास जाकर नालिश करना। रौनक़लाल ज़िलेदार बड़ा धर्मात्मा है। वह काली माई का प्रधान भक्त है। वह तेरे जेठ को बुलाकर जूते से सीधा कर देगा। अब तू जा।"

लीलावती उसे प्रणाम करके देवीपुर की ओर चली और रौनक़ वहीं कुछ देर सुस्ताने लगा। उसने मन में कहा—काम तो कुछ बुरा नहीं किया है। अब रात अधिक नहीं है। ढाई बजा होगा। दो घंटे में कमलपुर पहुँचना चाहिए, नहीं तो गाँव के लोग सबेरे मेरा यह डाकिनी-स्वरूप देखकर मूर्च्छित हो जायँगे। इसलिए कुछ रात रहते ही वहाँ पहुँचना चाहिए। कुछ डग बढ़ा कर चलने से अँधेरे अँधेरे ही घर पहुँच जाऊँगा—कह कर वह बड़ी तेज़ी से कमलपुर की ओर लौट चला।

तेईसवाँ परिच्छेद

रात बीत गई। सबेरा हुआ। "बहुत खाने पीने" के प्रभाव से गोकुल माली के घर में सबके सब सोये हुए हैं, अभी तक किसी की नींद नहीं टूटी है। सिर्फ़ रमफलवा उठकर बाग़ में जा बाँस की लग्गी हाथ में ले सबेरे सबेरे कुछ खाने के लिए मीठे फल ढूँढ़ रहा है।

धीरे धीरे धूप निकल आई। दिन बहुत चढ़ आया। तब माली के घर में लोगों का एक-आध शब्द बाहर से सुन पड़ने लगा। माली की स्त्री ने उठ कर दो चिलम तम्बाकू भर कर एक स्वामी को—और एक माँ को दी। बुढ़िया ने अपनी चटाई के ऊपर बैठ, दो एक बार जम्हाई लेकर, दोनों हाथों से आँखें मलीं, फिर दो एक बार खाँस कर हुक्का पीने लगी।

माली ने कहा—माई, आज बाबू साहब के घर काली-पूजा है। आज सबेरे ही स्नान करके पानी वानी पीकर मैं वहाँ जाऊँगा।

अमरूद चबाता उछलता-कूदता हुआ रमफलवा आकर बोला—हम भी जायँगे।

माली—तू जायगा। तुझको गोदी में कौन ले जायगा?

एक चक्कर लगा कर रमफलवा बोला—तुम्हारे कन्धे पर चढ़कर चलूँगा।

बुढ़िया ने कहा—अच्छा है ले जाना। बच्चा है, तमाशा देख आवेगा।

माली ने कहा—तो तुम भी न चलो। रमफलवा को गोदी में ले जाना होगा।

हम तुम दोनों चले चलें तो उसकी देख-भाल कौन करेगा? बाबू नाराज़ हो जायँ तो?

"यह बात ठीक है"—कहकर माली चुपचाप हुक्का पीने लगा। आख़िर यह बात पक्की हुई कि पहले बुढ़िया रमफलवा को ले जाकर पूजा देख आवे, फिर दोपहर को उसके लौट आने पर गोकुल जायगा।

पूजा देखने जायगा, यह जानकर रमफलवा की माँ बेटे को सजाने लगी। उसका अँगरखा खोल डाला। छटाँक भर सरसों का तेल उसके धूल भरे माथे में डाल कर जब वह दोनों हाथों से ज़ोर से मलने लगी तब तो रमफलवा कुछ न बोला। पर जब नहाने की बारी आई तब उसने रो रोकर सेरों आँसू बहा दिये। उसने उम्र भर में सिर्फ़ दो बार स्नान किया है। आँगन के कोने में एक घड़ा पानी रक्खा था। माता उसका हाथ पकड़, ज़ोर से खींच कर, जब घड़े के पास ले गई तब वह चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। आँखों में आँसू भर कर बार बार गिड़गिड़ा कर कहने लगा, 'मैं पूजा देखने नहीं जाऊँगा।' उसने अपना हाथ छुड़ा कर भागने की बड़ी चेष्टा की किन्तु उसकी इस छटपटाहट का कोई फल नहीं हुआ। घड़े का ठंडा जल लोटे में ढाल ढाल

कर माँ उसके सिर पर डालने लगी। उसे अच्छी तरह स्नान करा धो-पोंछ कर माता ने कंघी से उसके बाल सँवारे। फिर आँखों में काजल डालकर हलदी के रङ्ग में रँगी हुई पीली धोती और छींट का कुरता पहना दिया। अब रमफलवा के मुँह में फिर हँसी दिखाई देने लगी।

बुढ़िया ने भी हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, बेसन की दो चार बासी फुलौरी खाकर पानी पिया। अब उसने कहा—वहाँ पानी देकर चूल्हा जला आऊँ, फिर पूजा देखने जाऊँगी।

बुढ़िया अपने दामाद से कुञ्जी लेकर धीरे धीरे वाटिका-भवन के पीछे की ओर गई। वहाँ जाकर देखा तो दरवाज़ा खुला पड़ा है। यह देखते ही उसके सिर में चक्कर आ गया। उसके हाथ-पैर थर थर काँपने लगे। सोचा, अरे दादा! यह क्या हुआ! दरवाज़ा खुला क्यों है? लीलावती है या नहीं?

हाँफती हुई वह बड़े वेग से ऊपर गई। देखा तो कहीं कोई नहीं है।

हर एक कोठरी में दो तीन बार खोज कर देखा, कहीं कोई नहीं। "लीलावती"—"लीलावती" कहकर वह बार बार चिल्लाने लगी, पर कहीं से कुछ उत्तर नहीं मिला। तब बुढ़िया ने हताश हो रोते रोते आकर दामाद को यह खबर दी।

यह सुनकर माली मानो आसमान से गिरा। उसकी आँखें धँस गईं—गला बैठ गया। टूटे स्वर से बोला—चलो मैं भी देखूँ।

धीरे धीरे दोनों मकान के पीछे पहुँचे। माली ने खड़े होकर खुले द्वार की ओर देखा। क्रम क्रम से उसके मुँह का भाव बदलने लगा। उसके दोनों नेत्र लाल हो गये। खूब ज़ोर से दाँत पीस कर वह बुढ़िया का झोंटा पकड़ बोला—हरामज़ादी, तेरी ही ग़फ़लत से यह सर्वनाश हुआ है।

बुढ़िया इस आकस्मिक अपमान से आगबबूला होकर बोली—क्यों रे मूँझौंसे, मेरा क्या कसूर है? पाजी, बदमाश, छोड़, मेरी चोटी छोड़।

"तेरा कसूर नहीं है? ज़रूर तेरा कसूर है। कल शराब पीकर मस्त हो गई। तूने ताला बन्द नहीं किया। यह देख, एक कड़ी में ताला लगा है। द्वार खुला पाकर लीलावती भाग गई है।"

वृद्धा ने देखा कि ताला एक कड़ी में लटका हुआ झूल रहा है। वह बोली—कभी नहीं, मैं दोनों कड़ियों में ताला बन्द करके गई थी। उस समय तो मैंने शराब हाथ से छूई तक न थी। तुम्हीं शराब पिये बेहोश पड़े थे—कुञ्जी कहीं फेंक दी होगी। किसी ने लेकर ताला खोला होगा।

माली ने चोटी छोड़ दी। तब दोनों ऊपर गये। लीलावती के शयनगृह में जाकर माली ने देखा कि चटाई पर एक पोस्ट-कार्ड पड़ा है। उठाकर बोला—यह क्या? यह चिट्ठी कहाँ से आई? यह तो डाक से आई हुई जान पड़ती है।

बुढ़िया—मैं नहीं जानती। यह चिट्ठी तो मैंने यहाँ कभी नहीं देखी।

माली—लीलावती को शायद किसी ने चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी के पढ़ाने से पता लगेगा कि कौन उसे ले गया है।

बुढ़िया—धत नासमझ! लीलावती को चिट्ठी कौन दे जायगा? मालूम होता है, जो उसको लेने आया था वही फेंक गया है।

माली ने पोस्टकार्ट को लेकर बड़े यत्न से अपनी धोती के खूँट में बाँध रक्खा। बोला—बड़ा ही अनर्थ हुआ। इतने दिन से यहाँ नौकरी करके किसी तरह गुज़र कर रहा था। अब नौकरी गई। अब क्या बाबू मुझको रक्खेंगे? अभी मार पीट कर निकाल देंगे। इस बुढ़ापे में अब बाल-बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगा?

लम्बी साँस लेकर दोनों कुछ देर तक चुप रहे। फिर बुढ़िया बोली—अगर भाग कर गई है तो अब भी बहुत दूर न गई होगी। जरूर ही कहीं आस पास छिपी होगी। एक बार खोजो तो।

दोनों फिर बाहर आये। ताला बन्द करके माली उदास मुँह से बोला—लो जाता हूँ, खोजकर देखता हूँ। शायद कहीं मिल जाय।

दोपहर ढलने पर माली ने लौट कर कहा—उसका कहीं पता नहीं लगा। अब बाबू को ख़बर देने जाता हूँ।

बुढ़िया—क्या कहोगे?

कहूँगा—"कोई दुष्ट दूसरी चाबी से ताला खोलकर लीलावती को भगा ले गया।"

वृद्धा—कैसी तुम्हारी बुद्धि है! यह बात कहने से क्या बाबू विश्वास करेंगे? वे कहेंगे कि ज़रूर तुम लोग ताला बन्द करना भूल गये।

"तो क्या कहूँ?"

"कुछ लाकर ताले को तोड़ डालो। वह टूटा ताला हाथ में लिये जाना। कहना, कल रात में कोई ताला तोड़कर लीलावती को भगा ले गया।"

माली—"यही सलाह ठीक है।" उसने अपने घर से लोहे के दो काँटे खोज निकाले। उन्हीं से बड़ी देर तक पीटते रहने पर ताला टूटा। इसके बाद खा पीकर जब पहर दिन बाक़ी रहा तब वह रोती सूरत से बाबू साहब के दरबार में हाज़िर हुआ।

तब दोपहर की पूजा समाप्त हो गई थी। ब्राह्मण-भोजन भी हो गया था। कङ्गालों को भोजन दिया जा रहा था। नौकर उन्हें परोस कर खिला रहे थे। रौनक़ एक ओर खड़ा होकर परोसनेवालों की देख-रेख कर रहा था और कङ्गालों की पत्तल पर जिस चीज़ की कमी देखता था, वह उन्हें दिलवा रहा था। उसी के पास माली जा खड़ा हुआ।

रौनक़ ने कहा—क्यों जी गोकुल, आज तुम इतनी देर कर क्यों आये?

गोकुल माली ने धीरे से कहा—क्या कहूँ बाबू, सर्वनाश हो गया है!

बड़े आश्चर्य का भाव दिखाकर रौनक़ ने कहा—क्यों क्या हुआ है, रमफलवा तो अच्छा है?

"हाँ, वह तो अच्छा है पर लीलावती भाग गई।"

"अयँ—यह क्या कहते हो—कैसे भाग गई?"

"कल रात को कोई ताला तोड़कर उसे निकाल ले गया।"

रौनक़—ओफ़! बड़ा अनर्थ हुआ! अब क्या उपाय है? किसने ऐसा काम किया?

"बाबू क्या कहूँ, यह तो मैं नहीं जानता। लीलावती के कमरे में यह चिट्ठी पड़ी मिली है।" यह कहकर माली ने चिट्ठी दी। रौनक़ ने उसे उलट पलट कर देख माली को लौटा दिया। बोला, चश्मा नहीं है। नहीं पढ़ सका। किसने यह काम किया, यही सोच रहा हूँ। अच्छा वही आदमी, जिसका नाम हरिदास है—जो मकान की ओर टकटकी लगा कर देख रहा था—उसी ने तो नहीं?"

"क्या मालूम। अब मालिक को ख़बर देनी होगी।"

"हाँ, ख़बर देना तो ज़रूरी है। अगर तुमसे बाबू पूछें कि तुम्हारा किसी के ऊपर सन्देह है या नहीं, तो तुम साफ़ साफ़ कह देना कि हुज़ूर कल शाम को एक अधेड़ आदमी कुरता पहिरे, साफ़ा बाँधे, बग़ल में छतरी दबाये बाग़ में खड़ा होकर एक नज़र से मकान की ओर देख रहा था। नाम

पूछने पर हरिदास बताया। उसी पर मुझे सन्देह होता है। जो तुम यह न कहोगे तो तुम्हीं पर बाबू के मन में सन्देह होगा कि माली ने घूस लेकर लीलावती को भगा दिया है।"

"मैं भगाता तो ताला क्यों तोड़ता ? कुञ्जी तो मेरे ही पास थी।" यह कहकर माली ने टूटा ताला निकाल कर दिखाया।

माली की बुद्धि देखकर रौनक़ मन ही मन हँसा। फिर बोला—ठीक कहते हो, अच्छा तो मैं जाकर देखूँ कि बाबू कहाँ क्या करते हैं, इसके बाद तुमको ले जाऊँगा। बिना एकान्त के यह बात कही नहीं जायगी। तुम यहीं खड़े रहो।

माली—बाबू, ग़रीब की नौकरी तो रहेगी ?

"नौकरी ? ऐसी हालत में नौकरी रहना मुश्किल है। मैं उनसे कहूँगा—तुम्हारे लिए मैं पूरी कोशिश करूँगा। तुम यहीं हाज़िर रहो। मैं बाबू को देख आता हूँ।"

कुछ देर बाद रौनक़ लौट कर बोला—आओ। अच्छी तरह याद रखना—हरिदास, साफ़ा, छतरी। उसका मकान पूछना भूल गये। वह पोस्टकार्ड भी बाबू को देना, आओ।

कमरे की बग़लवाली एक छोटी कोठरी में बाबू बैठे थे। रौनक़ ने माली को वहाँ तक पहुँचा दिया और आप कमरे के बाहर बरामदे में जा बैठा।

दस मिनट के बाद माली बाहर आया। रौनक़ ने पूछा—कहो, क्या हुआ ?

"सब बात बाबू से कह दी।"

"बाबू तुम पर बहुत ख़फ़ा तो नहीं हुए ?"

"जी नहीं। कहने लगे—तेरी ही ग़फ़लत से यह काम हुआ है। अच्छा अभी जा, फिर देखा जायगा।"

"अच्छा तुम जाकर प्रसाद पाओ। बाबू साहब से कह सुनकर ऐसा बन्दोबस्त कर दूँगा जिसमें तुम्हारी नौकरी बनी रहेगी।"

माली चला गया। तब रौनक़ बाबू साहब के पास जा, सिर झुका कर, खड़ा हुआ। उसे देख बाबू ने कहा—रौनक़, किवाड़ बन्द कर दो।

रौनक़ ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। बाबू साहब के मुँह की ओर ध्यान से देखा तो डर से उसका मुँह सूख गया था। गोपीकान्त बोले—तुम्हारे कहने के अनुसार मैंने माली के सामने चिन्ता का भाव प्रकट नहीं किया। किन्तु मेरा जी घबरा रहा है। समझ में नहीं आता, क्या करूँ।

रौनक़ ने मुँह उदास करके कहा—घबराने की तो बात ही है। अगर थाने में जाय तो संगीन मुक़दमा खड़ा हो। एकबारगी दौरे का मुक़दमा।

"क्या थाने में जायगा ?"

"जी हुज़ूर—कौन कौन इस मामले के भीतर हैं—कौन उसे भगा ले गया है, यह सब जाने बिना कुछ कहना कठिन है।"

"यह मैं जानता हूँ। हरिदास, और मेरा छोटा भाई।"

"अयँ! आपके भाई? छोटे बाबू? भला ऐसा भी कहीं हो सकता है? संभव नहीं।"

"क्यों नहीं हो सकता! पक्का निश्चय है। लीला के कमरे में मोतीलाल के नाम का एक काडे पड़ा मिला है और कल शाम को माली ने देखा था कि बाग़ में हरिदास खड़ा खड़ा लीलावती के मकान की ओर टकटकी बाँधे देख रहा था।" यह कह कर बाबू साहब ने रौनक़ के हाथ में पोस्टकार्ड दिया।

रौनक़लाल ने उसे देख भाल कर फिर बाबू को दे दिया। उसने कहा—क्या इसी मतलब से हरिदास दौड़ दौड़ कर छोटे बाबू के पास आता था? अब समझ में आ गया।

बाबू साहब—हाँ जी, यह सही है। इसी से कल मोती भी अपने कपड़े, बिछौना और पेटी लेकर कहीं चला गया है। किसी से कुछ कहा भी नहीं।

कुछ देर तक चुप रह कर रौनक़ बोला—भाई होकर भी क्या भाई के हाथ में हथकड़ी डलवावेंगे? थाने में जाकर उसकी तरफ़ से गवाही देंगे?

"रौनक़, तुम उसे नहीं जानते। ऐसा नालायक़ लड़का मेरे घर में कोई पैदा नहीं हुआ। वह क्या नहीं कर सकता है? जो न करे वही थोड़ा है। यदि वह आप थाने में न जायगा तो लीलावती के किसी रिश्तेदार को थाने में दरख्वास्त देने के लिए भेज देगा। अब क्या करना चाहिए?"

रौनक़ उदास मुँह करके सोचन लगा। फिर बोला—यह

नहीं जान पड़ता कि आज थाने में दरख़्वास्त दी होगी, अगर दी होती तो अब तक तहक़ीक़ात करने के लिए पुलिस आ गई होती। और यह भी हो सकता है कि थाने में दारोग़ा न रहा हो, जमादार ने इज़हार लिख लिया होगा। दारोग़ा के आने पर कार्रवाई शुरू होगी।

"अब क्या उपाय करना होगा?"

रौनक़ ने सोच-विचार कर कहा—अगर दास से उपाय पूछा जाता है तो मेरी क्षुद्र बुद्धि में जो सूझ पड़ा है वह निवेदन करता हूँ। हुज़ूर को आज रात में ही यह स्थान छोड़ देना उचित है। कदाचित् कल सबेरे ही दलबल के साथ दारोग़ा यहाँ आकर तहक़ीक़ात करने लगे। आप इज्ज़त-दार रईस ठहरे। अगर वह कोई ऊँच-नीच बात कह दे तो उसी में सब मान-महत्त्व चला जायगा। भले आदमियों के लिए अपमान मरण से भी बढ़कर होता है। इसलिए आज रात में ही आप कहीं चल दें और मुझे कुछ रुपया देते जायँ। मैं कल सबेरे ही थाने में जाकर दारोग़ा को ठीक कर लूँगा। संसार रुपये के वश में है। पुलिस की तो कोई बात ही नहीं। आप यहाँ यह बात प्रकट कर दें कि आप कलकत्ते जा रहे हैं। स्टेशन में जाकर काशी का एक सेकेण्ड क्लास का टिकट ले लीजिए। वहाँ से हरद्वार या मंसूरी का टिकट ले लीजिएगा, किन्तु रास्ते में कहीं एक जगह उतर जाइएगा, स्टेशन में टिकट न दीजिएगा। कहिएगा, मैं यहाँ कुछ देर आराम करके दूसरी

ट्रेन से जाऊँगा। इसके बाद दूसरी ट्रेन से आप फिर चल दीजिएगा। मैं यहाँ सब ठीक ठाक कर लूँगा। जब आग बुझ जायगी तब आप आजाइएगा। यहाँ जो कुछ करना होगा वह सब मैं कर लूँगा। किसी को मालूम न होने दूँगा।

बाबू ने कहा—देखो एक बात है। वह स्त्री तो यही जानती है कि दिलदारगञ्ज के बड़े बाबू ने उसे बागीचेवाले मकान में क़ैद कर रक्खा था।

रौनक़—जी हाँ, किन्तु हरिदास और छोटे बाबू—

"ठीक कहते हो। यह बात मेरे ध्यान में नहीं आई थी। इस समय मेरा होश-हवास सब हवा खाने चला गया है। तुम जो कहोगे वही करूँगा। आज रात को ही चल दूँगा। अभी तुमको कितना रुपया चाहिए?"

रौनक़—संगीन मुक़द्दमा है। बड़ा आदमी मुद्दाअलेह है। पुलिस एक बारगी पैर फैला बैठेगी। पाँच छः सौ रुपया देते जाइए।

उस कोठरी में लोहे का एक सन्दूक़ था। बाबू झट उठ कर कुञ्जी से सन्दूक़ खोल नोट निकाल लाये। दस दस रुपये के सौ नोट गिन कर रौनक़ के हाथ में दे करके बोले—यह हज़ार रुपया लो। जितना दरकार हो, खर्च करना। मुझे इस बार बचाओ। तुम मेरे नौकर नहीं—सहोदर भाई हो।

"मैं हुज़ूर का दासानुदास हूँ। हुज़ूर का नमक खाता हूँ। हुज़ूर के लिए जान हाज़िर है। प्राण रहते नमकहरामी

नहीं करूँगा।" यह कहकर रौनक़ ने बाबू के दोनों पैर पकड़ लिये।

सूर्यास्त होने में विलम्ब न था। बाबू ने रौनक़ का हाथ पकड़ कोठरी से बाहर लाकर कहा—मैं जहाँ रहूँगा वहाँ से तुमको चिट्ठी लिखूँगा। अगर और भी रुपये-पैसे की ज़रूरत हो तो मुझे लिखना, मैं बन्दोबस्त कर दूँगा। अगर मैं इस दफ़े बच गया तो तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगा। इसका पुरस्कार भी तुम्हें मिलेगा।

रौनक़—हुज़ूर का स्नेह ही मेरे लिए पुरस्कार है। मैं अन्य पुरस्कार को तुच्छ समझता हूँ।

रौनक़लाल को बिदा करके बाबू अपनी यात्रा की तैयारी करने लगे।

चौबीसवाँ परिच्छेद

आजमगढ़ से पाँच छः कोस दूर मदनपुर नाम का एक गाँव है। हमारे पूर्व-परिचित डिपुटी मैजिस्ट्रेटी चाहनेवाले नारायणप्रसाद के पिता बाबू बलदेवनारायण इस गाँव के ज़मींदार हैं। बलदेव बाबू के एक और भाई थे। ज्येष्ठ कृष्णदेव बाबू ज़मींदारी देखते थे, और आप डिपुटी मैजिस्ट्रेट का काम करते थे। एक वर्ष हुआ, कृष्णदेव जी संसार से चल बसे। उनके छोटे छोटे दो बालक हैं। अब ज़मींदारी देखनेवाला कोई नहीं रहा। इस कारण बाध्य होकर बलदेव बाबू, तीस वर्ष की नौकरी पूर्ण होने के पहले ही, डाक्टर का सार्टिफ़िकेट दाख़िल कर पेन्शन ले घर आ गये हैं।

बलदेव बाबू के दो पुत्र और एक कन्या है। ज्येष्ठ पुत्र का नाम नारायणप्रसाद और छोटे का वीरेन्द्र है। इसकी उम्र ग्यारह वर्ष की है। इसकी अपेक्षा इसकी बहन कनकलता की उम्र दो वर्ष अधिक है। इसी के ब्याह के लिए नारायणप्रसाद के पिता कुछ चिन्तित हैं। कनकलता को इस नाम से कोई पुकारता नहीं। उसे सब कोई 'सुधा' कहते थे।

बलदेव बाबू युवावस्था में आर्यसमाज में आते-जाते थे और एक प्रकार से यह भी स्थिर हो गया था कि वे पक्के समाजी हो जायँगे। किन्तु किसी किसी ने उन्हें भय दिखलाया—'पैतृक

धर्म परित्याग करने से कहीं पैतृक सम्पत्ति से हाथ न धोना पड़े।' इसी कारण वे प्रकट रूप से आर्यसमाज में प्रविष्ट नहीं हो सके किन्तु उक्त सम्प्रदाय के साथ उनकी पूर्ण सहानुभूति थी। पादरिन मेम इनके घर की स्त्रियों को लिखने-पढ़ने और शिल्प-कर्म्म की शिक्षा देने लगी। वर्षों तक इसी प्रकार चलते चलते वे धीरे धीरे वैष्णव-धर्म की ओर झुके। अब उनकी जुल्फें छट गई हैं, खासी चुटिया का राज है। मछली-मांस खाना भी उन्होंने छोड़ दिया है। नित्य श्रीमद्भगवद्गीता और तुलसी-कृत रामायण का पाठ करते हैं। लड़की को पाठशाला में नहीं भेजते। वह घर में ही अपनी माँ से लिखना-पढ़ना और भाई से हार्मोनियम बजाना सीखती है। बलदेव बाबू इसमें कोई आपत्ति नहीं करते।

नारायण बाबू की स्त्री का नाम सुशीला है। सुशीला के माँ-बाप भी नये खयाल के मनुष्य थे। हिन्दू गृहस्थ होकर भी उन्होंने कुछ अधिक अवस्था होने तक लड़की को कारी रक्खा था और उसे पाठशाला न भेज कर घर ही में प्रारम्भिक शिक्षा दी थी। सुशीला विशेष सुन्दरी न होने पर भी बड़ी हँसमुख थी। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की होगी।

नारायणप्रसाद जिस दिन कमलपुर से लौट कर आया उस दिन दोपहर के बाद उसकी स्त्री सुशीला ने पूछा—कहिए, आपके मित्र का क्या समाँचार है?

"अच्छा समाचार है।"

"कुछ ब्याह की बातचीत हुई ?"

"कुछ नहीं।"

"यह क्या ! तब आप गये थे क्या करने ?"

"सिर्फ़ उसका मन टटोलने के लिए।"

"कैसा देखा ?"

"ब्याह करने का लक्षण तो देखने में नहीं आया।"

"क्या कहते हो, लक्षण नहीं है ? क्या जन्म भर वे कारे ही रहेंगे ?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। वह कहता है, संसार-बन्धन में रहने से अपनी आध्यात्मिक उन्नति होने की संभावना नहीं है। संन्यासी होना पड़ेगा।"

यह सुनकर सुशीला अपने मन में कहने लगी—संसार-बन्धन में रहने से अपनी आध्यात्मिक उन्नति होने की संभावना नहीं—संन्यासी होना पड़ेगा। (प्रकाश्य) अच्छा, आध्यात्मिक उन्नति किसे कहते हैं ?

नारायणप्रसाद ने हँसकर कहा—मैं क्या तुम्हारा 'कोश' हूँ ? जाकर 'कोश' में देख न लो ?

सुशीला बोली—क्या आप समझते हैं, मैं आध्यात्मिक शब्द का अर्थ नहीं जानती ? महाशय, यह तो मैं जानती हूँ। मैं सिर्फ़ जानना चाहती हूँ—'आध्यात्मिक उन्नति' क्या विषय है ? जैसे किसी की शारीरिक उन्नति कहने से समझा जाता है कि उसके शरीर में खूब जोर है, वह खूब कुश्ती लड़

सकता है इत्यादि; मानसिक उन्नति कहने से समझा जाता है कि उसकी बुद्धि बड़ी तेज़ है, वह बड़े बड़े कठिन सवालों को यों ही हल कर सकता है, वह कठिन से कठिन विषय को पढ़ कर सहज ही समझ सकता है,—अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख सकता है; नैतिक उन्नति कहने से जैसे जाना जाता है कि वह सदा सत्य बोलता है, किसी का अनिष्ट नहीं करता है, कोई बुरा काम नहीं करता, और पाप-वासना को मन में जगह नहीं देता—इसी तरह मुझे बता दीजिए कि आध्यात्मिक उन्नति कहने से क्या समझा जाता है।

यह सुनकर नारायणप्रसाद कुछ चिन्तित हो पड़े, बोले—यह तुम नहीं जानतीं? मान लो, जैसे पूर्व काल के ऋषिमुनियों ने अपनी उन्नति की थी।

सुशीला कुछ व्यङ्ग्य की हँसी हँस कर बोली—नारद मुनि वीणा बजाकर आकाश-मार्ग में उड़ते फिरते थे। क्या मोती बाबू उसी तरह हार्मोनियम बजाते बजाते उड़ना चाहते हैं?

नारायण बाबू हँस कर बोले—नारद मुनि सिर्फ़ उड़ सकते थे, यही नहीं—वे भगवान् के पास तक पहुँच जाते थे। उनके सदृश भगवद्भक्त बहुत कम पाओगी।

सुशीला—तो मोती बाबू के ऐसा भक्त पाना भी वैसा ही कठिन होगा। क्या विवाह करने से ईश्वर की भक्ति भली भाँति नहीं की जा सकती?

"हाँ, उसका यही मत है। सब कुछ छोड़ छाड़ कर संसार

के बाहर न जा बैठें तो एकाग्रमन से ईश्वर की उपासना नहीं हो सकती।"

सुशीला मुस्कुराने लगी। यह बोली—यह कैसे जाना ?

"कैसे जाना ?"

"यह तो पुस्तक पढ़े ही बिना समालोचना हुई।"

नारायण बाबू ने विस्मित होकर स्त्री के मुँह की ओर देखा। वे बोले—तुम्हारी बात समझ में नहीं आई।

सुशीला धीरे धीरे कहने लगी—ईश्वर की भक्ति करने का अर्थ दिन भर मन्दिर में बैठे बैठे घंटी बजाकर पूजा करना और हलुआ-पूड़ी, मिठाई आदि भोग लगा कर आनन्द से माल छकना नहीं है।

नारायण बाबू ने स्वीकार किया—यह तो वास्तविक भक्ति नहीं है।

सुशीला बोली—वे स्नेह करके, दया करके हम लोगों का जो कल्याण करते हैं—आशीर्वाद-स्वरूप उनसे हम लोग नित्य जो सुख की सामग्री पा रहे हैं—इन सबके लिए उनके प्रति कृतज्ञ होना, और उनके सभी काम शुभमय हैं यह मन ही मन जानना—इसी का नाम भक्ति है।

नारायण बाबू—मैं भी यही समझता हूँ।

"तो देखिए, अगर आप विवाह न करें तो ईश्वर क्या इसे भक्ति समझ प्रसन्न होंगे ? अगर ब्याह न करना ही ईश्वर की भक्ति का मुख्य साधन होता तो पूर्वकाल के कोई भी ऋषि

मुनि ब्याह नहीं करते। मान लीजिए, कृपालु ईश्वर आपके ऊपर दया करके स्त्री का प्रेम, लड़के-लड़की का स्नेह-सुख—ये सब सुन्दर उपहार हाथ में ले आ खड़े हुए हैं; और यदि आप उन सबका अनादर कर विरक्त हो जंगल में चले जाना चाहें, और वहाँ रह कर उनकी भक्ति करें तो पुस्तक पढ़े बिना समालोचना करना और रसोई चखे बिना ही रसोई करनेवाली की प्रशंसा करना हुआ या नहीं ?"

स्त्री के मुँह से ये बातें सुनकर नारायणप्रसाद की आँखें सहानुभूति के भाव से भर गईं। वह बड़ी प्रसन्नता से सुशीला की ओर देखकर बोला—तुमने बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त दिया है ! मैंने इतना पढ़ा-लिखा है, इन सब विषयों का कुछ मनन भी किया है किन्तु ऐसी सरल युक्ति कभी मेरे मस्तिष्क में न आई थी।

कुछ देर के लिए अपनी गम्भीरता छोड़ कर सुशीला चपल हास्य के साथ बोली—आवेगी कैसे, पुरुष के दिमाग़ हो तब न ?

नारायणप्रसाद ने मुस्कुरा कर कहा—यही सही। मैं जब मोती के साथ तर्क कर रहा था तब यह दृष्टान्त ज्ञात होता तो एक ही मिनट में भैया को चुप कर देता। अच्छा, वह आ ही रहा है—फिर तर्क होगा।

सुशीला—क्या मोती बाबू यहाँ आ रहे हैं ?

"हाँ।"

"कब, कब आवेंगे ?"

"तीन चार दिन के भीतर ही।"

दो एक मिनट तक सुशीला चुपचाप कुछ सोचने लगी। धीरे धीरे उसके होठों पर मुस्कुराहट झलक उठी। फिर वह बोली—अच्छा अच्छा, आने दो।

नारायणप्रसाद अपनी स्त्री के स्वभाव से भली भाँति परिचित था। वह बोला—क्या, कुछ कहो भी? तुम्हारा मतलब क्या है?

"मतलब है। अभी नहीं कहूँगी।"

"नहीं, कहना होगा।"

"अभी नहीं। ओफ़! इतनी जल्दी क्या है—छोड़ो, आँचल छोड़ दो। मैं एक किताब खोजने जाती हूँ।"

"कौन किताब?"

"Lamb's Tales from Shakespeare."

"शेक्सपीअर के ऊपर एकाएक इतनी भक्ति कैसे उमड़ पड़ी?"

"एक क़िस्सा पढ़ना चाहती हूँ।"

"कौन क़िस्सा?"

"नहीं बताऊँगी।"

"तो मैं नहीं जाने दूँगा।"

"अच्छा, बतलाती हूँ। "Much Ado About Nothing" कह कर सुशीला बड़ी फुर्ती से बाहर चली गई।

पचीसवाँ परिच्छेद

अपराह्न का समय है। बलदेव बाबू कमरे में आराम-कुरसी पर लेटे एक अँगरेज़ी पुस्तक पढ़ रहे थे। आँखों में सुनहरा चश्मा लगा था। वहाँ और कोई नहीं था।

बलदेव बाबू की उम्र पचास के ऊपर थी। रङ्ग गोरा था। युवावस्था में ये सुन्दर पुरुषों में गिने जाते थे। अब शरीर कुछ मोटा हो गया है। किन्तु हैं बलिष्ठ। सिर के बाल कुछ बिरले हो गये हैं जिनमें अधिकांश पके हैं। आँखें बड़ी बड़ी और प्रफुल्ल हैं। हजामत कराये हुए मुख-मण्डल से सहृदयता का भाव प्रस्फुटित हो रहा है। एक पतली सादी फ़लालेन की कमीज़ पहने हैं। बग़ल में तम्बाकू भरा हुआ हुक्का रक्खा है। चिलम से थोड़ा थोड़ा धुआँ निकल रहा है किन्तु वृद्ध का उस ओर कुछ ख़याल नहीं है। पीने-वाले के अनादर से तम्बाकू आप ही आप जल रही है। बलदेव बाबू जब कुछ पढ़ने बैठते हैं तब उनकी बग़ल में तम्बाकू भरा हुआ फ़र्शी हुक्का बराबर मौजूद रहता है। बीच बीच में दो एक बार पी लेते हैं। जब पीकर देखते हैं कि तम्बाकू जल गई तब चिलम बदलने का हुक्म देते हैं। ख़ुशबूदार तम्बाकू को इस तरह मुफ़्त में जलते देख नौकरों को बड़ा दुःख होता है।

कमरे के सामने ख़ूब लम्बा-चौड़ा मैदान है। बरामदे के

नीचे गुलाब के पेड़ कुछ जगह रोके हुए हैं। वहाँ लाल, पीले, और उजले रङ्ग के गुलाब के फूल खिले हुए शोभा दे रहे हैं। चार बजने पर बाहर पालकी गाड़ी के आने की आहट सुन पड़ी। क्रमशः गाड़ी कमरे के सामने आ पहुँची। बलदेव बाबू ने बाहर की ओर झुक कर देखा कि एक अपरिचित युवा गाड़ी से उतर रहा है। कमरे के दूसरे भाग से नारायणप्रसाद चट्टी जूता पहने बाहर आ गया। मोतीलाल का स्वागत करके उसने गाड़ी से बिछौना और चमड़े का बेग उतरवा नौकर के ज़िम्मे किया। फिर मोतीलाल को साथ ले पिता के पास आया। कहा—"बाबू जी, यही मेरे मित्र मोतीलाल हैं।" इसके साथ ही मोतीलाल ने खूब सिर नवा कर बलदेव बाबू को प्रणाम किया।

"आओ, बाबू आओ, अच्छे हो ?" कह कर बलदेव बाबू खड़े हो गये। चश्मा खोल कर जेब में रक्खा और जहाँ पढ़ते थे वहाँ एक चिह्न रख कर छोटी टेबल पर पुस्तक रख दी।

"आपकी कृपा से अच्छा हूँ। आप अच्छे हैं ?" कह कर मोतीलाल सिर झुका कर खड़ा हो रहा।

"हां, सब लोग अच्छे हैं, आओ बैठो"—कह कर वे कुर-सियों से घिरी हुई टेबल की ओर अग्रसर हुए। उनके बैठने पर मोती और नारायण भी बैठे। बलदेव बाबू स्नेह-भरी दृष्टि से मोतीलाल की ओर देख कर बोले—घर से कब चले ?

"सप्तमी को। दो दिन आज़मगढ़ में ठहर गया था।"

नारायण ने कहा—आज़मगढ़ को वैद्युतिक महासभा में मोतीलाल का निमन्त्रण था।

बलदेव बाबू ने कहा—हाँ, हाँ, वैद्युतिक महासभा की ओर से मुझे भी निमन्त्रण था। सभा का नाम सुनकर कुछ अचम्भे में आ गया था। कैसी सभा है, उसका कुछ हाल कहो तो मालूम हो।

मोतीलाल ने मुस्कुरा कर कहा—उस सभा के सदस्यों का मत एक विचित्र ही प्रकार का है। वे लोग कहते हैं, आध्यात्मिक संसार की एक-मात्र शक्ति बिजली ही है।

वृद्ध विस्मित होकर बोले—विद्युत्? विद्युत् ही आध्यात्मिक जगत् की एक-मात्र शक्ति है!

"जी हाँ। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य की आत्मा और कुछ नहीं—विद्युत् का कुछ अंशमात्र है। पूजा, होम, जप, तप, करने का एकमात्र उद्देश्य इस विद्युत् के परिमाण का बढ़ाना है।"

यह सुनकर बलदेव बाबू हँसने लगे। बोले—उन लोगों के दिमाग़ में कुछ हो तो नहीं गया है! किन लोगों ने यह सभा स्थापित की है?

मोतीलाल—शहर के निकम्मे नवयुवकों ने।

"अच्छा! मैंने समझा था, किसी पढ़े-लिखे आदमी ने स्थापित की होगी। लड़कों के सिवा ऐसे कुतूहल की सभा और कौन करेगा?"

नारायण ने कहा—क्यों बाबू जी, कोई कोई वयस्क लोग भी तो ऐसे मत का प्रचार करते हैं। हिन्दू-धर्म के अधिकांश क्रिया-कर्मों के विषय में वैद्युतिक व्याख्यान दिया करते हैं।

मोतीलाल—इस युग में धर्म के साथ जड़-विज्ञान का घोर युद्ध चल रहा है। इसी से कोई कोई धर्म-प्रचारक कभी कभी विज्ञान के साथ सन्धिस्थापन की चेष्टा करते हैं।

बलदेव बाबू ने कहा—यह ठीक नहीं। धर्म के साथ जड़-विज्ञान का कोई विरोध नहीं और विरोध की संभावना भी नहीं। मैं प्रकृत सत्य धर्म की बात कहता हूँ। डग्मा (सिद्धान्त) की बात नहीं कहता।

नारायण ने कहा—किन्तु सभी प्रचलित धर्म तो डग्मा (तत्त्ववाक्यों) से भरे हैं। किरिस्तानी धर्म—इसलामी धर्म—हिन्दूधर्म—

बलदेव—हिन्दूधर्म सब धर्मों की अपेक्षा इस विषय में निष्कण्टक है। जब पीथागोरस और कोपर्निकस ने प्रचार किया था कि सूर्य स्थिर है, पृथिवी ही उसके चारों ओर घूमती है तब ईसाइयों में भारी आन्दोलन उठा था। पादरियों ने कहा था यह 'entirely opposed to holy writ,'—बाईबिल के सर्वथा विरुद्ध है। पोप पञ्चम पाल ने हुक्म दिया था, 'In order that this opinion may not further spread to the damage of Catholic Truth'—यह मत पीछे फैलकर सार्वजनीन सत्य को नष्ट करेगा, इसी से इस सम्बन्ध

के सब ग्रन्थ suspended, forbidden and condemned हुए। किन्तु हिन्दू ज्योतिषियों ने जब यह सत्य आविष्कार किया था तब हिन्दू-धर्म आर्तनाद नहीं कर उठा।

नारायण—आप उच्च कोटि के हिन्दू-धर्म की बात कहते हैं। किन्तु प्रचलित हिन्दू-धर्म—क्रिया-कर्म्म-मूलक जो हिन्दू धर्म है वह—क्या सब जगह विज्ञान-सम्मत है? मान लीजिए जैसे मूर्ति-पूजा।

वृद्ध कुछ देर तक चुप रहकर बोले—मनुष्य के मन में जो एक भक्ति-भाव है उसे चरितार्थ करने के लिए यदि वह मूर्ति बनाकर ही ईश्वर की पूजा करे तो इसमें हानि क्या है?

नारायण—मूर्ति में ईश्वर है वा नहीं, यह तो बहुत दूर की बात है। विज्ञान आज तक इसी का उत्तर नहीं दे सका है कि ईश्वर है भी या नहीं। इसलिए यह बात कैसे मान लूँ कि विज्ञान के साथ धर्म का विरोध नहीं है?

बलदेव बाबू ने हँसकर कहा—अहा! ईश्वर नहीं है, यह बात तो विज्ञान नहीं कहता। विज्ञान सिर्फ़ यही कहता है—'मैं नहीं जानता'। तुम रामायण, महाभारत, पुराण खोल कर देखो—सभी जगह लिखा है, वे अचिन्त्य हैं—बड़े बड़े ऋषि मुनि भी उन्हें ध्यान में नहीं लख पाते इसी से तो सिद्ध होता है स्पेन्सर का वह Unknowable अज्ञेय ईश्वर है या नहीं, इस विषय पर तर्क करना बिलकुल निष्फल है। मनुष्य के मन में ईश्वर के लिए जो एक इच्छा है, यही असल बात

हुई। इस विषय में धर्म और विज्ञान दोनों ही का एकमत है। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए कोई गिर्जे में जाकर उपासना करता है, और कोई मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ता है तथा कोई आर्यसमाज में जाता है; और हिन्दू मिट्टी या पत्थर की मूर्ति बनाकर पूजता है। क्या किरिस्तान, क्या मुसलमान, क्या आर्य, कोई भी ऐसी बात कह सकता है कि उसके मन में जो ईश्वर की धारणा हुई है वही ईश्वर का प्रकृत स्वरूप है? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बात न बोलेगा। फिर जो भक्त हैं वे—आर्य हों चाहे किरिस्तान हों या मुसलमान—कहेंगे कि पहाड़ के साथ बालू के कण का जो परिमाण-भेद है, ईश्वर के स्वरूप के साथ मेरी क्षुद्र बुद्धि की इस धारणा का उसकी अपेक्षा भी अधिक भेद है। क्या हिन्दू यह नहीं जानते कि मैं जिसकी पूजा करता हूँ, यह मिट्टी की मूर्तिमात्र है? इस बात को वे अच्छी तरह जानते हैं। असल देवता कहाँ मिलेगा? इधर भक्ति को भी किसी तरह चरितार्थ करना चाहिए। इसलिए वे उस मूर्ति को ही देवता मान कर अपने मनोरथ को पूरा करते हैं। ये जो छोटी छोटी बालिकायें मिट्टी का घर बना कर खेलती हैं, धूल-मिट्टी का दाल-भात बनाती हैं, कंकड़-पत्थर की तरकारी बनाती हैं और पुतले पुतलियों को खिलाती हैं—वे क्या यह नहीं जानतीं कि यह घर नहीं है, यह भात भी नहीं है और ये बच्चे भी नहीं हैं? जानती हैं, ख़ूब जानती हैं। तो वैसा क्यों करती हैं? कोई कोई कहते हैं कि यह

केवल देखादेखी की प्रवृत्ति है। माँ-बाप को जो करते देखती हैं वे उसी का अनुकरण करती हैं। पर यह बात नहीं है। बीज या गुठली के भीतर जैसे पेड़ रहता है वैसे ही बालिका के भीतर एक माता छिपी रहती है। उसके मन के भीतर घर-द्वार बनाने और सन्तान पालने की एक इच्छा है। इस उम्र में वे घर कहाँ पावेंगी? सन्तान कहाँ पावेंगी? इसी लिए वे खेलने का घर बना गुड़िया को बच्चा मानकर अपनी इच्छा पूरी करती हैं।

मोतीलाल ने कहा—पतिव्रता स्त्री जैसे विदेश-स्थित स्वामी का चित्र देखकर धैर्य धारण करती है, यह भी कुछ कुछ ऐसा ही हुआ।

नारायण—ऐसा ही कैसे हुआ? असल के साथ नक़ल का सादृश्य कैसे हो सकता है? चित्र तो मनुष्य का स्मरण दिलाता है किन्तु मूर्ति के साथ देवता की समता कहाँ है? देवता की तुलना में मूर्ति कुछ नहीं के बराबर है। मूर्ति को देवता मान लेना अपमान करना हुआ या नहीं? इससे क्या देवता प्रसन्न हो सकते हैं?

बलदेव बाबू बोले—अच्छा, मैं एक उदाहरण देकर इस बात का उत्तर देता हूँ। मान लो, एक आदमी विदेश में नौकरी करने गया। वह कई साल तक घर नहीं आया। जब वह विदेश जाने लगा था तब उसके लड़के की उम्र चार पाँच वर्ष की थी। वह लड़का क्रम क्रम से बड़ा हुआ। उसके मन में सदा इस बात का दुःख बना रहता था, 'सभी लड़के अपने अपने बाप के

पास हैं, केवल मैं ही अपने बाप के पास नहीं हूँ।' वह बालक से युवा हुआ तो भी उसने अपने बाप को नहीं देखा। उसके सभी साथी अपने अपने बाप की यत्न-पूर्वक सेवा करते हैं—यह देख कर उसके मन में दुःख होने लगा कि मैं ही एक ऐसा भाग्यहीन हूँ जो अपने पिता की सेवा से वञ्चित हूँ। वह साधारण चित्र बनाना जानता था। उसे बाप का एक चित्र बनाने की इच्छा हुई। उसने उसी छोटी-सी उम्र में अपने बाप को देखा था—कुछ कुछ परछाहीं की तरह याद था। उस स्मरण के अनुसार उसने अपनी सामान्य चित्र-विद्या की सहायता से बाप का एक चित्र बनाया। किन्तु वास्तव में वह चित्र बाप के स्वरूप से तनिक भी नहीं मिला। वह उसी चित्र को सामने रखकर प्रणाम करता था और पूजा करता था। इस तरह करते करते कुछ दिन बीते। एक दिन वह बैठ कर चित्र की पूजा कर रहा था कि सहसा उसके बाप ने आकर यह व्यापार देखा। तो क्या वह बाप लड़के को जूते मार कर कहेगा—पाजी, बद-माश, इस तरह चित्र बनाकर क्यों मेरा अपमान कर रहा है; या आनन्द से उसका हृदय उछल उठेगा—और लड़के को प्रेम-पूर्वक छाती से लगावेगा ?

यह उदाहरण सुनकर नारायण और मोतीलाल दोनों निरुत्तर हो गये। उदाहरण की मधुरता ने मोती के मन के मोहित कर लिया।

दोनों युवकों को चुप देख कर वृद्ध बलदेव बोले—नारायण

ये बाबू थक गये होंगे, इनको ले जाओ। जाओ बाबू, हाथ-मुँह धोओ। हवेली के भीतर मेरे श्रीराधारमण जी हैं, उनको प्रणाम करके कुछ जलपान करो।

नारायण मोतीलाल को ले गया। जाते जाते मोती ने कहा—मूर्त्ति-पूजा के पक्षपोषण में अनेक युक्तियाँ सुनी हैं, किन्तु इन्होंने आज कथा के व्याज से जिस युक्ति का हवाला दिया है वह बड़ी ही हृदयाकर्षक है।

नारायण—बाबू जी इतने दृष्टान्त जानते हैं जिनकी संख्या नहीं। हम लोगों ने उन्हें दृष्टान्तार्णव की उपाधि दी है। परन्तु उनके मुँह पर यह बात नहीं कहता हूँ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

कमरे के पीछे मकान का बाहरी हिस्सा था। उसी के भीतर एक सजा हुआ कमरा मोतीलाल के लिए निर्दिष्ट हुआ। उस कमरे के समीप ही नहाने और हाथ-मुँह धोने की कोठरी थी। नारायणप्रसाद मोतीलाल को उस कमरे में ले गया। सब कुछ दिखा-सुना कर वह थोड़ी देर के लिए वहाँ से हट आया।

कुछ देर बाद नारायण ने फिर लौट कर देखा कि मोतीलाल ने हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल लिये हैं। आलमारी से एक पुस्तक निकाल कर वह खिड़की के पास कुरसी पर बैठा बैठा पढ़ रहा है।

नारायण—क्या पढ़ रहे हो ?

"हक्सले की प्रबन्धावली।"

"मत पढ़ो, मत पढ़ो। नास्तिक हो जाओगे।"

मोती ने पोथी रख हँस कर कहा—मेरी आस्तिकता ऐसी क्षणस्थायी नहीं है।

नारायण—अन्दर चलो, भगवान् को प्रणाम करना, माँ जी से भेट करना।

मोती उठकर नारायण के पीछे पीछे अन्दर गया। आँगन में एक सात वर्ष का लड़का पपीता खा रहा था। दासी और

दास अपने अपने काम में लगे थे। नारायणप्रसाद ने उस लड़के से पूछा—माँ कहाँ हैं ?

आगन्तुक की ओर सन्दिग्ध भाव से देखकर बालक बोला—कोठे पर।

तब नारायणप्रसाद मोती को लेकर ठाकुर जी वाले कमरे में गया। सिंहासन पर प्रस्तरनिर्मित श्रीराधारमण जी वंशी हाथ में लिये खड़े हैं। बगल में श्री राधा जी खड़ी हैं। मोतीलाल ने मूर्त्ति के सामने जा धरती में घुटने टेक सिर नवा कर प्रणाम किया।

उसके बगलवाले दूसरे कमरे में मोती को बिठाकर नारायण माँ को बुलाने गया। मोती ने देखा कि कमरे में अँगरेज़ी चाल का सामान पड़ा है। बीच में एक संगमर्मर की गोल टेबल है। उसके चारों ओर कुर्सियाँ हैं। दीवार से सटी हुई, चारों ओर, चार आराम-कुर्सियाँ हैं। टेबल के ऊपर एक बड़ा-सा पंखा भी कड़ी से लगा हुआ लटक रहा है। मोती एक आराम-कुरसी पर बैठ कर उनके आने की राह देखने लगा।

थोड़ी ही देर में नारायण, माँ को साथ ले, वहाँ आया। मोती ने विस्मित होकर देखा कि इसका वेश-विन्यास साधारण हिन्दू गृहस्थ के घर की स्त्री की तरह नहीं है। ब्राह्मसमाजी या सुधारक की स्त्री की भाँति है। पैरों में सिर्फ़ जूता और मोजे नहीं हैं।

नारायण ने कहा—माँ, यह मेरे कालेज के सहपाठी मित्र मोती बाबू हैं।

मोतीलाल ने नारायण की माँ को प्रणाम किया।

उसकी माँ कमला ने कहा—चिरंजीव रहो बेटा, राज-राजेश्वर हो।

नारायण—माँ, यह होने की तो संभावना नहीं। मोती तो संन्यासी होगा।

कमला—यह क्या कहते हो। संन्यासी क्यों होगा? यह क्या संन्यासी होने की उम्र है?

नारायण—हमारा मोती "नवीन संन्यासी" होगा।

इसी समय एक तेरह चौदह वर्ष की बालिका कमला के पास आ खड़ी हुई।

मोती ने देखा कि बालिका का पहिनावा भी माँ की ही भाँति नये फ़ैशन का है। उसका मुँह बड़ा ही सुश्रीक और रङ्ग भी सुन्दर है। सिर के बाल खुले हुए पीठ पर पड़े हैं, जैसे इस उम्र में अँगरेज़ों की लड़कियों के रहते हैं। माथे में हिन्दू-जाति का चिह्न-स्वरूप एक बिन्दी है। पैरों में जूता-मोज़ा नहीं है।

नारायण ने उससे कहा—इनको पहचानती है?

बालिका ने सिर हिला कर सूचित किया—नहीं।

नारायण—मेरे मित्र मोती बाबू हैं। हम दोनों एक साथ प्रयाग में पढ़ते थे।

यह सुन कर लड़की ने हाथ जोड़ सिर नवा कर मोतीलाल को नमस्कार किया। मोती की ओर देखकर नारायण बोला—यह मेरी छोटी बहन मुधा है।

लड़की ने एक बार माँ की ओर और एक बार भाई की ओर देखकर कहा—जाओ भैया, मेरा नाम मत बिगाड़ो।

"क्यों, तेरा नाम मुधा नहीं है?"

"नहीं।"

"तो क्या सुधा है?"

बालिका ने खूब ज़ोर से सिर हिला कर कहा—नहीं।

"तो क्या जुधा?"

बालिका दोनों भौंहें तान कर बोली—उँह! देखो न माँ।,

कमला ने कन्या के सिर के बालों को सुरझाते सुरझाते कहा—"हाँ बेटा, यह सच है। मुधा कहने से अगर यह चिढ़ती है तो उसे क्यों मुधा कहते हो? जब छोटी थी तब जो तुम्हारे जी में आता था, कहते थे। इससे क्या बराबर यही कहते रहोगे?" यह कह कर और बेटी को लेकर कमला पास ही एक आरामकुरसी पर बैठ गई। मोती और नारायण टेबल के पास की कुरसियों पर बैठ गये।

नारायण ने कहा—क्या वह अब भी बच्ची नहीं है? बूढ़ी हो गई? आँखों से धुँधला सूझता हो तो चश्मा मँगा दूँ?

माँ का एक हाथ अपने हाथों में लेकर सुधा बोली—भैया जब तब कहते हैं, "चश्मा लगाओगी?" चश्मा ख़रीदने के लिए

तो सदा तैयार रहते हैं किन्तु जो ला देने के लिए इतने दिनों से कह रही हूँ उसे ख़रीद देने का नाम ही नहीं लेते।

माँ ने कहा—अब की फिर क्या फ़रमायश की है ?

"भैया से पूछो न।"

नारायण ने गम्भीर भाव से कहा—रामनामी अँगौछा माँगती है।

सुधा—चलो, जाओ—भूल गये ?

नारायण—तो क्या खेलने के लिए गुड़िया ?

"तुम्हें ख़ूब याद है। तुम सिर्फ़ मुझे चिढ़ाते हो। नहीं माँ, यह कुछ नहीं।"

माँ ने कहा—तो क्या ? तू ही कह न।

सुधा ने माँ के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—ग्रामोफोन।

कमला ने कहा—ग्रामोफोन ! नहीं बेटी, ऐसा काम न कर। ग्रामोफोन लेकर क्या करेगी ? वह कान फोड़े डालता है। जब हम काशी में थीं तब हमारे घर के पास ही एक सौदागर रहता था। उसका लड़का एक ग्रामोफोन ख़रीद लाया। वह दिन-रात उसे बजाता था। उसके मारे मैं तो त्राहि त्राहि करने लगी। जितने रेकार्ड थे उनमें सबसे पसन्द था उसे जानवरों की बोलीवाला रेकार्ड। वह दिन भर सुबह, दस बजे, दोपहर को, जब देखो तब उसी को बजाता था। उसका कोई दोस्त आता था तो उसे वही रेकार्ड सुनाता था। भाग्य से कुछ दिनों

के बाद उसकी कल बिगड़ गई, नहीं तो मुझे दूसरा मकान भाड़े पर लेना पड़ता। तब तू दस वर्ष की थी। याद नहीं है?

सुधा—हाँ, याद है। अहा! उसमें एक बढ़िया भजन था—"मोरा जिया हरि लीन्हों रे बँसुरिया बजाके।" ग्रामोफोन में कितने ही अच्छे अच्छे गीत भरे रहते है। सब तो वैसे ही नहीं रहते।

"बेटी, ग्रामोफोन का नाम मत लो। उसका अच्छा गाना उसी में रहे। मैं अपने घर में तो उसे नहीं आने दूँगी। मैं अब बूढ़ी हुई। जब काशी प्रयाग में जाकर निवास करूँ तब तुम घर में ग्रामोफोन बजाना, ढोलक बजाना। जो जी में आवे बजाना।"

यह सुनकर सुधा की आँखें डबडबा आईं।—"अच्छा, नहीं दोगी तो मत दो"—कह कर वह उठ कर चली गई।

कमला ने कहा—देखा लड़की का रूठना। अब ब्याह होने में देर नहीं है। दो दिन बाद ससुराल जायगी। घर-बार सँभालने की उम्र हुई। पर अब भी ऐसी नादान है! इसे ज्ञान कब होगा। मोती बाबू! तुम बहुत दूर से आये हो, भूख-प्यास लगी होगी। जलपान का सामान तैयार है, बैठो। मैं इन्तज़ाम करके तुम्हें बुला भेजूँगी।

नारायण—माँ, तुम यह समझ रही हो कि मैं घर पर बैठा हूँ इससे मुझे भूख नहीं लगी होगी। सो यह समझना तुम्हारी भूल है।

माँ ने हँस कर कहा—अच्छा किया जो भूल सुधार दी। नहीं तो अभी तुझे खाना नहीं मिलता।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

जलपान के अनन्तर मोतीलाल को साथ ले नारायणप्रसाद कुछ देर तक बाग़ में घूमे फिरे। अँधेरा होने के पहले मोती ने कहा, अब घूमना छोड़ो, चलो सन्ध्या हुई।

दोनों लौट पड़े। रास्ते में मोती ने कहा—तुम सन्ध्या-समय पूजा नहीं करते ?

नारायण ने हँस कर कहा—विवाह होने के बाद एक वर्ष तक की थी। बाल पकने और दाँत टूटने पर फिर करने लगूँगा।

"तुम्हारे बाबू जी कुछ नहीं कहते ?"

"वे किसी के मतामत पर कुछ नहीं बोलते। कहते हैं, जब उसे भूख लगेगी तब वह आप ही खायगा।"

"कैसी भूख ? आध्यात्मिक ?"

"बेशक।"

"तुम्हारे बाबू जी ऐसे धर्मनिष्ठ हैं, तुम ऐसे अजामिल क्यों हुए ?"

"एकदम अजामिल नहीं हूँ। जब घर रहता हूँ तब, नित्य सन्ध्या-समय बाबू जी पूजा करके जिस समय श्री राधारमण जी को भोग लगाते हैं उस समय मैं वहाँ हाज़िर रहता हूँ और घर भर के सब लोग भी—माँ जी से लेकर नौकर चाकर तक। भोग लगा कर बाबू जी राधारमण जी की स्तुति करते हैं, आरती करते

हैं। वह समय बड़ा ही सुहावना लगता है। मैं नास्तिक नहीं हूँ। आज आरती के समय बाबू जी तुमको भी अवश्य बुला भेजेंगे।

मोती ने कहा—अच्छी बात है, किन्तु वहाँ तो स्त्रियाँ रहेंगी। मैं कैसे जाऊँगा ?

"मेरे बाबू जी पर्दे वर्दे की ऐसी परवा नहीं करते। हाँ, वे इतना ज़रूर पसन्द नहीं करते हैं कि स्त्रियाँ घोड़े पर चढ़ कर घूमा करें, मर्दों के बीच खड़ी होकर नाचा करें अथवा सभा-समाज में वक्तृतायें दें। जिन लोगों के साथ बाबू जी की घनिष्ठता है वे जब कभी इनसे मिलने आते हैं तब ये उन्हें अन्दर भी ले जाते हैं। इसमें ये कोई दोष नहीं समझते।"

मोती—बात तो ठीक है। किन्तु हम लोगों के चिरकालिक अभ्यास और संस्कार के कारण सङ्कोच होता है, और इसी से हम लोग स्त्रियों को पर्दे के भीतर रखना पसन्द करते हैं। और वे भी इसी से अन्य पुरुषों के सामने जाने में हिचकती हैं।

इस तरह बातें करते करते ये लोग घर पहुँचे। सायंकाल की पूजा करके मोतीलाल अपने कमरे में आ बैठा। नारायण फिर उसके साथ बात-चीत करने के लिए आ गया। आध घंटे के बाद बलदेव बाबू ने दोनों को बुला भेजा।

मोती ने पूजा के कमरे में जाकर देखा, बलदेव बाबू रेशमी कपड़ा पहने मूर्त्ति के सामने बैठे हैं। ठाकुर जी को भोग लग चुका है। उनकी बग़ल में दोनों ओर कम्बल बिछे हैं। एक पर

स्त्रियाँ बैठी हैं। दूसरा पुरुषों के लिए है। नारायण और मोती उस पर जा बैठे। द्वार के समीप दासियाँ और दास बैठे थे।

तब बलदेव बाबू ने हाथ जोड़ कर श्री राधारमण जी का स्तोत्र-पाठ करना आरम्भ किया। वे गम्भीर स्वर से सुन्दर भावपूर्ण संस्कृत श्लोक भक्ति-गद्‌गद कण्ठ से, लय के साथ, पढ़ने लगे। इस तरह कुछ देर तक स्तुति करके उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनको प्रणाम करते देख, वहाँ जितने लोग थे सभी ने धरती में सिर टेक कर श्री राधारमण जी को प्रणाम किया। तब बलदेव बाबू दाहिने हाथ में बलता हुआ पञ्चदीप और बायें हाथ में घंटी लेकर आरती करने के लिए खड़े हुए। वहाँ जो लोग बैठे थे वे सभी उठ खड़े हुए। मन्त्र पढ़ पढ़ कर बलदेव बाबू आरती करने लगे। दो छोटे लड़के घंटा-घड़ियाल बजाने लगे। आरती कर चुकने पर बलदेव बाबू ने फिर प्रणाम किया। अन्य लोगों ने भी प्रणाम किया। फिर वे सबको आरती दिखा, चरणामृत दे, कुशाग्र से गङ्गाजल लेकर सबके माथे पर छिड़कते हुए कहने लगे—शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इसके बाद सब लोग उठकर अपना अपना काम करने गये। बलदेव बाबू मोतीलाल का हाथ पकड़ कर बाहर आये। मोतीलाल के कमरे में उसे पहुँचा कर कहा—बैठो बाबू, तुम यहाँ बैठो। मैं वस्त्र बदल कर आता हूँ। इस समय कुछ चाय पीना होगा।

फिर वे कपड़े बदलने चले गये। अब मोतीलाल के पास

नारायण आगया। बोला—साँझ को बाबू जी यहीं बैठते हैं, बैठक में नहीं जाते। शुरू शुरू में जब बाबू जी पेंशन लेकर घर आये थे तब सन्ध्या के उपरान्त बाहर के कमरे में ही बैठते थे। किन्तु महल्ले के सब बूढे आदमी यहाँ आकर उनसे ताश या शतरंज खेलने का अनुरोध करने लगे। धीरे धीरे वहाँ खेल का एक अड्डा जम गया। इसी से बाबू जी अब वहाँ नहीं जाते। इसी कमरे में बैठ कर चाय पीते हैं। हम लोग भी यहाँ आकर बैठते हैं। गप शप होती है और रामायण या महाभारत पढ़ा जाता है। किसी दिन माँ पढ़ती हैं, किसी दिन मेरी स्त्री और किसी दिन सुधा पढ़ती है। खाने-पीने के समय तक यही सब होता रहता है।

इसी समय एक नौकर बड़ा हुक्का भर कर टेबल के पास स्टूल के ऊपर रख गया। कुछ ही देर में बलदेव बाबू भी आ पहुँचे।

कुरसी पर बैठ कर हाथ में निगाली ले करके बलदेव बाबू बोले—मोती बाबू! तुमको किस समय चाय पीने का अभ्यास है? कोई कोई साँझ होने के पहले ही पीते हैं। हम लोग तो साँझ होने के बाद पीते हैं।

मोती—मैं चाय नहीं पीता।

वृद्ध—अयँ! क्या कहा—चाय नहीं पीते?

"जी नहीं।"

"क्या कभी नहीं पीते?"

"कभी कभी पीता हूँ। तबीअत सुस्त होने पर—सो भी

बहुत दिनों बाद। उम्र भर में दो तीन बार से अधिक चाय का सेवन न किया होगा।"

"वाह वाह! अच्छी बात है, तुम उसका अभ्यास नहीं रखते सो यह अच्छा ही है। हम लोगों को तो ऐसी लत पड़ गई है कि समय पर चाय नहीं मिले तो कुछ भी नहीं सुहाता। सिर दुखने लगता है। ऐसा एक मैं ही नहीं हूँ—नारायण की माँ और अन्यान्य स्त्रियों की यही हालत है। हमारे घर की छिपकिली तक चाय की भक्त है।"

इसी समय सुधा थाली में तीन प्याले चाय ले आई। बलदेव बाबू बोले—यह मेरी लड़की है, इससे तुम्हारा परिचय हुआ है या नहीं? इसका नाम कनकलता है, परन्तु सब इसको सुधा कहते हैं। यह बहुत बढ़िया चाय बनाना जानती है। मुझे दूसरे के हाथ की चाय पसन्द ही नहीं होती। कितने मिनटों तक चाय को गर्म पानी में रहना चाहिए, कितनी चाय में कितना दूध और कितनी चीनी मिलानी उचित है—यह जैसा समझती है वैसा दूसरा कोई नहीं समझता। बेटी सुधा, तीन प्याले चाय क्यों लाई है? मोती बाबू तो चाय नहीं पीते।

सुधा मोती की ओर घूम कर बोली—"क्या आप चाय नहीं पीते?"—उसके कण्ठ-स्वर से ऐसा भाव प्रकाशित हुआ, मानों कलियुग में जो मनुष्य चाय नहीं पीता वह एक दर्शनीय जीव है।

मोती—नहीं, मैं चाय नहीं पीता।

बलदेव बाबू प्याले के भीतर चम्मच चलाते चलाते बोले—बेटी, चकित क्यों हो रही ? वे कहते हैं कि उम्र भर में उन्होंने कुल दो तीन दफ़े चाय पी होगी। सो भी शरीर अस्वस्थ होने पर। और तुम सब माँ का दूध छोड़ते ही चाय पीना सीख गईं। जब हम तुम्हारी उम्र के थे तब चाय को दवा ही समझते थे। तुम सबको देखते हैं कि दाल-रोटी न मिले तो न सही पर चाय मिलनी ही चाहिए। यह कह कर प्याले को मुँह के सामने रख एक चम्मच मुँह में डाला। आँख मूँद कर कहा—वाह !

सुधा ने एक प्याला भाई के आगे रख दिया। तीसरे प्याले के सम्बन्ध में बोली—तो यह प्याला क्या होगा ?

बलदेव बाबू प्याले को लालच-भरी दृष्टि से देखकर बोले—"वह नष्ट होगा, उससे तो यही अच्छा है कि मैं ही उसे पी लूँ। अच्छा लाओ—रख दो।" तब सुधा मुस्कराकर टेबल पर प्याला रख के ख़ाली थाली लेकर चली गई।

पहला प्याला ख़ाली करके दूसरा प्याला लेकर बलदेव बाबू ने कहा—नशा। यह एक भारी नशा ही है। जितनी ही कम पी जावे उतना ही अच्छा है। कितने ही आदमियों को तो इतनी चाय पीते देखा गया है कि वे चार चार पाँच पाँच प्याले तक पी जाते हैं। मैं तो सवेरे एक प्याला और साँझ को एक प्याला पीता हूँ। कभी कभी एक प्याले की जगह दो हो जाते हैं। चाय के विषय में किसी ने एक दोहा क्या ही अच्छा कहा है—

इस असार संसार में, नहिं चाहूँ धन-मान।
चाय एक प्याला मिले, जो मोहिं साँझ बिहान॥

धन-मान नहीं चाहिए; चाहिए सिर्फ़ एक प्याला चाय—सुबह और शाम को। वाह! बहुत ठीक कहा। इसी को कवि की अन्तर्दृष्टि कहनी चाहिए। एक अच्छा क़िस्सा याद आ गया है, कहता हूँ सुनो। यह कहकर बलदेव बाबू ने दूसरे प्याले को भी ख़ाली करके रूमाल से मुँह पोंछ कर निगाली को हाथ में लिया।

इसी समय सुधा आकर बोली—माँ पूछती है, क्या एक प्याला चाय और पीजिएगा?

बूढ़े ने कहा—अब एक और प्याले की क्या ज़रूरत है? पूरे दो प्याले तो पी चुका हूँ। ज़्यादा चाय पीना अच्छा नहीं। हाँ, क्या कह रहा था, वह क़िस्सा कहता हूँ, सुनो।

क़िस्से का नाम सुनकर सुधा द्वार के समीप एक आराम-कुरसी पर बैठ गई।

दो एक बार धुआँ खींच कर बलदेव बाबू ने कहानी सुनाना आरम्भ किया—

"मैं उस समय मिर्ज़ापुर ज़िले में डिपुटी कलेक्टर था। देहात में दौरे पर गया था। मौसम गरमी का था। कड़ी गरमी पड़ रही थी। दिन में लू चलती थी। दिन को कहीं जाना-आना असम्भव था। इसी से मैं रात को सफ़र करता था। एक रात को मैं गङ्गा की धार से जा रहा था। दो नावें थीं। एक

पर मैं था और एक पर अर्दली का चपरासी और मुशी लोग। खूब चटकीली चाँदनी छिटकी हुई थी। सन् सन् हवा बह रही थी। आधी रात का समय था। किनारे के पास ही पास होकर नावें जा रही थीं। एक जगह, किनारे के पास ही, बहुत बड़ा बड़ का पेड़ था। उसके नज़दीक आते ही मनुष्य की कुछ गुनगुनाहट सुन पड़ी। नाव रोकवा कर मैंने पूछा—"कौन है?" पर कुछ उत्तर नहीं मिला। सिर्फ़ एक अस्पष्ट शब्द सुन पड़ा—'या अल्ला! जान गई।' सोचा, क्या हुआ है? कोई इसे काट-कूट कर यहाँ फेंक तो नहीं गया है? या बीमार होकर मर तो नहीं रहा है? नाव को किनारे लगा-कर हम लोग उतरे। उस आदमी के पास जाकर देखा, तो एक बार वह उठ बैठता है और फिर लेट जाता है और साथ ही कराहता भी है। कोई मुसलमान फ़क़ीर था। वहाँ दूर तक मैदान था। कहीं कोई गाँव या घर नज़र नहीं आता था और न उसके पास ही कोई मनुष्य था। बालू के ऊँचे ऊँचे टीले नज़र आते थे। खूब सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने पूछा—'तुम्हें क्या हुआ है? ऐसा क्यों कर रहे हो?' मेरे अर्दली ने भी पूछा, पर कुछ उत्तर नहीं मिला। वह सिर्फ़ 'या अल्ला—या अल्ला' कह कर कराह रहा था। हैज़ा या प्लेग होने का कोई लक्षण नहीं देखा। शरीर पर हाथ रखकर देखा तो देह भी ठंडी थी। ज्वर नहीं था। मैंने अर्दली से कहा—पीने को इसे थोड़ा सा पानी दो। कदाचित् इसे प्यास लगी

हो। उसने पानी ला दिया किन्तु फ़क़ीर ने उसके हाथ से गिलास को हटा दिया। मेरे साथ में बूढ़ा पेशकार भगवत-सहाय था। वह अफ़ीम खाता था। उसने कहा—'हुज़ूर, यह अफ़ीमची मालूम होता है। अफ़ीम न मिलने से इसकी यह दुर्दशा हुई है।' यह कहकर उसने अपनी जेब से अफ़ीम की डिबिया निकाल करके उसके मुँह में थोड़ी सी अफ़ीम डाल दी। मुँह में अफ़ीम का स्वाद पाते ही उसने दोनों हाथों से पेशकार का हाथ ख़ूब ज़ोर से पकड़ लिया। पेशकार की उँगली में कुछ अफ़ीम लगी रहने के भ्रम से वह उसे चाटने लगा। तब कहीं उसकी जान में जान आई। वह सँभल कर उठ बैठा। अब उस की छटपटाहट या कराहना कुछ नहीं रहा। बात की बात में सब बन्द हो गया। आख़िर उसने कहा—"बाबा जीते रहो। आज तुमने मुझे जो ख़ुशी बख़्शी है दुनिया में उसकी बराबरी नहीं हो सकती। अगर अभी कोई मुझको दिल्ली का तख़्ते-ताउस देना चाहे तो मैं उसे नाचीज़ समझ कर लेने से इनकार कर दूँ।" हम लोग विस्मित हो रहे। इसके बाद उसने उठकर हम लोगों को सलाम किया। फिर वह उस विस्तृत मैदान में ग़ायब हो गया। अमल ऐसी ही चीज़ है। धन-मान नहीं चाहता—वह फ़क़ीर दिल्ली का तख़्त भी नहीं चाहता था।

क़िस्सा सुन कर मोती और नारायण दोनों हँसने लगे। अब वृद्ध कमरे के चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर बोले—सुधा, सुधा, कहाँ गई?

सुधा कहानी सुनने बैठी थी सही, किन्तु जब उसने देखा कि यह तो पुराना सुना हुआ क़िस्सा है तब वह उठकर चली गई थी। पिता के पुकारने से वह फिर आकर बोली—क्या है बाबू जी ?

बलदेव—तब तूने क्या पूछा था ?

"कब ?"

"यही कुछ देर पहले आकर क्या कहा था ? मैं और चाय पीऊँगा या नहीं, शायद यही पूछा था ? अगर हो तो ले आ। बहुत नहीं, सिर्फ़ एक प्याला। बहुत सख़्त नहीं करना।" सुधा हँसकर चली गई।

बलदेव बाबू ने मोती से कहा—मैंने जो कहा, "बहुत सख़्त नहीं करना," उसका अर्थ तुमने समझा ?

मोती—जी नहीं।

"पहले मेरा एक नौकर रोज़ चाय बनाता था। चाय तेज़ हो जाने पर कहता था, आज बड़ी सख़्त हो गई। उसकी दिल्लगी के लिए हम लोगों ने भी सख़्त कहना शुरू कर दिया था। अब अभ्यास के वश होकर हम लोग भी यही बोलते हैं।"

सुधा एक प्याला चाय और ले आई। बलदेव ने कहा—बेटी, आज कुछ महाभारत पढ़कर सुनाओ।

सुधा महाभारत ला, पिता के पास बैठ कर पढ़ने लगी।

—

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

उस रात को शयन-गृह में जाकर नारायण ने अपनी स्त्री से पूछा—तुम्हें मोतीलाल कैसा जान पड़ा ?

सुशीला ने धीरतापूर्वक कहा—ज़रा कड़ुवा।

नारायण एकाएक अपने मुँह पर भय का भाव प्रदर्शित कर हाथ से पत्नी का चिबुक धर कर उसके होठ को बड़े ध्यान से देखने लगा।

सुशीला—क्या देख रहे हो ?

स्त्री का चिबुक छोड़ ज़रा पीछे हट कर नारायण उदासी के साथ सिर झुका कर बोला—छिः छिः, यह क्या किया ? उसे खा डाला ? इतनी मेवा-मिठाई, हलुवा-पूरी खाने से भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ ! आख़िर मेरे मित्र को खा ही डाला ? अब भी तेरी डाढ़ों में उसका लहू लगा है। हाय ! हाय !

यह सुनकर सुशीला हँसते हँसते लोट गई। चाबियों के गुच्छे सहित उसके आँचल का छोर कन्धे से खिसक कर कुरसी के नीचे गिर पड़ा। कपड़े सँभाल कर वह कृत्रिम कोप-युक्त स्वर से बोली—ख़ूब कहा, मैं राक्षसी हूँ ? मैं मनुष्य खाती हूँ ?

"खाया नहीं तो कड़ुवा मीठा क्योंकर मालूम हुआ ?"

"कड़ुवा कहने से क्या मिर्च का ही कड़ुवापन समझा जाता है ? इसी बुद्धि से आप डिप्टीगिरी करेंगे ?"

नारायण मानों आश्वस्त होकर बोला—खैर, तो मेरा मित्र जीता है। खुशी की बात है। अच्छा बताओ कड़ुवा क्या है?

"आपके मित्र का हृदय बड़ा ही कठोर मालूम होता है, मानो सूखा काठ। अर्थात् वह रस-ज्ञान से रहित है।"

नारायण ने कुछ सोच कर कहा—उसका हृदय कठोर या नीरस है, ऐसी बात मैं नहीं कह सकता। बल्कि मैं यह कह सकता हूँ कि वह एक विलक्षण भाव से भरा हुआ है। किन्तु उसकी वह भाव-प्रबलता आध्यात्मिक विषय में—धर्म-सम्बन्ध में है। उसका हृदय कठोर तो नहीं पर बलवान् अवश्य है। सहसा उसे कोई डिगा नहीं सकता। वह जिसे कर्तव्य समझता है उससे वह किसी तरह विचलित नहीं हो सकता।

सुशीला ने कहा—उनकी यही धारणा है न कि विवाह करके संसारी होना अन्याय है?

"हाँ यही है।"

"अगर वे किसी कुमारी का रूप-गुण देखकर मुग्ध हो जायँ तब—"

"पहले तो—उसकी जैसी प्रकृति है उससे यही असम्भव जान पड़ता है कि वह किसी कुमारी को देखकर उसे चाहेगा। दूसरे, यदि यह होगा भी तो वह मन के इस भाव को हृदय की एक दुर्बलता समझेगा और जैसे हो सकेगा वह उस भाव को मन से निकाल कर दूर कर देगा।"

"जो उनसे यह न हो सके तो?"

"यदि उससे यह न होगा तो वह आप ही वहाँ से हट जायगा।"

सुशीला ने ज़रा हँसकर कहा—स्थानत्यागेन दुर्जनः ? अर्थात वे स्थान त्याग कर भाग जायँगे।

"मेरा विश्वास है, वह यही करेगा।"

सुशीला आप ही आप हँसने लगी। फिर सिर हिला कर बोली—हूँ हूँ।

"वाह। एक 'हूँ' से ही मेरी इन बातों का प्रतिवाद किया ? मैंने अपने मित्र के सम्बन्ध में जो राय ज़ाहिर की है, क्या वह तुम्हें मंज़ूर नहीं ?"

"हर्गिज़ नहीं। आप समझते हैं, आपके अनोखे मित्र मोती बाबू प्रेम नामक रोग से अपने को बचा कर चल सकते हैं। पर मेरा विश्वास है, नहीं चल सकते।"

"नहीं चल सकते ?"

"नहीं, कभी नहीं। मान लो, हमारी यही सुधा है। देखने-सुनने में भी अच्छी है। स्वभाव भी इसका कोमल है। क्या मोती बाबू इससे स्नेह किये बिना रह सकते हैं ?"

नारायण ठहाका मार कर हँसने लगा और बोला—असम्भव। तुम्हारी सुधा तुम लोगों को चाहे जितनी मीठी लगे, मोती के नज़दीक यह सुधा निम्बरस के सिवा और कुछ नहीं।

"अच्छा, अगर मैं उन्हें मीठी लगा सकूँ तो ?"

"पगली, तू कैसे मीठी लगावेगी ?"

सुशीला अपने विशाल नेत्रों को नचा कर बोली—लगा सकूँगी—ज़रूर लगा सकूँगी—मैं यह विद्या जानती हूँ।

"तुम जादूगरनी तो नहीं हो ?"

"मैं जादूगरनी हूँ—क्या अब भी आप नहीं जानते ?"

नारायणप्रसाद ने पत्नी को गले से लगाकर कहा—तुम बेशक जादूगरनी हो किन्तु मोती के ऊपर तुम्हारा एक भी जादू नहीं चलेगा। वह आपही जादूगरों का उस्ताद है, जादूप्रूफ़ है।

"कैसे उस्ताद हैं, यह फिर देखा जायगा। अगर मैं उन्हें सुधा के प्रेम-पाश में फँसा सकूँ तो ?"

"कभी नहीं फँसा सकोगी। वह बड़ा पक्का आदमी है।"

"अच्छा आप देखते रहिए। मैं सुधा के प्रेम-समुद्र में उन्हें गोते खिलाती हूँ या नहीं। बशर्ते वे कुछ दिन यहाँ ठहरें।"

"क्यों झूठ बक रही हो। तुमसे कुछ न हो सकेगा।"

"अच्छा बाज़ी रखिए।"

"रक्खो।"

"अगर मैं काम सिद्ध कर लूँ तो मुझे एक पियानो ले देना।"

"अच्छा, ख़रीद दूँगा। यदि तुमसे न हो सके तो तुम मुझे क्या दोगी ?"

सुशीला हँसते हँसते सिर हिला कर बोली—मैं एक बहुत बढ़िया चीज़ दूँगी।

"क्या ? नाम बताओ।"

"मैं आपको एक रेशमी रूमाल ख़रीद दूँगी।"

नारायण ने हँसकर कहा—अहा ! तुम तो बड़ी दान-शीला हो ! लेने के समय तो पियानो और देने के समय सिर्फ़ एक रूमाल ! अच्छा, यदि उस रूमाल में प्रेम बाँध कर दे सको तो लेने योग्य हो सकता है।

"यही सही, बशर्ते कि उसे आप अपने हृदय में स्थान दें। किन्तु मेरी जादूगरी के प्रयोग में आपको भी कुछ सहायता देनी होगी।"

"मैं—मैं क्या सहायता दूँगा ?"

"और कुछ नहीं, मैं जब जो करने को कहूँगी वह करना होगा।"

"प्यारी, क्या यह नई बात है। ब्याह होने ही के समय से तो तुम मुझे उठा-बिठा रही हो।"

"इस दफ़े सिर्फ़ उठने-बैठने ही से काम नहीं चलेगा। कुछ वक्तृता भी देनी होगी।"

"वक्तृता ? वक्तृता देने से क्या होगा ? डिपटीगरी पाने की जो आशा है वह भी वक्तृता देने से जाती रहेगी।"

"मैं आपसे राजनैतिक वक्तृता देने को नहीं कहती, प्रेम-नैतिक वक्तृता की बात कहती हूँ। इसमें भावी डिपटी बाबू के डरने की कोई वजह नहीं है। मैंने जो मतलब की बात सोची है वह कुतूहल से भरी हुई है। एकबारगी उन्नीसवीं शताब्दी के शेक्सपीयर के योग्य ही समझिए।"

"क्या बात सोची है, सुनूँ भी तो।"

"मैं अनेक उपायों से, अनेक कौशलों से मोती बाबू के मन में यह विश्वास उत्पन्न कर देना चाहती हूँ कि सुधा उनको हृदय से चाहती है। इससे यही फ़ायदा होगा कि मोती भी सुधा के साथ प्रेम का भाव दिखलाना आरम्भ करेगा। अकेला चुम्बक ही लोहे को अपनी ओर नहीं खींचता किन्तु लोहा भी चुम्बक को खींचता है।"

यह सुन कर नारायण कौतूहलयुक्त होकर बोला—क्या कौशल करना चाहती हो?

"कल आप मोती बाबू से बात-चीत के सिलसिले में कहिएगा, सुधा चाय की बड़ी भक्त थी पर न मालूम वह एका-एक क्यों प्रतिज्ञा कर बैठी है कि अब से वह चाय नहीं पीवेगी।"

नारायण ने चौंक कर कहा—हा हन्त! तुम मुझसे झूठ बुलवाना चाहती हो? यह तो प्रेमनैतिक वक्तृता नहीं है—एक-दम दुर्नीतिक है।

"नहीं, नहीं, झूठ बोलना न पड़ेगा। बाबूजी के आज के व्याख्यान से सुधा को बड़ी ग्लानि हुई है। उसने कहा है कि मैं इस जन्म में फिर कभी चाय पीने का नाम न लूँगी। मोती बाबू समझेंगे, उन्हीं की देखादेखी सुधा ने भी चाय पीना छोड़ दिया है।"

नारायण ने कहा—उसके महान् दृष्टान्त से सुधा यदि चाय छोड़ दे, दूध-चाय छोड़ दे और क्रम क्रम से केटली (वह पात्र जिसमें चाय के लिए पानी गरम किया जाता है), प्याला

छूना छोड़ दे तो चाय बेचारी फिर कहाँ जाकर खड़ी होगी ? जो हो, और क्या जाल रचा है ?

"दो दिन के बाद कहिएगा, न मालूम सुधा को क्या हो गया है, रात-दिन हाथ पर गाल रक्खे बैठी रहती है। पूछने पर भी नहीं बोलती। न मालूम मन ही मन क्या सोचती रहती है।"

"यह भी तो झूठ बोलना ही होगा। सुधा को इतना शीघ्र काव्य-रचना-रोग पकड़ेगा, ऐसा कोई लक्षण तो दिखाई नहीं देता।"

"आपको यह भी झूठ कहना नहीं पड़ेगा। इसकी सत्यता का भी मैं उपाय कर दूँगी। मैं उससे एक कठिन पहेली पूछ कर कहूँगी, 'एक दिन के भीतर यदि इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर दोगी तो तुम एक सिलाई का बक्स इनाम पाओगी।' मैं आपकी कोई बात झूठ न होने दूँगी। इसके लिए आप चिन्ता न करें।"

नारायण ने हँसकर कहा—ओफ़ ! स्त्रियों की चतुराई का क्या कहना है। यही या और भी कुछ करना होगा ?

"अभी बहुत कुछ करना होगा। घबराइए नहीं। दूसरे दिन आप बड़ी ही सरलता से मोती बाबू के साथ बातें करते करते कहें, क्या कहूँ आज एकाएक छत के ऊपर जाकर देखा कि सुधा पैर फैलाये बैठी है, और गोद में एक लाल कपड़े की जिल्द-बँधी कापी लिये पेन्सिल से कविता लिख रही है। भाव में

इतना अधिक डूबी थी कि उसने मेरे पैरों की आहट नहीं सुनी। कहीं उसके विचारों का ताँता टूट न जाय, इस भय से मैं पैरों की आहट बचा कर नीचे उतर आया।"

नारायण—इस बात को सत्य करने के लिए शायद तुम उससे इसाप-नीतिवाली बाघ-बगले की कहानी कविता में लिख डालने के लिए कहोगी।

"आपकी बुद्धि की बलिहारी है। बाघ और बगले की कविता तो मौजूद ही है। उसे मैं क्यों लिखाऊँगी? मैं कहूँगी—'अगर तिलोत्तमा कविता बनाना जानती तो उस रात में मन्दिर से लौट आने पर भीतर से किवाड़ बन्द कर अपने शयन-गृह में बिछौने पर बैठी बैठी क्या लिखती—यह लिखकर दिखाओ। सिर्फ़ मन का भाव लिखना; मनुष्य के या स्थान के नाम का अथवा घटना का उल्लेख करना आवश्यक नहीं। यदि इस विषय पर एक पेज की कविता लिख सको तो तुम को एक 'दुर्गेशनन्दिनी' इनाम में दूँगी।' इस तरह बङ्किम बाबू की सभी नायिकाओं पर सुधा से कुछ न कुछ लिखवाऊँगी और कभी कभी वह कविता-पुस्तक भूल से मोतीलाल के हाथ में न जा पहुँचेगी—यह भी मैं नहीं कह सकती। किन्तु आप लाल कपड़े की जिल्दबँधी कापी और पेन्सिल से लिखी हुई कविता, ये दोनों बातें कहना न भूलिएगा। मेरे पास ऐसी एक सादी कापी है, वही उसको दूँगी। तब उसके पहचानने में मोती बाबू को कदापि धोखा नहीं होगा।"

नारायण कुछ देर तक चुप रह कर सोचने लगा, फिर बोला—बस, यही या और भी कुछ कौशल की बात सोची है ?

नारायणप्रसाद के कण्ठ-स्वर से सुशीला के उत्साह में बाधा पहुँची। तथापि उसने कहा—समयानुसार और भी कुछ अवश्य करना होगा। एक कौशल करने की बात और भी सोच रक्खी है। करूँगी या नहीं, अब भी उसका निश्चय नहीं कर सकी। वह यही कि कविता आदि मोती बाबू के दृष्टिगत हो जाने पर सुधा के कान में कहूँगी कि मोती बाबू के साथ तुम्हारे ब्याह की बातचीत हो रही है। इसका फल यह होगा कि मोती बाबू को देखते ही सुधा की आँख नीची हो जायगी, लाज से दोनों गाल लाल हो जायँगे। इससे मोती को दृढ़ विश्वास हो जायगा कि सुधा मन ही मन मुझे चाहती है। कहिए, आप इस युक्ति को पसन्द करते हैं ?

नारायणप्रसाद ने दृढ़ स्वर से कहा—नहीं, छिः।

"पहले मैंने जिन युक्तियों की बातें कहीं हैं, क्या आप उन्हीं को यथेष्ट समझते हैं ?"

नारायण ने पूर्ववत् कहा—नहीं।

"तब ?"

नारायण कुछ न बोला। सुशीला समझ गई कि उसके ये सब कौशल स्वामी को पसन्द नहीं आये। तो भी वह हँसकर बोली—आप गूँगे की तरह चुप क्यों हो रहे ?

नारायणप्रसाद के मुँह पर से चिन्ता का बादल धीरे धीरे

हट गया। वह बड़े प्यार से पत्नी के दोनों हाथ पकड़ कर बोला—छिः, यह सब छलछन्द करना छोड़ दो।

सुशीला अपनी उदासीनता-भरी आँखें नीची कर चुप हो रही।

नारायण ने कहा—नहीं, यह सब करना ठीक नहीं है। मेरी बहन क्या बाढ़ के पानी में बह कर आई है जो उसके ब्याह के लिए ऐसा जाल बिछाया जाय? हम लोग कपट-कौशल का आश्रय क्यों लेंगे?

सुशीला ने कहा—सुधा का किसी तरह ब्याह हो जाय, इस मतलब से मैंने यह कौशल करना नहीं सोचा था बल्कि खेल के मतलब से ही मैं ऐसा करना चाहती थी। किन्तु अब आपके कहने से मैं भी चाहती हूँ—इस तरह का खेल अच्छा नहीं।

नारायणप्रसाद ने स्त्री के कन्धे पर अपने दोनों हाथ रख कर कहा—मैं अब समझ गया। तुमने शेक्सपीयर की कहानी पढ़ कर व्यवहारतः उसकी परीक्षा करने ही के लिए यह खेल खेलना चाहा था।

"हाँ, यह भी अधिकांश में सत्य है।"

"ओफ़! स्त्रीशिक्षा का क्या भयङ्कर परिणाम है!" यह कह कर नारायण हँसने लगा।

सुशीला ने उस हँसी में योग देकर कहा—चलो जाओ। स्त्रीशिक्षा की निन्दा करते हो! सोचे हुए ऐसे अच्छे खेल को आपने मिट्टी में मिला दिया। मैंने अपने जीवन में एक सच्ची

औपन्यासिक लीला देखने की लालसा की थी—लेकिन आपके अनुत्साह से वह पूरी नहीं होने पाई। ऐसे निरुत्साही ठंडे दिमाग़वाले स्वामी के साथ गृहस्थी चलाना एक कठिन समस्या है। यह कह कर सुशीला ने हँसते हँसते स्वामी की छाती में अपना मुँह छिपा लिया।

नारायण ने कहा—देखो, यदि ईश्वर ने कृपा की तो कपट का सहारा न लेने पर भी तुम सच्चे उपन्यास की लीला देख सकोगी। यद्यपि अभी इसकी आशा बहुत कम है। यदि यों ही सुधा को देखकर मोती का मन आकृष्ट हो तो शायद वह ब्याह करने को राज़ी भी हो जाय। किन्तु एक भय है—यह पहले ही कह चुका हूँ। अगर वह अपने मन में किसी तरह की चञ्चलता का अनुभव करेगा तो कदाचित् भाग जायगा।

सुशीला ने कहा—भाग कर जायँगे कहाँ? इस फन्दे में अगर कोई एक बार फँस जाता है तो भागने से क्या छुट्टी मिलती है? फिर आपही आकर फन्दे में फंसता है। मैं श्रीमती सुशीला रानी आशीर्वाद देती हूँ, ईश्वर करे जिसमें उन्हें भागने की नौबत आवे।

उनतीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सबेरे मोतीलाल ने सुना कि कल बलदेव बाबू का जन्मदिन है। इसके उपलक्ष्य में कुछ उत्सव की आयोजना हो रही है। गाँव से दो कोस दूर नदी के किनारे एक बहुत साफ़-सुथरा जङ्गल है। सब लोग वहीं जाकर वन-भोजन करेंगे। साथ चलने के लिए बलदेव बाबू ने मोती बाबू से आग्रह किया। मोतीलाल राज़ी तो हुआ परन्तु उसे यह व्यवहार जी से अच्छा नहीं लगा। वह सोच रहा था—इन लोगों की सभी बातें अँगरेज़ी तरीक़े की दिखाई देती हैं।

आठ बजे के भीतर ही दो बैलगाड़ियों पर लाद कर तम्बू, क़नात, शामियाना और टेबल-कुरसी आदि चीज़ें भेजी गईं। नौकर लोग आज ही वहाँ जाकर तम्बू और शामियाना खड़ा करेंगे। खेमे को सजाने के लिए एक सन्दूक़ में भर कर रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाएँ और डोरी आदि सभी सामान भेजा गया। अशोक और देवदारु के पत्ते वहीं यथेष्ट मिल जायँगे। दोपहर के बाद नारायणप्रसाद स्वयं जाकर खेमे को सजावेगा।

नारायणप्रसाद जब मोती बाबू के पास आया तब मोती ने कहा—तुम लोगों की सभी चाल अँगरेज़ों की-सी देखता हूँ।

नारायण—अँगरेज़ों का अनुकरण तो कुछ अवश्य किया

जाता है। उत्सव करना वे लोग ख़ूब जानते हैं। विशेषकर उनके जन्म-दिन का उत्सव मुझे बहुत अच्छा लगता है।

"खेल-तमाशे के सिवा इस श्रेणी के उत्सव की और क्या सार्थकता है?"

"है क्यों नहीं? परस्पर प्रेम का विनिमय होता है। केवल आमोद-प्रमोद ही सही, तो यह भी साधारण लाभ नहीं है।"

मोतीलाल ने मन ही मन इसका प्रतिवाद किया। पर कुछ बोला नहीं। उसने सोचा, इस मनुष्य-जीवन को तुच्छ खेल-तमाशे में बिता देना क्या जीवन का अपव्यय करना नहीं है?

मोती को चुप देखकर नारायण ने कहा—प्रेम का या प्रसन्नता का यह विनिमय (बदलौवल) क्या तुम्हें अच्छा नहीं मालूम होता?

मोती ने कहा—उत्सव के सिवा क्या प्रीति का विनिमय होना सम्भव नहीं है?

नारायण ने हंसकर कहा—मैं तुम्हें चाहता हूँ या तुम मुझे चाहते हो—यह समझना या यह धारणा ही यथेष्ट नहीं है। मनुष्य के मन को केवल इतने ही से सन्तोष नहीं होता। इसी से कभी कभी वह ऐसा एक उपलक्ष्य ढूँढ़ता है, जिसमें हृदय के उस छिपे हुए प्रेम को साकार देख सके। यह सब उत्सव उसी प्रीति की साकार पूजा है।

मोतीलाल ने हँसकर कहा—ठीक है। मैं साकार-पूजा का विरोधी नहीं हूँ।

इतने में नहाने-धोने का समय आ गया। भोजन के अनन्तर कुछ देर तक विश्राम करके नारायणप्रसाद घोड़े पर सवार हो उस जंगल को गया। खेमा खड़ा कर उसकी सजावट का काम आज साँझ के पहले ही पूरा कराना है। क्योंकि कल सबेरे चाय पीकर नाव की सवारी से ये लोग यात्रा करेंगे। वहाँ का सब काम ठीक करके नारायणप्रसाद शाम को फिर घर लौट आवेगा।

दोपहर के बाद सुधा और उसका छोटा भाई वीरेन्द्र कोठे पर जा एक कमरे में बैठ कैंची से ढेरों रङ्गीन काग़ज़ काट रहे थे। लाल, नीला, हरा, सफ़ेद, बैंगनी आदि भाँति भाँति के काग़ज़ थे। उन्हीं को जोड़ कर गोल गोल बन्दनवार की शृंखला बनेगी। वह तम्बू के भीतर और द्वारों में लटकाया जायगा। सुशीला बैठकर उन कटे हुए रंगीन काग़ज़ के बलयों को जोड़ जोड़ कर बन्दनवार बना रही थी।

काग़ज़ काटना समाप्त होने पर सुधा कैंची को उँगलियों के बीच हिलाते हिलाते बोली—अच्छा भाभी, एक काम न करो।

"क्या ?"

"एक लाल या हरे कपड़े पर फूलों से Many Happy Returns ये अक्षर बनाये जायँ और तम्बू के द्वार पर वह कपड़ा लटका दिया जाय।"

सुशीला—वाह, यह तो बड़ा अच्छा होगा। लाल ज़मीन

पर सफ़ेद फूल बड़े ही सुन्दर लगेंगे। तुम्हें यह बात बहुत अच्छी सूझी।

"तो किन फूलों से अक्षर रचे जायँ ?"

"बेले की कलियाँ बहुत बढ़िया होती हैं। भीगे हुए कपड़े में लपेट कर रात को रक्खी जायँ तो कलियाँ कुछ खिल भी जायँगी। अच्छा यही करूँगी। पर कपड़ा कहाँ मिलेगा ?"

"मेरे पास लाल शालू का एक टुकड़ा है वही ला देती हूँ, तुम बैठो।" यह कहकर सुशीला गई और कुछ देर के बाद कपड़े का टुकड़ा हाथ में लिये आई और बोली—लो, यह खूब लम्बा-चौड़ा है, अच्छा होगा। पहले पेन्सिल से अक्षर लिख लो। मैं किसी को फुलवाड़ी भेज कर बेले की कलियाँ तोड़वा मँगाती हूँ।

सुधा ने कहा—मैं ही किसी को फूल लाने भेजती हूँ। तुम इस कपड़े पर पेन्सिल से अक्षर लिख दो। मेरा लिखा तो अच्छा होगा नहीं। सतर टेढ़ी हो जायगी।

भावज ने हँसकर कहा—हाँ, हाँ, तुम्हारा लिखा टेढ़ा होगा और मेरा लिखा सीधा ?

सुधा ने ज़िद पकड़ कर कहा—नहीं भाभी, सच कहती हूँ, तुम्हारा ही लिखा अच्छा होगा। तुम बहुत सुन्दर लिखोगी। तुम्हीं को लिखना होगा।

"नहीं, नहीं, बिगड़ जायगा। अक्षर देख देखकर लोग

हँसेंगे। इससे थोड़ी देर ठहरो। अपने भाई को आने दो। वही लिख देंगे।

"भैया कब आवेंगे। उनको आते आते साँझ हो जायगी। तब उनके लिख देने पर मैं कलियाँ कब जमाऊँगी? और भी कितने ही काम पड़े हैं।"

सुशीला ने कुछ सोच कर कहा—तब तो यह काम न होगा। अच्छा एक उपाय है। किन्तु उसे तुम नहीं कर सकोगी, डरोगी।

"क्या उपाय है?"

सुशीला ने सिर हिला कर कहा—"नहीं, तुमसे नहीं होगा। तुममें उतना साहस कहाँ है?"

"मुझसे क्यों नहीं होगा? तुम उपाय तो बताओ—फिर देखना मुझसे होता है या नहीं।"

"मोती बाबू तो यहीं हैं। उनसे जाकर यदि कह सको, तो वे तुरन्त लिख देंगे। किन्तु तुम तो बड़ी डरपोक हो।"

सुधा ने होंठ फुला कर कहा—ओफ़—यह बात इतनी देर से क्यों नहीं कहती थीं? अभी जाकर लिखा लाती हूँ। मैं किसी से नहीं डरती। यह कहकर सुधा गर्व से उठ खड़ी हुई। तूल का टुकड़ा हाथ में लेकर भाई से कहा—वीरेन्द्र, आ तो।

सुशीला ने कहा—ठहरो, वीरेन्द्र बाबू पहले देख आवें कि मोती बाबू कहाँ क्या कर रहे हैं।

वीरेन्द्र ने लौट कर ख़बर दी कि मोती बाबू पुस्तकालय के पीछे के बरामदे में बैठे संस्कृत की पोथी पढ़ रहे हैं।

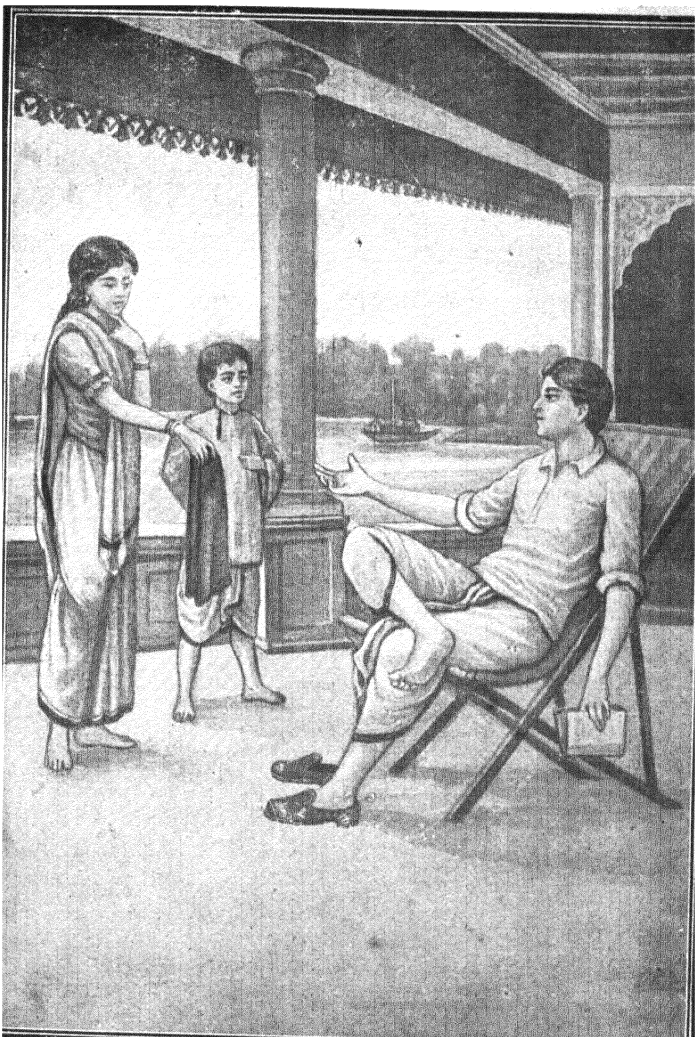
सुशीला ने पूछा—वहाँ और कौन है ?

"कोई भी नहीं।"

तब वीरेन्द्र को साथ लेकर सुधा अज्ञात भाव से कलिकाल के महादेव का ध्यान भङ्ग करने के लिए चली।

मोती जिस बरामदे में बैठकर ग्रन्थ पढ़ रहा था उसके नीचे कुछ दूर पर कल कल शब्द करती हुई नदी बह रही थी। पानी के ऊपर सारस पक्षियों का झुण्ड इधर-उधर घूम रहा था। इस सुनसान जगह में बैठ कर मोतीलाल बम्बई का छपा हुआ कठोपनिषद् पढ़ रहा था।

सुधा और वीरेन्द्र जब बरामदे में जा खड़े हुए तब मोती पढ़ने में ऐसा दत्तचित्त था कि उन दोनों के आने की आहट उसे नहीं सुन पड़ी। मोती बाबू की चश्मा-चढ़ी आँखें और निश्चलभाव देख कर सुधा के मन में कुछ कुछ भय होने लगा। उसने देखा कि भाई नारायणप्रसाद के साथ इस मनुष्य का स्वभाव नहीं मिलता। भाई का मिज़ाज जैसे हँसी-ख़ुशी से भरा रहता है वैसे इस मनुष्य का नहीं। मेरा प्रस्ताव सुनकर ये अवश्य ही उसे बच्चे का खेल समझेंगे और अपमान के साथ लौटा देंगे। क्या करूँ ? जब आ गई हूँ तब यों ही लौट जाने से भाभी बहुत हँसेगी। कहेगी—मैंने तो पहले ही कह दिया था। मैं सचमुच ही भीरु कहलाने लगूँगी। भीरुता का अपवाद मेरे



मोती बम्बई का छपा हुआ कठोपनिषद् पढ़ रहा था।—पृ० ३०६

माथे मढ़ा जायगा। इसलिए साहस करके उसने काँपते हुए स्वर में कहा—मोती बाबू!

बालिका के कण्ठ-स्वर से चौंक कर मोती ने सिर उठाकर देखा।

सुधा ने चकित हरिणी के सदृश दोनों नेत्र मोती के प्रति स्थापित करके कहा—मोती बाबू, आज भैया घर में नहीं हैं। इसलिए आपको कुछ कष्ट देने आई हूँ।

मोती ने पुस्तक बन्द करके पूछा—क्या?

सुधा ने काँपते हुए हाथ से तूल का टुकड़ा दिखा कर कहा—यह कपड़ा लाई हूँ—इस पर Many Happy Returns of the Day लिख दीजिए।

दिहात में रहनेवाली लड़की के मुँह से अँगरेज़ी भाषा का ऐसा शुद्ध उच्चारण मोती ने आज पहले ही पहल सुना। सुन कर उसके हृदय में एक अपूर्व आनन्द का भाव झलक उठा। किन्तु उसे क्या करना होगा, यह अच्छी तरह नहीं समझा। इसलिए उसने कहा—कष्ट कुछ नहीं। बतलाओ मुझे क्या करना होगा।

सुधा के मन का सन्देह यह जान कर दूर हो गया कि मोती का स्वर हेडमास्टर साहब की तरह कठोर नहीं है। वह उसके भाई के कण्ठस्वर की ही भाँति कोमल और स्निग्ध है। भय न रहने से उसे साहस हो गया। उसने कहा—कल बाबू जी का जन्मदिन है। कल हम सब उनके साथ नाव की

सवारी से वन-भोजन करने जायँगी। वहाँ खेमा खड़ा किया गया है। इस कपड़े पर बेले की कलियाँ जमा कर लिखूँगी—Many Happy Returns of the Day. फिर इसे खेमे के दरवाजे पर टँकवा दूँगी। पेन्सिल से अक्षर अङ्कित कर लेने पर फूल जमाने में बड़ी सुविधा होगी। लिखने के लिए भाभी से कहा तो उसने कहा, लकीर सीधी न होगी, अक्षर बिगड़ जायँगे। इसी से आपके पास आई हूँ।

मोती ने बालिका के हाथ से कपड़ा ले उसे देख भाल कर कहा—अच्छा, मैं अभी लिखे देता हूँ। किन्तु एक रूल चाहिए।

"अच्छा" कह कर सुधा बड़ी उमङ्ग से रूल लाने गई।

रूल और पेन्सिल लाकर सुधा ने मोती के हाथ में दे दिया। तब तीनों लाइब्रेरी के भीतर गये। मोती ने कपड़े को टेबल के ऊपर बिछा कर कहा—आलपीन है? कपड़े को टेबल के ऊपर तान कर आलपीन के द्वारा अटका रखने से अच्छा होता।

"आलपीन देती हूँ" कह कर सुधा ने पिता की दराज़ खोल कर आलपीन की डिब्बी निकाल दी।

टेबल पर कपड़े को आलपीन से कसते कसते मोती बोला—देखो, मेरे मन में एक बात आती है—अगर अँगरेज़ी में न लिखी तो क्या नहीं चलेगा?

"तो देवनागरी में लिखें?"

"हाँ, यही अच्छा होगा। अपनी मातृभाषा छोड़ कर हम लोग विदेशी भाषा में माँ-बाप की कुशल क्यों मनावें?"

"यही ठीक है। उस वाक्य को हिन्दी में क्या कहेंगे ? 'इस दिन का विशेष विशेष प्रत्यागमन'—नहीं-नहीं—यह ठीक नहीं हुआ, सुनने में अच्छा नहीं लगता।"

मोतीलाल ने सोच कर कहा—प्रत्येक शब्द का अनुवाद करें तब तो ऐसा होगा ही। सिर्फ़ भाव लेना होगा। अच्छा—'ईश्वर करे—' ईश्वर का नाम न लेकर कार्य आरम्भ करना ठीक नहीं। कहो, तुम क्या कहती हो ?

सुधा उत्साहित होकर बोली—हाँ, ठीक नहीं। ईश्वर करे कि यह शुभ दिन—इसके आगे कौन-सा शब्द जोड़ कर वाक्य पूरा किया जाय ?

मोती—गद्य की अपेक्षा सुनने में पद्य ही अच्छा मालूम होगा। मान लो यदि लिखा जाय—'ईश्वर करे कि यह शुभ वार'। इसके आगे एक पद और होना चाहिए।

सुधा आनन्द से उच्छ्वसित होकर बोली—ठीक हो गया—ठीक हो गया। सुनिए, कहती हूँ—आवे लौट लौट बहु बार। सुनने में भी अच्छा लगेगा—

ईश्वर करे कि यह शुभ वार।
आवे, लौट लौट बहु बार॥

हाँ मोती बाबू, क्या आप कवि हैं ?

मोती ने हँसकर कहा—कवि मैं हूँ या तुम! मैं तो पद ही न जोड़ सका और तुमने तुरन्त जोड़ दिया। कविता बनाने का यश तुम्हीं पाओगी।

सुधा हँसते हँसते बोली—नहीं, यह कैसे होगा। पहला चरण तो आपका ही है। अतः दूसरे पद पर भी आपका ही अधिकार रहा।

मोतीलाल रूल और पेन्सिल की सहायता से कपड़े पर अक्षर लिखने लगा। सुधा ने कहा—तब तक आप लिखिए, मैं फुलवाड़ी से बेले की कलियाँ तोड़वा मँगाती हूँ। यह कहकर वह चली गई। कुछ क्षण के बाद ही लौट कर कहा—मोती बाबू, अगर एकाएक भैया आ जायँ तो कृपा करके इसे छिपा लीजिएगा।

"क्यों ?"

"भैया को मैं कल चकित किया चाहती हूँ। भैया खेमा सजाने गये हैं न। वे हमारे इन कामों को नहीं जानते। भाभी को भी मना कर दूँगी कि उनसे कुछ न कहे। कल वहाँ नाव से उतर मैं झट आगे जाकर तम्बू के द्वार पर इसे लटका दूँगी। भैया पहुँच कर देखेंगे तो एकदम अवाक् हो जायँगे। सोचेंगे, कल साँझ को तो तम्बू सजाकर गया हूँ, यह कहाँ से आगया ? तब आप उनसे कहिएगा—मालूम होता है, रात को वनदेवी आकर लटका गई है।" यह कह कर मन्द मन्द मुस्कुराती हुई सुधा फिर चली गई।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे दिन बड़े तड़के ही घर के सब लोग जाग उठे। कुछ रात रहते ही बलदेव बाबू ने गरम पानी से स्नान कर डाला।

नहा कर रेशमी धोती पहनी। फिर वे राधारमण जी की पूजा करने बैठे। अपने जन्म-दिन को पहले भगवान् से आशीर्वाद लिये बिना वे आज अपने बन्धुवर्ग का अभिनन्दन ग्रहण नहीं करेंगे।

बलदेव बाबू बड़ी भक्ति से पूजा और स्तोत्र-पाठ करने लगे। उनके बेटे-बेटी आदि आत्मीयगण बाहर उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। इसी समय नारायणप्रसाद मोती को बुला लाया। मोती मन ही मन कुढ़ कुढ़ता हुआ आया। वह यह सोच रहा था कि अँगरेज़ी क़ायदे के अनुसार मुझे Many Happy Returns of the Day कह कर बलदेव बाबू से हाथ मिलाना पड़ेगा। और मेरे लिए यह बड़ा ही अप्रीतिकर होगा। क्योंकि मैं इनके यहाँ मेहमान हूँ, जो ऐसा नहीं करता तो असभ्यता होती है।—वह बड़े ही सङ्कट में पड़ कर किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा था।

किन्तु थोड़ी ही देर के बाद मोती ने जो देखा उससे उसके मन की सारी शङ्कायें मिट गईं और हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा।

पूजा समाप्त होने पर बलदेव बाबू ने सबको भीतर बुलाया। उनकी आज्ञा के अनुसार सभी ने पूजा-गृह में प्रवेश किया। बलदेव बाबू ने कहा—"तुम लोग पहले भगवान् को प्रणाम करो और मन्त्र पढ़ो।" अब वे धीरे धीरे सबसे कहलाने लगे—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो-ब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

मन्त्रोच्चारण समाप्त होने पर सभी ने ठाकुर जी को प्रणाम किया। इसके बाद अभिनन्दन की बारी आई। पहले पत्नी ने धरती में सिर टेक कर स्वामी को प्रणाम किया। "हो गया, हो गया" कह कर बलदेव बाबू ने उसका हाथ पकड़ कर उसे उठाया। उन दोनों में किसी तरह का सम्भाषण नहीं हुआ किन्तु दोनों की नेत्र-भाषा दोनों ही समझ गये। इसके बाद क्रम से नारायणप्रसाद, सुशीला, सुधा और वीरेन्द्र ने उनको प्रणाम किया। दोनों बेटों को बलदेव बाबू ने बड़े प्यार से छाती से लगाया; पतोहू और बेटी के मस्तक पर हाथ रख कर मन ही मन आशीर्वाद दिया। सबके पीछे मोती ने जाकर प्रणाम किया। उसे गले लगा कर बलदेव बाबू ने कहा—बाबू, दीर्घजीवी होओ।

इतने में सूर्योदय हुआ, सभी कमरे में जा बैठे। सुशीला और सुधा रसोई घर में गईं और दो थालियों में कई प्याले चाय तथा कई तश्तरियों में मोहनभोग रख कर ले आईं। सबके आगे चाय और मोहनभोग परोस चुकने पर मोतीलाल के सामने आकर सुशीला ने कहा—क्या आज के दिन आप एक प्याला चाय नहीं पीयेंगे ?

वह कण्ठ-स्वर ऐसा मधुर, ऐसा चित्ताकर्षक था कि मोतीलाल अपने को किसी तरह नहीं सँभाल सका, बोला—अच्छा दीजिए।

नारायणप्रसाद यह लीला देखकर मुस्कुराने लगा। उसने मन में सोचा—सुशीला सचमुच ही जादूगरनी है।

सुधा भी यह अभिनव दृश्य देख कर चुप न रह सकी। उसने पूछा—मोती बाबू, चाय कैसी बनी है ?

मोती बाबू ने मुस्कुरा कर कहा—बहुत बढ़िया।

चाय पीने के अनन्तर स्त्रियाँ डोली पर और पुरुष पैदल ही नदी के किनारे जाकर नाव पर सवार हुए। दो नावें थीं। एक पर स्त्रियाँ और दूसरी पर मर्द सवार होकर रवाना हुए।

तीसवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू के देवी-मन्दिर में जब शंख, घड़ी-घण्टे आदि विविध वाद्यों के साथ भगवती की आरती हो रही थी तब एक बार उन्होंने मन में सोचा कि जाता तो हूँ, जाऊँ भगवती को प्रणाम कर आऊँ। किन्तु बहुत आदमियों के सामने निकलने में उन्हें कुछ संकोच होने लगा। "जाता हूँ, अब जाता हूँ," करके ही रह गये, जा न सके। वे सूनी कोठरी में बैठ कर आकाश-पाताल की बातें सोचने लगे।

आरती हो जाने पर गोपीकान्त ने दीवान को बुला भेजा। उनके आने पर कहा—दीवान जी, एक विशेष कार्यवश मुझे आज ही रात को काशी जाना होगा।

दीवान जी विस्मित होकर बोले—आज ही रात को ?

"हाँ, आज ही जाना होगा। घण्टे दो घण्टे के भीतर ही रवाना हो जाऊँगा। गाड़ी तैयार करने के लिए कह दीजिए।"

दीवान बूढ़े थे। अमावास्या की रात को बाबू घर से बिदा होंगे, यह सुनकर वे चकित हो रहे। बड़ी देर तक चुप रह कर बोले—आप आज के दिन ठहर कर कल जायँ तो नहीं हो सकता !—आज अमावास्या तिथि—

बाबू ने कहा—अमावास्या होने से क्या होता है ? आज यात्रा का दिन अच्छा है। भगवती की पूजा का दिन

है। डायरी देख ली है। आज रात को नव बजे बाद यात्रा शुभ है। "पश्चिमे नास्ति।" काशी तो यहाँ से पश्चिम नहीं है। बहुत ज़रूरी काम है, इसी से जा रहा हूँ। काशी के समीप मेरे एक मित्र का वाटिका-भवन है। उसकी क़ीमत कम से कम दस हज़ार रुपया है। वह बड़े सस्ते दाम में बिक रहा है। पानी के भाव मकान बिकता है। दो हज़ार में ही मिल सकता है। काशी जाने-आने का ताँता तो प्रायः लगा ही रहता है। वहाँ जाने पर दूसरे के मकान में ठहरना पड़ता है या भाड़े पर मकान लेकर रहना पड़ता है। इसी से बहुत दिनों से चाहता हूँ कि वहाँ ठहरने के लिए अपना एक ख़ास मकान हो जाय। यह अच्छा सुयोग हाथ आया है। खज़ाने में से दो हज़ार रुपया मुझे दीजिए। दस दस रुपयेवाले नोट हों तो और अच्छा।

दीवान जी—जो हुक्म, नोट ही लाये देता हूँ। तो क्या वहाँ बहुत दिन रहना होगा?

"नहीं, बहुत दिन तो नहीं रहूँगा।"

"क्या लाला के बाग़ में ही जाकर ठहरिएगा?"

"अभी यह ठीक नहीं कह सकता। आप रुपया मौजूद रखिएगा। मैं भोजन करके नव बजे के बाद ही यात्रा करूँगा। मैं जाता ही हूँ, मोती भी घर नहीं है। कल शाम को मा कालिका के विसर्जन के सम्बन्ध में जो कुछ करना उचित हो, सो आप करें। सभी भार आपके ऊपर है।"

"जो आज्ञा" कह कर दीवान जी चले गये।

तब रात के आठ बज गये थे। गोपीकान्त बाबू भोजन करने अन्दर नहीं गये। वहाँ मनोरमा (पत्नी) की जिरह—कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं इत्यादि—सह्य नहीं होगी। भूख भी न थी। भोजन तो नाममात्र को करना था। इसलिए उन्होंने नौकर को बाहर के कमरे में ही भोजन लाने का हुक्म दिया।

भोजन कर चुकने पर वे जाने के लिए तैयार होने लगे। हर बार काशी जाते समय जिस नौकर को साथ ले जाते थे वह भी जाने की तैयारी करने लगा। किन्तु बाबू ने उससे कहा—"इस बार तेरे चलने की जरूरत नहीं।" यह सुनकर वह उदास हो रहा।

कमलपुर से रेलवे-स्टेशन छः कोस पर है। तेज़ घोड़े उस गहरे अन्धकार के भीतर से गाड़ी सरपट खींच कर ले चले। गाड़ी पर बैठे हुए दो मशालची अंधेरे को चीरते जाते थे। रास्ते में दो जगह घोड़े बदले गये। दो ढाई घण्टे के भीतर भीतर ही स्टेशन के दर्शन हो गये।

गाड़ी खड़ी होने पर भी प्रायः पाँच मिनट तक गोपीकान्त नीचे नहीं उतरे। वे सोचने लगे—ऐसा होना भी सम्भव है। शाम होने के बाद पुलिस मुझको पकड़ने के लिए कमलपुर में आई हो और वहाँ उसने सुना हो कि मैं स्टेशन जा रहा हूँ। डेवढ़ी पर मुझे नौकर-चाकर आदि अनेक लोगों से सुरक्षित देख यहीं अकेला जान कर गिरफ़्तार करने आई हो। इस प्रकार की चिन्ता से उनका कलेजा धड़कने लगा।

आख़िर उन्होंने डरते डरते गाड़ी से उतर कर देखा तो रात के बारह बज चुके थे। अब एक घण्टे के भीतर ही गाड़ी आवेगी, यह जान कर उन्हें कुछ धैर्य्य हुआ। उनके साथ सिर्फ़ एक चमड़े का बैग था। एक नौकर उसे हाथ में लेकर स्टेशन के भीतर रख आया। गोपीकान्त उस अन्धकार-मय प्लेटफ़ार्म पर जाकर एक बेञ्च पर चुपचाप बैठ रहे।

किन्तु डर ने साथ न छोड़ा। वे सोचने लगे, अगर पुलिस पकड़ने ही आवेगी तो साथ में रुपया है। रुपया देकर छुटकारा पाने का यत्न करूँगा। रौनक़लाल ने कहा है, संसार रुपये के वश है, पुलिस की तो कोई बात ही नहीं। अँधेरे में जूते की मचमचाहट सुनते ही आप चौंक उठते थे। आख़िर मन को दूसरी ओर फेरने के लिए बैग से चुरुट निकाल कर धूम्रपान करने लगे।

क्रमशः टिकट बँटने की घण्टी बजी। तब गोपीकान्त बाबू उठकर टिकट लेने चले। सोचा, टिकट-बाबू जान-पहचान का आदमी न हो तो कुशल है। बुकिंग-आफ़िस के भीतर जा कर देखा, टिकट-बाबू कोई पच्चीस वर्ष का युवा पुरुष है। सर्ज का काला कोट पहने टिकट बेच रहा है। चेहरे से परिचित-सा मालूम नहीं हुआ। पास जाकर कहा—मुझे काशी का सेकेन्डक्लास का एक टिकट दीजिए।

युवक गोपी बाबू की ओर मुँह करके दन्तावली विकसित कर बोला—"कौन, बड़े बाबू साहब! अच्छे तो हैं?" उसने दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर उन्हें प्रणाम किया।

यह देख कर गोपीकान्त का सर्वाङ्ग जल उठा। मन की उदासीनता को मन ही में दबा कर बोले—जी हाँ, अच्छा हूँ। आप अपना कुशल कहिए।

"जी, आपके आशीर्वाद से सब आनन्द है। मुझे 'आप' कहते हैं। क्या मुझको नहीं पहचाना ?"

"नहीं।"

"मेरा नाम चन्दू—चन्द्रभूषण गुप्त है। लड़कपन से ही आपके छोटे भाई मोती बाबू के साथ स्कूल में पढ़ता था। मोतीलाल के साथ आपके मकान पर कितनी ही दफ़े गया हूँ। कितने ही दिन रह कर वहाँ खाया-पिया और कितने ही नये नये खेल खेले हैं।" हें हें करके उसने फिर दाँत दिखा दिये।

गोपी ने कहा—हाँ, यह होगा। बहुत दिन की बात हुई, इसी से भूलता हूँ।

"मेरा घर भ्रमरपुर में है। वह गाँव दिलदारगंज के बाबू को ज़मींदारी में है। आपके कमलपुर से बहुत दूर नहीं, समीप ही है। बड़े भाग्य से आज आपके दर्शन हुए हैं। उसी बाल्यकाल में आपको देखा था—वह क्या आज की बात है। मैं हाल ही में यहाँ बदल कर आया हूँ। आपसे क्या अर्ज़ करूँ—रेल की नौकरी में आराम नहीं है। भूत की तरह काम करना पड़ता है। उस पर भी एक पाँव रेल में तो एक पाँव जेल में। कभी ज़रा-सी ग़फ़लत हुई कि बड़े घर में

निवास हुआ। अगर महीना ज्यादा मिलता तो भी एक बात थी। दुधार गाय की लात भी सही जाती है। पाँच वर्ष से नौकरी करता हूँ—पचीस रुपया महीना पाता हूँ। अब बहुत कहने पर भी साहब मासिक बढ़ाना नहीं चाहता। रात भर जागते जागते परेशान हो गया हूँ। मेरा जो नया बड़ा साहब आया है उसकी—"

इतनी देर तक मुसाफ़िर मुट्ठी में रुपया-पैसा लिये बड़ी धीरता के साथ टिकट बँटने की खिड़की के पास खड़े थे। अब वे लोग हल्ला मचाने लगे। "बाबू टिकट दीजिए—हम कितनी देर से खड़े हैं। बाबू, गाड़ी आ रही है। बाबू, मुझे गाड़ी न मिलेगी तो बड़ा नुक़सान होगा।"—यह कह कर सब मिल करके चिल्लाने लगे।

ओफ़्, कितना चिल्लाते हो? देता हूँ, सब्र करो। ज़रा ठहरो। चिल्ला कर सिर मत फोड़ो—कह कर युवक ने फिर गोपीकान्त बाबू की ओर देखकर कहा—क्या कह रहा था। हाँ, उसकी बात मत पूछिए। वह ऐसा पाजी है, ऐसा बदमाश है कि ज़रा ज़रा-सी बात पर जुर्माना कर बैठता है। गत मास में मेरी तीन दिन की तलब काट ही ली। मामला सुन लीजिए।

यात्री फिर अधीर होकर पुकारने लगे। इधर बाहर भी टन् टन् कर फिर घंटी बज उठी। सिगनल-मैन दरवाज़े के पास खड़ा होकर बोला—बाबू, गाड़ी डाउन माँगता है।

"ओह, मालूम होता है ट्रेन आ गई। (उच्च स्वर से)

डाउन दो। आपको काशी का सेकेन्ड क्लास का टिकट चाहिए? सिङ्गल या रिटर्न?"

"सिङ्गल।"

"अच्छा" कह कर टिकट-बाबू, गोपी बाबू को टिकट देकर, अन्यान्य यात्रियों की ओर मुख़ातिब हुआ। कितने ही यात्रियों को टिकट मिला ही न था कि स्टेशन पर गाड़ी आ पहुँची। तब बाबू अनेक लोगों की दुहाई की आवाज़ सुनते हुए भी बड़े ज़ोर से खिड़की बन्द करके सिर पर टोपी दे और हाथ में लालटेन ले लम्बे डग से बाहर हो पड़े।

गाड़ी पर चढ़ कर गोपी बाबू ने देखा, उसमें कोई नहीं है। यह देख कर वे बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने अब अपने को पुलिस के हाथ से निरापद समझ स्थिरता प्राप्त की।

बाहर अमावस का घोर अन्धकार छाया था। आकाश में तारे चमचमा रहे थे। खुली खिड़की की राह से ठंढी हवा आने लगी। गोपी बाबू बेञ्च पर दोनों पैर पसार, छाती को दोनों भुजाओं से आवेष्टित करके, बाहर की ओर देखने लगे। क्रम क्रम से उनके हृदय की धुकधुकी दूर हुई; माथे का पसीना सूखा। तब उन्होंने स्थिर भाव से विचार करने का अवसर पाया।

गोपी बाबू सोचने लगे—"आज वहाँ से कोई थाने में नहीं गया है। शायद आज का दिन सोच-विचार में ही गया हो। सम्भव है कल सबेरे थाने में जायँ। कल मेरा रौनक़लाल

भी थाने में जा पहुँचेगा। रुपये के बल से रौनक़ अवश्य ही कोई सुव्यवस्था कर सकेगा। वह बड़ा ही होशियार है। मामले मुक़द्दमे की बातें भी ख़ूब समझता है किन्तु दारोग़ा अगर उसकी बात न सुने, अगर रुपया लेने से इनकार करे तो? कोई कोई दारोग़ा रिश्वत नहीं लेते। तब क्या होगा? तब तो अवश्य ही इज़हार लिख कर तहक़ीक़ात शुरू कर देगा। कमलपुर में आकर सुनेगा, मैं काशी गया हूँ। किन्तु काशी का पता उसे मालूम ही नहीं होगा। मेरे कर्म्मचारी लोग दारोग़ा को यह कभी नहीं बतावेंगे कि मैं काशी में कहाँ ठहरता हूँ। हाँ, एक बात है। यदि मोती मेरा पता बता दे तो। यदि क्या, वह अवश्य ही लाला के बाग़ का पता बता देगा। तो कहीं कल साँझ की गाड़ी से दारोग़ा मुझे पकड़ने के लिए काशी को रवाना होगा। वह जब काशी पहुँचेगा तब मैं कहीं से कहीं चला जाऊँगा। दारोग़ा जी अपना-सा मुँह लेकर अपने थाने को लौट जायँगे।

इस प्रकार सोचते सोचते गाड़ी के मन्द मन्द डोलने से और शीतल पवन के प्रभाव से गोपी बाबू ऊँघने लगे। तब वे बैग को सिर के नीचे रख कर सो रहे।

इकतीसवाँ परिच्छेद

नींद आने पर गोपीकान्त ने सपना देखा, मानों वे कलकत्ते की चौरङ्गी की सड़क पर टहल रहे हैं। अँगरेज़ी दूकानों में भाँति भाँति की बिकाऊ चीज़ें सजी हुई हैं। यह देखकर कुछ ख़रीदने की वासना प्रबल हो उठी। एक सोने-चाँदी की दूकान में बाहर से काँच के किवाड़ लगे हैं। भीतर भाँति भाँति की सुन्दर घड़ी, चेन, अँगूठी, ब्रोच, नेकलेस आदि तरतीब से रक्खे हुए हैं। बीच बीच में बिजली की रोशनी जल रही है। चीज़ों की चमचमाहट और पालिश देख कर आँखों में चकाचौंध लग जाती है। गोपी बाबू वहीं खड़े होकर लालच भरी दृष्टि से उन चीज़ों को देखने लगे। इसी समय मालूम हुआ मानों जेब में किसी ने हाथ डाला हो। देखा तो एक गिरहकट उनका मनीबेग हाथ में लिये भागा जा रहा है। वे 'चोर' 'चोर' कह करके उसके पीछे दौड़ने लगे। पर उनके पैर जल्द जल्द नहीं उठते थे। चौरङ्गी के फुट-पाथ पर मानों किसी ने ख़ूब बालू फैला दी हो। दौड़ने में बाबू के पैर धँस जाते हैं। एकाएक देखा तो दो ओर से दो पुलिस-इन्सपेक्टरों ने आकर उन्हें पकड़ लिया। वे भयभीत होकर बोले—महाशय! मुझे क्यों पकड़ते हो? यह जो चोर भागा जा रहा है, इसे पकड़िए।

इन्सपेक्टर ने उन्हें एक घूसा जमा कर कहा—कौन चोर है और कौन साह, यह पीछे देखा जायगा। अभी थाने में चलो। यह कह कर और उनके हाथों में हथकड़ी पहना कर खींचते खींचते थाने में ले गये और पुलिस-कमिश्नर के समीप हाज़िर किया।

साहब बहादुर सो रहे थे। एकाएक जाग पड़े। उन्होंने आँख मूँद कर जम्हाई ली, फिर तीन बार अँगड़ाई लेकर कहा—जब तक यह अपना अपराध स्वीकार न करे तब तक इसे हिंडोले पर झुलाओ।

पुलिस आफ़िस के आँगन में एक बहुत बड़ा हिंडोला झूल रहा था। उस पर कितने ही साहब और हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष चढ़े हुए झूल रहे थे। जिनको कुछ जगह मिल गई वे लेट कर नींद ले रहे हैं और जिनको जगह नहीं मिली वे बैठे बैठे झूल रहे हैं। गोपीकान्त जिस तख्ते पर चढ़े थे उस पर गद्दी मढ़ी हुई यथेष्ट जगह रहने के कारण वे पैर फैला कर सो गये। निद्रा के आरम्भ में ही हिंडोला एकाएक स्थिर हो गया। इधर रेलगाड़ी के एकाएक ठहरने से कुछ धक्का लगा। उससे गोपीकान्त की नींद टूट गई। तब उन्होंने सचमुच ही जाग कर सुना, बाहर स्टेशन के कुली लोग "शिवपुर, शिवपुर" पुकार रहे हैं।

गोपीकान्त झट उठ बैठे। आँखें पोंछ कर खिड़की से प्लैटफ़ार्म की ओर देख कर सपने की बात सोचने लगे। पहले

समझा—यह दुःस्वप्न भयहेतुक है। पुलिस की बात सोचते सोचते सो गये थे, इसी से नींद में पुलिस से पकड़े जाने का स्वप्न देखा है। फिर 'स्वप्न-विचार' पुस्तक का मन्तव्य याद आया। स्वप्न एक मिथ्या कल्पना-मात्र है, हम लोग जागृत अवस्था में जो कुछ सोचते हैं, वही रात में स्वप्न देखते हैं। गाढ़ी नींद न आने के ही कारण लोग सपना देखते हैं। बैग खोल एक चुरुट निकाल कर गोपीकान्त धुआँ खींचने लगे। कुछ देर में गाड़ी चल पड़ी। फिर वे सोचने लगे, क्या 'स्वप्न-विचार' की बात सचमुच ठीक है? कभी कभी देवता भी तो हम लोगों को स्वप्न में कुछ कह कर सावधान कर देते हैं—यह भी हो सकता है। हो सकता है, वहाँ की पुलिस ने मुझ को गिरफ़्तार करने के लिए काशी के पुलिस-कप्तान को तार दिया हो। काशी पहुँचते ही मेरे हाथों में हथकड़ी पड़ेगी। बनारस स्टेशन पर यदि वे मेरे इन्तज़ार में खड़े हों तो क्या आश्चर्य है। अगर उन्होंने मुझको वहीं पकड़ लिया तो भारी अनर्थ हुआ। मैं शिवपुर में ही क्यों नहीं उतर पड़ा? अब तो कोई उपाय नहीं है। गाड़ी कुछ ही मिनटों में बनारस पहुँच जायगी। कदाचित् वहाँ प्लैटफ़ार्म पर साक्षात् यम की मूर्ति धारण किये पुलिस सर्जेन्ट कान्सटेब्लों के साथ खड़ा होगा। मेरा यह टिकट देखते ही समझ जायगा, मैं ही वहाँ से आ रहा हूँ। विशेष परिचय की आवश्यकता न होगी। क्या करूँ? लो टिकट फेंके देता हूँ। कहूँगा; फ़ैज़ाबाद से आ रहा हूँ या

किसी दूसरे ही स्टेशन का नाम बतला दूँगा। लखनऊ से डबल भाड़ा लेगा तो ले लेगा।—यह सोच कर गोपीकान्त ने पाकेट से टिकट निकाल खिड़की के बाहर हाथ करके छोड़ दिया। किन्तु उस समय हवा के एक झोंके ने टिकट को भीतर की ओर उड़ाकर गोपी बाबू के पैरों पर रख दिया।

यह देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। सोचा, पुलिस अभी तक स्टेशन पर नहीं आई है। बल्कि खोये हुए टिकट का दुगुना महसूल देने के झमेले में जो विलम्ब होता उसी समय पुलिस आ पहुँचती और मुझे पकड़ लेती। ईश्वर ने अच्छा किया। मैं स्टेशन पर उतर कर झटपट टिकट दे मुसाफ़िरख़ाने में जा बैठूँगा। जब उत्तर की गाड़ी खुलेगी तब टिकट ले कर चल दूँगा। फिर तो पुलिस को मेरा पता लगना कठिन है। मैं किसी तीर्थ में जाकर विश्राम करूँगा।

इतने में गाड़ी बनारस स्टेशन पर आ खड़ी हुई। गोपी-बाबू ने सभय दृष्टि से प्लैटफ़ार्म की ओर देखा। वहाँ वे अपनी गिरफ़्तारी का कोई लक्षण न देख गाड़ी से उतर स्टेशन के बाहर आ खड़े हुए। एक गाड़ीवान ने कहा—बाबू आप कहाँ जायँगे?

"धर्मशाला में।"

फिर कुछ सोच कर बोले—हम राजघाट जायँगे।

गाड़ीवान—चलिए बाबू, मैं ले चलता हूँ।

"क्या लोगे?"

"बाबू आप जो .खुशी से देंगे, ले लूँगा।" कह कर उसने बाबू के हाथ से बैग लेकर गाड़ी के भीतर रक्खा। इतने में दो तीन गाड़ीवानों ने—"कहाँ जायँगे बाबू साहब, मेरी गाड़ी पर आइए" कह कर उन्हें घेर लिया। परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। प्रथम गाड़ीवान ने ललकार कर कहा,—"बाबू गाड़ी-भाड़ा कर चुके। मेरी गाड़ी सेकेण्डक्लास की है।" गोपी बाबू उसकी गाड़ी में जा बैठे।

गाड़ीवान ने घोड़े की बाग ढीली की। उस समय भी भोर नहीं हुआ था। आकाश मेघाच्छन्न था। बूँदा-बाँदी होने लगी। कुछ देर में गाड़ी राजघाट पर आ खड़ी हुई। बाबू गाड़ी से उतर पड़े। गाड़ीवान के हाथ में डेढ़ रुपया देकर बाबू घाट पर आये और गाड़ीवान सलाम करके अपनी गाड़ी पर आ बैठा।

राजघाट पर एक दफ़्तर था। इसमें जाकर गोपी बाबू ने पता लगाया कि मोटर-बोट कब रवाना होगी। उसके चलने में अभी एक घण्टे की देर थी। इन्होंने किराया देकर 'पास' लिया और किश्ती में जा बैठे। इस बोट का नाम राजहंसी था।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त ने कैबिन में जाकर देखा तो वहाँ बड़ी गरमी थी। इसलिए बैग को वहाँ रख कर वे खुली जगह में आ खड़े हुए। वहाँ चार-पाँच कुर्सियाँ रक्खी थीं। वही इन्टरमिडियेट क्लास था। तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर कोई शतरंजी, कोई कम्बल बिछा कर और कोई खाली काठ के तख्ते ही पर बैठे हैं। कोई गप शप कर रहा है, कोई तम्बाकू पी रहा है, कोई चुपचाप मन ही मन कुछ सोच रहा है; और कोई स्थिर भाव से किनारे की ओर देख रहा है। मध्यम श्रेणी की बेञ्चों पर सात-आठ भले आदमी बैठे हैं।

गोपीकान्त किश्ती की रेलिंग पकड़ कर किनारे की ओर देखने लगे। आधे घंटे में किश्ती काशी से निकल कर नीचे के घाट में आ लगी। वहाँ कुछ देर तक यात्रियों की अपेक्षा करके गंगापुर, गंगापुर से रामघाट पर नव बजते बजते आ पहुँची। गोपीकान्त इतनी देर तक कभी खुले मैदान में टहलते और कभी कैबिन में जाकर बैठते थे। अब उनके मन से पुलिस का डर बहुत कुछ जाता रहा। अब मिर्ज़ापुर जाकर रेलगाड़ी पर चढ़ने से वे एकदम निश्चिन्त हो जायँगे। इस दरमियान में यदि काशी के पुलिस-कप्तान के नाम से उनकी गिरफ़्तारी का तार आवेगा तो अब वह इनका पता नहीं पा सकेगा।

जब रामघाट में नौका आ लगी तब गोपी बाबू रेलिंग पकड़ कर यात्रियों का चढ़ना-उतरना देखने लगे। देखा कि अन्यान्य यात्रियों के साथ एक साधु नौका पर चढ़ रहा है। उसके माथे पर खूब लम्बी लम्बी जटाएँ हैं जो वेणी के आकार में गुँथी हुई हैं। मूँछ-दाढ़ी के बाल भी लम्बे और घने हैं। मुख का जो अंश बालों से बचा था वह भस्म से लिपा पुता था। छाती, पीठ और दोनों बाँहें भी भस्म-लेपन से ख़ाली न थीं। बायें कन्धे में एक झोली लटक रही थी। बायें हाथ में चिमटा, मृग-छाला और दहने हाथ में ताँबे का कमण्डल लिये बैरागी बाबा ने नौका पर आकर यात्रियों को दर्शन दिया।

बैरागी ने आते ही चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर यात्रियों का संक्षिप्त नेत्र-परिचय कर लिया। फिर पूरब मुँह खड़े होकर उसने कड़ी आवाज़ में "शंकर हर, शंकर हर" पुकारा। उसका स्वर क्रोध से भरा हुआ मालूम हुआ। सुनने से एकाएक यही समझ पड़ा जैसे भगवान् महादेवजी इस बैरागी के निकट किसी गुरुतर अपराध के दोषी हों—उसके लिए सहज ही उद्धार नहीं पावेंगे।

नौका के सभी लोग बैरागी की भाव-भङ्गी देखकर हतबुद्धि हो उसकी ओर देखने लगे। केवल मध्यम श्रेणी के बेञ्च पर बैठे हुए दो तीन नवयुवक व्यङ्ग की हँसी हँस रहे थे। बैरागी भी तिरछी चितवन से उनकी ओर देख कर उनके समीप ही मृगछाला बिछा कर जा बैठा। कितने ही यात्री उसके पास

आकर कहने लगे—बाबा जी, प्रणाम। "जीते रहो" कह कर वह उन लोगों को आशीर्वाद देने लगा। किन्तु उसका कण्ठस्वर बड़ा ही कठोर था और लाल लाल नेत्र मानों क्रोध से भरे हुए मन ही मन कह रहे थे कि 'भस्म हो जाओ।'

कुछ देर इधर-उधर देख कर बैरागी बाबा ने झोली से कुछ गाँजा और एक छोटी-सी चिलम निकाली। बाँईं हथेली पर गाँजा रख, वह दहने हाथ के अँगूठे से उसे ख़ूब ज़ोर से मलने लगा। सभी लोग टकटकी बाँध कर उसकी ओर देखने लगे। इसी समय दो नवयुवक धीरे-से खिसक कर बैरागी के आसन के पास आ बैठे। एक ने पूछा—बाबा जी! आप गाँजा क्यों पीते हैं?

पहले तो यह जान पड़ा, मानों बाबा जी के कान में यह बात गई ही नहीं। क्योंकि उसने युवक की ओर भौंह तक नहीं उठाई। ख़ूब मन लगाये गाँजा बना रहा था। और और लोगों ने युवक की ओर भर्त्सना-पूर्ण दृष्टि से देखा। प्रायः दो मिनट के बाद प्रश्नकर्ता युवक के प्रति अपने लाल नेत्रों को स्थापित करके बाबा ने गम्भीर स्वर से पूछा—क्या कहा?

बाबा जी का विचित्र भाव देख कर युवक के मन में कुछ भय हुआ। वह विनीत भाव से बोला—पूछा था, गाँजा क्यों पिया जाता है—क्या उसमें कोई विशेष गुण है?

युवक के नम्रता-भरे स्वर से बैरागी का क्रोध मानों बहुत कुछ शान्त हुआ। बाबा ने पूर्ववत् गम्भीरता-पूर्वक कहा—

"मन स्थिर होता है।" फिर उसने गाँजे को चिलम पर चढ़ा कर उस पर आग जमाई। कई बार थोड़ी थोड़ी दम लगा कर एक बार ख़ूब ज़ोर से दम लगाई। मुखरूपी बिल से काले नाग-रूपी धुएँ को बारंबार निकाल कर चिलम को नीचे रख करके बोला—कोई प्रसाद पावेगा?

गोपीकान्त को इसका अभ्यास था, किन्तु वे यह काम बहुत ही छिप कर करते थे। उनके मन में प्रसाद पाने की इच्छा प्रबल हो उठी। फिर सोचा ऐसी खुली जगह में, इतने लोगों के सामने, गाँजा कैसे पीऊँगा? इसके बाद उन्होंने मन में कहा—मैं भी तो इन्हीं लोगों में से एक हूँ। मुझे यहाँ कौन पहचानता है? मैं एक नामी रईस हूँ—ज़मींदार हूँ, यहाँ मुझे पहचानता ही कौन है? यह सोच कर उन्होंने मस्तक झुका बैरागी के आसन के पास बैठ कर गाँजे की चिलम हाथ में ले ली। गोपी बाबू प्रसाद पाने लगे और बाबा जी उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा। गोपी बाबू दम लगा कर जब बैरागी के हाथ में चिलम देने लगे तब उसने कहा—तुम्हारे माथे में राजदण्ड देखता हूँ।

यह सुनकर गोपीकान्त काँप उठे। पूछा—इसका क्या अर्थ?

बैरागी ने कहा—जिस व्यक्ति के माथे में राजदण्ड का चिह्न रहता है वह या तो जेल जाता है अथवा राज्य का सुख भोगता है। तुम्हारा हाथ देखूँ?

गोपीकान्त ने भयभीत होकर हाथ बढ़ाया। बैरागी ने

बड़ी देर तक ध्यानस्थ होकर उनका हाथ देखा, फिर कहा—तुम्हारे मन में कोई भारी तकलीफ़ हो रही है।

गोपी—"जी हाँ।" वे सोचने लगे, इतने लोगों के सामने बैरागी बाबा कोई और गुप्त बात न कह बैठें। प्रकाश्य में कहा—बाबा, आपने जो जो फ़रमाया है, वह सब सही है। यह कहकर उन्होंने अपना हाथ खींच लिया और दूसरी बात उठाई।—बाबा, अभी आप कहाँ से आ रहे हैं?

"बैजनाथ जी से—बाबा बैजनाथ का दर्शन करने गया था।"

"कहाँ जाइएगा?"

"मिर्ज़ापुर। वहाँ मेरा एक शिष्य है। उसे एक बार दर्शन देकर तीर्थ घूमने जाऊँगा।"

"कहाँ कहाँ जाइएगा?"

"प्रयाग, हरद्वार, ऋषिकेश, लछमन-झूला। उससे और भी आगे जाऊँगा। तुम कहाँ जा रहे हो?"

"जी, मैं भी तो तीर्थ-यात्रा करने ही के लिए घर से निकला हूँ।"

"और भी कभी उत्तराखण्ड गये हो?"

"जी नहीं।"

बैरागी ने झोली से थोड़ा-सा गाँजा निकाल गोपीकान्त के हाथ में देकर कहा—लो, बनाओ तो।

गोपीकान्त के मन में बैरागी के प्रति भक्ति उथल पड़ी थी। इस आदेश से अपने को कृतार्थ मान कर वे हाथ में गाँजा

लेकर मलने लगे। बैरागी ने कहा—कभी उत्तर नहीं गये हो ?

"जी नहीं"

"तो मेरे साथ क्यों नहीं चलते ?"

"बाबा जी की यदि यह कृपा है तो मेरा यह सौभाग्य है।"

"क्या तुम भी मिर्ज़ापुर होकर जाओगे ?"

"जी हाँ। आज ही साँझ की गाड़ी से रवाना हूँगा।"

बैरागी हाथ में गाँजे की चिलम लेकर बोला—आज ही ?

"जी हाँ,—आज न जाऊँ तो ठीक न होगा।"

बैरागी ने चिलम पर आग चढ़ाई। दो चार दम लगा कर कहा—भगत जी, ऐसा लक्षण तो नहीं दीखता कि मैं आज मिर्ज़ापुर से रवाना हो सकूँ। नहीं जानता, मेरा वह शिष्य घर पर है या नहीं। ख़ाली हाथ तीर्थ जाना भी ठीक नहीं।

"यदि इतनी ही बाधा हो तो बाबा को विलम्ब करने की ज़रूरत नहीं"—यह कह कर गोपी बाबू ने जेब से एक मुट्ठी रुपया निकाल, बैरागी के पैर के पास रख कर प्रणाम किया।

बाबा ने रुपया उठाकर झोली में रख लिये और अस्पष्ट स्वर में गोपीकान्त को आशीर्वाद दिया। चिलम की आग बुझ गई थी। उसे फिर प्रज्वलित करके दो चार दम लगा कर उसने गोपी बाबू को प्रसाद दिया।

तब नाव के अन्यान्य यात्रियों ने अपना अपना हाथ दिखाने के लिए बाबा को चारों ओर से घेर लिया।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

रौनक़लाल नोटों को कपड़े में बाँध झट घोड़े पर सवार हो देवीपुर गया। साँझ होने के पहले ही दफ़्तर में पहुँच कर उसने धनीराम को बुला भेजा।

धनीराम जब आया तब रौनक़लाल दफ़्तर के बरामदे में कुशासन पर बैठ, आँखें मूँद कर, हाथ में माला ले हरिनाम जपने लगा। एक बार आँखें खोलकर सिर्फ़ धनीराम को बैठने का इशारा करके फिर आँखें मूँद कर माला फेरने लगा। क़रीब आधे घंटे तक कपट-पूजा करके माला-सहित दोनों हाथ जोड़ कर दो मिनट तक प्रणाम किया। इसके बाद कहने लगा—जयराम, श्रीराम, सीताराम। हरिराम सत्य, सब मिथ्या—सब मिथ्या—हाँ कहो तुम किधर आये?

धनीराम—हजूर ने बुला भेजा था, इसी से आया हूँ।

"जयराम, सीताराम, श्रीराम। हाँ इसी से। तुमको ठीक बुलाया था, किन्तु भूल गया था। सब मिथ्या, सब मिथ्या। हरिनाम सत्य। तुम्हारे घर के नज़दीक थोड़ी-सी ज़मीन पड़ी है।"

"जी हाँ, उस ज़मीन में पहले शिवसेवक ग्वाला रहता था। वह फ़रार हो गया है। दो तीन साल से वह ज़मीन पड़ी है।"

"यह मालूम है। वह शिवसेवक कैसा आदमी था? असल बात तुमसे खोलकर कहता हूँ। मेरी इच्छा यहाँ एक फुलवाड़ी लगाने की है। भगवान को फूल चढ़ाना मैं बहुत पसन्द करता हूँ। फूल से पूजा करने पर मन को जितनी तृप्ति होती है उतनी कोरी माला सटकाने से नहीं होती। इसी से तुमसे पूछा है। शिवसेवक कैसा आदमी था। पापी मनुष्य की धरती पर फूलों के पेड़ लगा करके उनके फूलों से ठाकुर जी की पूजा करने में मेरा मन न लगेगा। वे फूल मुझे अपवित्र जान पड़ेंगे। और यदि सुनूँगा कि वह धार्मिक था, देवता-ब्राह्मण में भक्ति रखता था, तो मेरे मन में कुछ भी अश्रद्धा नहीं होगी। इसी लिए तुमको बुलाया है। वह तुम्हारा पड़ोसी था, तुम उसका भला-बुरा सब जानते होगे। कहो वह कैसा आदमी था?"

धनीराम ने कुछ सोचकर कहा—जी, वह आदमी तो अच्छा ही था। मैं जहाँ तक जानता हूँ, वह पापी या दुष्ट न था। कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता था। हाँ, एक दफ़े मेरे गाय-बैल उसके खेत में घुस गये थे। उन्हें पकड़ कर वह काँजी-हाउस में बन्द कर आया था। छः गण्डा पैसा देकर मैं गोरू छुड़ा लाया था।

"गाँव छोड़ कर वह क्यों भाग गया? उसके नाम कोई वारंट तो नहीं जारी हुआ था?"

"जी नहीं, उसका ससुर मातवर आदमी था। उसका कोई और वारिस न था। ससुर के मर जाने पर उसकी सब

ज़मीन इसी को मिली। इसी से वह यहाँ से चला गया। यहाँ उसके पास जो कुछ जगह-ज़मीन और गाय-बैल थे वे सब बेच-बाच कर ससुर के घर चला गया। वारंट वग़ैरह कुछ जारी नहीं हुआ था।"

रौनक़ ने सिर हिलाकर कहा—तब तो मालूम होता है, आदमी अच्छा था। यहाँ के थाने का दारोग़ा कौन है?

"हज़ूर, थाना यहाँ से चार पाँच कोस दूर है—उधर आना जाना नहीं होता। दारोग़ा का नाम नहीं जानता। सुना है, आज-कल कोई मुसलमान है।"

ओफ़! मुसलमान? दारोग़ा से भेंट करने के लिए एक दिन थाने को जाना होगा। ज़मींदारी रखने पर दारोग़ा से मेल मुआफ़क़त रखना ज़रूरी है। कौन जाने कब क्या हो। न हो तो कल ही चले चलें। दिन भी अच्छा है। दारोग़ा को क्या नज़राना दिया जाय? मुर्ग़ी के अंडे वग़ैरह तो मुझसे दिये न जायँगे। एक हाँडी में पाँच छः सेर उमदा घी लिये चलूँगा। तुम तो ग्वाले के लड़के हो, अच्छा घी पहचानते होगे। कल सबेरे पाँच छः सेर घी खोज कर ला दो। पर हो ख़ूब बढ़िया। जो उचित मूल्य हो मुझसे अभी ले लो। ज़मींदार का ज़िलेदार होने के कारण मैं ज़ोर-ज़ुल्म करके आधे दाम पर न लूँगा—मैं इस क़िस्म का आदमी नहीं हूँ। यह काम मुझसे नहीं होगा। ग़रीबों को सताने के बराबर दूसरा पाप नहीं है। कहो, तुम पाँच सेर घी ख़रीद लाओगे?"

"जी हाँ। यह कौन बड़ी बात है ? कब चाहिए ?"

"कल सबेरे खा-पीकर चलेंगे। उसके भीतर ही घी आना चाहिए।"

"बहुत अच्छा, ला दूँगा।"

"अच्छा, रुपया अभी लोगे ?"

"कल ले लूँगा। देखें, क्या भाव मिलता है ?"

"अच्छा तो कल ही ले लेना। एक काम और करो न ?"

"आज्ञा कीजिए।"

"तुम भी मेरे साथ चलो। मैं गाड़ी में जाऊँगा। तुम घोड़े पर चलना।"

"धनीराम ने कुछ टालमटोल करके कहा—अच्छा, आपकी जैसी आज्ञा हो।

रौनक़ कुछ देर तक चुप रहकर बोला—अगर तुमको अपने किसी काम में बाधा न हो—ख़ुशी से मेरे साथ चल सको तो मेरे साथ चलना। नहीं तो यह समझ कर मत चलना कि मैं ज़मींदार का नौकर हूँ, और तुम ग़रीब रियाया हो इसलिए मैं तुम पर हुकूमत चला रहा हूँ। मैं उस स्वभाव का मनुष्य नहीं हूँ। सीताराम, सीताराम। तुमको साथ ले जाने का और कोई कारण नहीं—केवल यही कि मैं नया आदमी हूँ। कभी उधर गया नहीं और किसी को जानता-पहचानता नहीं। दो आदमी साथ रहने से मज़े में बातचीत करते करते चले जायँगे। इसी लिए तुमसे मेरा यह अनुरोध है।

धनीराम—नहीं नहीं, मैं अपनी ख़ुशी से ही चलूँगा। आपके ऐसे मालिक के साथ न जाऊँगा तो किसके साथ जाऊँगा ?

रौनक़—सीताराम, सीताराम—मैं मालिक कैसा ? मैं तो नौकर हूँ। हाँ, तो बात यह है कि मैं तुम्हारी विनय देखकर ख़ुश हुआ। तुम बड़े सज्जन हो, इसमें सन्देह नहीं। तुम के भाई हो ?

"हम दो भाई थे। मेरा छोटा भाई मनीराम अब नहीं है। वह दुनिया से बिदा हो गया।"

"अरे ! वह मर गया ? क्या किया जाय संसार की गति ही ऐसी है। वह कुछ बाल-बच्चा छोड़ गया है।"

"कुछ नहीं। केवल उसकी स्त्री है।"

"तो तुमने अपने भाई की बहू को नैहर भेज दिया, या घर में ही रक्खे हुए हो ?"

धनीराम ने कुछ ठिठक कर कहा—"कई महीने से वह अपने बाप के ही घर में है।"

यह सुनकर रौनक़ विस्मित हुआ। वह मन में सोचने लगा, तो क्या वह औरत घर लौट कर नहीं आई ! कहाँ गई ? क्या हुई ? कहीं संकोच से डूब तो नहीं मरी या अकेली ही थाने में चली गई ! किन्तु बाहर इस चिन्ता का कुछ भी भाव प्रकाश न करके बोला—उसके बाप का घर कहाँ है ?

"वह यहाँ से दो दिन का रास्ता है।"

"गाँव का नाम क्या है ?"

बड़ी अनिच्छा के साथ थूक घोंट कर धनीराम ने कहा—खजौली।

"अच्छा तो कल दस बजे खा-पीकर घी लिये आना।"—कह कर रौनक़लाल ने धनीराम को रुख़सत करके अपने सोने की कोठरी में प्रवेश किया। कमलपुर से लाये हुए बैग से शराब की बोतल निकाल कर उसने कुछ मद्यपान किया। इसके बाद तख़्त पर बैठकर हाथ में हुक्का ले भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा।

वह सोचने लगा—लीलावती कहाँ गई? कामेश्वरनाथ के मन्दिर के पास जहाँ उसे छोड़ दिया था वहाँ से यह गाँव बहुत से बहुत डेढ़ कोस होगा। रास्ता सीधा है—रास्ता भूलकर कहीं चली गई हो, यह भी संभव नहीं। उसको जैसा भय दिखा दिया है, (कि अगर किसी से यह बात कहेगी तो तेरी जान न बचेगी) इससे वह थाने में जाकर नालिश करेगी यह भी मन नहीं मानता। जो हो, कल थाने में जाने से मालूम हो जायगा कि नालिश दायर की है या नहीं। सोचा था, यह हज़ार रुपया साफ़ बच जायगा—देखें क्या होता है। यह भी हो सकता है कि धनीराम ने लीलावती को अपने घर में ही छिपा रक्खा हो। लीलावती बड़े तड़के यहाँ आ पहुँची होगी। यद्यपि उसके घरवालों ने लोक-लज्जा के भय से गाँव में कह दिया होगा कि वह अपने बाप के घर गई है तो भी उसके आने पर उन्होंने अवश्य ही पूछा होगा कि तू इतने दिन कहाँ

क्या करती थी। और लीलावती ने किसी का नाम-धाम कुछ नहीं बताया होगा, इससे उनका सन्देह और भी बढ़ गया होगा। इस विषय की कोई निश्चित व्यवस्था होने तक शायद उसे बन्द कर रक्खा हो। तब तो इस बात का पता लगाना ज़रूरी है! अच्छा एक काम करता हूँ। दो घड़ी रात और बीते तो घी का रुपया देने के बहाने एकाएक उसके घर के भीतर चला जाऊँ। जो लीलावती होगी तो उसके रहने की कुछ न कुछ आहट अवश्य ही मालूम होगी।

यह निश्चय करके रौनक़लाल एक घण्टे के बाद पाँच छः रुपया लेकर अँधेरे में धनीराम के घर की ओर चल पड़ा। उसने हाथ में बाँस की छड़ी ले ली। कन्धे पर अँगोछा रख लिया। वह सूने रास्ते से तारों की धुँधली रोशनी में चुपचाप निकल पड़ा। धनीराम के घर के दर्वाज़े के पास पहुँच कर चुपचाप खड़ा हो कान देकर सुनने लगा कि भीतर कोई बातचीत होती है या नहीं। दो तीन मनुष्यों के कण्ठ-स्वर सुन पड़े। किन्तु साफ़ साफ़ बातें नहीं सुन पड़ीं। ऐसा मालूम हुआ जैसे वे आपस में लड़ते-झगड़ते हों। तब रौनक़ ने धीरे धीरे किवाड़ को ढकेला--किवाड़ खुल गया। आँगन में ख़ूब अँधेरा था। वह उस आँगन में जा खड़ा हुआ। देखा कि ऊँचे उसारे में बैठे तीन आदमी परस्पर बातें कर रहे हैं। घर के भीतर चिराग़ जल रहा था। उसकी मामूली रोशनी उसारे में आ रही थी। उसमें कोई पहचाना नहीं गया। रौनक़ ने सुना, एक पुरुष कह

रहा है—"सचमुच ही अगर तुम्हारा कोई दोष नहीं है तो स्पष्ट क्यों नहीं कहती कि तुमको किसने पकड़ रक्खा था ?" रौनक़ ने पहचाना, यह धनीराम की आवाज़ है।

लीलावती ने कहा—मैं यह नहीं कह सकती।

एक स्त्री ने कहा—"अभागिनी तू क्यों नहीं कह सकती ! तेरा हृदय पवित्र होता तो तू सब कह सुनाती। नहीं कहती है, इससे जान पड़ता है कि तेरे मन में पाप ज़रूर है।—इसकी बात का विश्वास मत करो। यह बिलकुल झूठ बोलती है।—सच सच बोल, क्या बात है। नहीं तो सिर मुड़ा गधे पर चढ़ा गाँव से निकाल दूँगी।" रौनक़ ने अनुमान किया, यह धनीराम की स्त्री की बोली है।

लीलावती रोते रोते बोली—मुझे कहने में क्या था ? किन्तु काली माई ने मना कर दिया है, इसी से नहीं कहती।

धनीराम—हें, तू बड़ी धर्मात्मा है इसी से तुझको काली माई ने दर्शन दिया है। असल बात नहीं कहोगी तो अभी झाड़ू मार कर घर से निकाल दूँगा।

लीलावती कुछ रिसाकर बोली—तुम घर से निकालनेवाले कौन ? क्या यह घर मेरा नहीं है, अकेले तुम्हारा ही है ?

धनीराम की स्त्री बोली—तू मरती भी नहीं, अपने जेठ के साथ जवाब-सवाल करते तुझे लाज नहीं लगती।

धनीराम ने क्रुद्ध होकर कहा—इसकी बात तो सुनो। मेरे घर पर अपना दावा दिखाती है। यह इसके बाप का घर है। इसी घड़ी मेरे घर से निकल जा। इज्ज़त का ख़याल है तो अभी मेरे घर से चली जा—नहीं तो ऐसी मार मारूँगा कि जिसका नाम और चोटी पकड़ घसीट कर घर से निकाल दूँगा।

लीलावती—ख़बरदार, मेरी देह छूएगा तो अच्छा न होगा। मैं अभी जाकर ज़िलेदार साहब के यहाँ नालिश करूँगी।

धनीराम उसे चिढ़ा कर बोला—ज़िलेदार साहब के यहाँ जाकर नालिश करेगी? ज़िलेदार मुझे फाँसी पर लटका देंगे। वह जजमजिस्टर हैं न! जा अपने बाप ज़िलेदार के पास।

इसी समय रौनक़लाल खाँसकर बोला—धनीराम।

धनीराम चकित दृष्टि से आँगन की ओर देखकर बोला—कौन है?

रौनक़ ने क्रोध करके कहा—धनीराम, मैं समझता था कि तू भला आदमी है। पर तू तो बदमाशों का सरदार है।

धनीराम कण्ठस्वर से ही पहचान गया कि ज़िलेदार हैं। तथापि सन्देह दूर करने के लिए वह झट चिराग़ ला आँगन में जा रौनक़लाल को खड़ा देख काँपते काँपते बोला—यह तो ज़िलेदार साहब हैं। राम राम सरकार।

रौनक़लाल ने कम्पित स्वर में कहा—दग़ाबाज़, जालिया, चोर! अभी तो तू मुझसे कह आया है कि भाई की बहू अपने बाप के घर है।

धनीराम—जी हाँ, बाप के ही घर में थी। आज ही आई है।

"तो उसे इस तरह क्यों धमका रहा है?"

धनीराम—जी-जी, कुछ तो नहीं कहा है। वहाँ से अकेली आई है। भले घर की औरत को क्या इस तरह आना मुनासिब था?

"कुछ नहीं कहा है हरामज़ादे! कहाँ गई वह? भले घर की बेटी, तनिक इधर आ तो।"

"लीलावती लज्जा से सिकुड़ कर आँगन में आ खड़ी हुई।"

रौनक़ ने कहा—कहो मनीराम की दुलहिन, क्या हुआ है।

लीलावती लजाती हुई बोली—जब से वे मरे हैं तब से मेरे जेठ-जिठानी दोनों मुझे बहुत दुःख देते हैं। मारते-पीटते हैं, गाली देते हैं, खाने को नहीं देते। अभी कहा है, घर से निकाल देंगे। कहिए सरकार, मुझे ये घर से कैसे निकाल देंगे? घर क्या इन्हीं का है, मैं इस घर की कोई भी नहीं? दुहाई ज़िलेदार साहब की। आप इसका इन्साफ़ कीजिए।

रौनक़—मैं बेशक जज-मजिस्टर नहीं हूँ, किन्तु ज़मींदार का नायब तो हूँ। मैं इसका विचार अवश्य करूँगा। मैं नहीं करूँगा तो कौन करेगा? मैं इसका पक्का विचार किये देता हूँ। क्यों रे धनीराम, तुम दो भाई थे न?

"जी हाँ।"

"तो देखो, तुम्हारा घर-बार ज़मीन जो कुछ है उसका

आधा तुम्हारी इस बहू का है। यह क़ानून की बात है। अलीगढ़ के क़ानूनसार में भी यही लिखा है।"

धनीराम—और ज़मींदार की मालगुज़ारी मैं जो अकेला देता हूँ।

"इससे क्या हुआ! मालगुज़ारी क्या तू अपने बाप के घर से देता है? ज़मीन की उपज से ही तो देता है।"

"अच्छा, मैं जो इतनी मिहनत करता हूँ! सिर का पसीना पैर से बहा कर ज़मीन जोतता हूँ, फ़सल उपजाता हूँ सो।"

रौनक़ ने दाँत पीस कर कहा—ज़मीन तू नहीं जोते-बोवेगा तो तेरे घर की बहू-बेटी जोते-बोयेंगी? मूर्ख! तू तो विकट क़ानूनी मालूम होता है। जो कहता हूँ सो सुन—तेरी बहू जब तक जीती है तब तक ज़मीन की आधी पैदावार उसकी है। यह जान कर अपनी बहू को आदर भाव से यत्न-पूर्वक घर में रखना चाहते हो तो रक्खो; नहीं तो कहो, मैं कल ही ज़मीन और लगान बाँट कर आठ आना हिस्सा तुम्हारी बहू के नाम से लिख पढ़कर दाख़िल-खारिज़ कराये देता हूँ। वह अपने बाप के घर चली जाय। मैं उसके हिस्से की ज़मीन का बन्दोबस्त कर दूँगा। वह बाप के घर में पाँव पर पाँव रक्खे बैठी बैठी सुख से ज़मीन की उपज खाय। कहो, क्या कहते हो?

यह सुन कर धनीराम कुछ देर तक चुप हो रहा, फिर बोला—मैं तो उसे किसी तरह का दुःख नहीं देता हूँ। कहे न, मैंने उसे क्या दुःख दिया है

लीलावती बोली—मुझको भर पेट भोजन नहीं देते। बिना ही अपराध के बात बात में गाली देते हैं। मुझे मारते तक हैं।

रौनक़ हाथ की छड़ी आँगन में फेंक कर बोला—क्यों रे महापापी, स्त्री के ऊपर तू हाथ उठाता है? मूर्ख! स्त्री भगवती का स्वरूप है, यह नहीं जानता? तुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।

धनीराम—यह झूठ बोलती है। मैंने इसे कब मारा है? इसकी बात पर विश्वास न कीजिए।

"विश्वास क्यों न करूँगा? अभी तो मैंने अपने कान से सुना है—तू कह रहा था, निकल मेरे घर से, नहीं तो वह मार मारूँगा कि जिसका नाम, चोटी पकड़ घसीट कर घर से बाहर कर दूँगा।—अरे तू तो गङ्गा जी में बैठ कर भी झूठ बोल सकता है। मैंने इस आँगन में खड़े होकर आदि से अन्त तक सब बातें सुनी हैं। तू समझता है, ज़िलेदार साहब बड़े सीधे सादे आदमी हैं, दिन भर पूजा-पाठ में बिताते हैं, किसी को भला-बुरा नहीं कहते। डाँट-डपट दिखाना नहीं जानते! पर ऐसा मत समझ। ज़िलेदार साहब भले के लिए भले हैं। किन्तु बदमाशों और अधर्मियों के लिए राक्षस से भी बढ़कर निर्दय हैं। मेरी असली सूरत तुम लोगों ने अभी तक नहीं देखी है। तुझको मैंने भला आदमी समझा था, इसी लिए तेरे घर पर इस तरह आगया, नहीं तो मैं कहीं जाता भी हूँ। एकाएक मुझे

इस बात का स्मरण हो आया कि धनीराम घी का रुपया कुछ ले ही नहीं गया, चलो खुद ही जाकर दे आऊँ। इसी से पाँच रुपया तुझको देने आया था। यह देख"—कह कर रौनक़ ने रुपये निकाल कर दिखला दिये।

धनीराम सिर नीचा करके खड़ा हो रहा।

रौनक़ ने कहा—क्या कहता है? तू हिस्सा बाँट देगा या इसे यत्न-पूर्वक घर में रक्खेगा? कभी किसी तरह का दुःख तो नहीं देगा?

"यत्न से क्यों नहीं रक्खूँगा? आदर क्यों न करूँगा? क्या वह मेरी अपनी नहीं है? वह क्या पराये घर की है? मेरा जो वह सगा भाई था उसी की यह स्त्री है। क्या मैं इसे कभी दुःख दे सकता हूँ या इसका अनादर कर सकता हूँ? अगर आज मेरा भाई जीता रहता।"—कहते कहते धनीराम ने रोने का उपक्रम किया। दोनों हाथों से मुँह ढक कर रोते रोते बोला—अरे मेरा भैया मनीराम—तू कहाँ गया रे—अरे तू कहाँ चला गया रे—मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं लेता गया!

रौनक़ ने कहा—ठहरो, ठहरो, यह सब झूठ मूठ का रोना छोड़ दो। बहुत माया मत फैलाओ। जो मैंने कहा है, वह करोगे तभी कुशल है। अगर बहू को किसी तरह का कष्ट देने की बात सुनूँगा तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति का आधा हिस्सा ज़ब्त करके इस बेवा औरत को दे दूँगा। खबरदार! रात हुई, अब मैं जाता हूँ। ये पाँच रुपये अपने पास रख लो। इन रुपयों

का घी ख़रीद कर कल दस बजे के भीतर दफ़्तर में दाख़िल करना। घी ख़ूब बढ़िया हो। अय भले घर की बेटी! तू इसके घर में खूब जमकर बैठी रह। अगर तुमको यह तकलीफ़ दे तो मुझसे आकर कहना। मैं ज़मींदार का नायब हूँ—प्रजा का माँ-बाप हूँ। मैं अपने इलाक़े में किसी तरह का अत्याचार—अधर्म नहीं होने दूँगा। सीताराम सीताराम श्रीराम।

धनीराम ने हाथ जोड़ कर कहा—ज़िलेदार साहब, ग़रीब के घर में चरण लाये तो एक चिलम तम्बाकू भर लाने की आज्ञा देकर दास को कृतार्थ कीजिए।

"नहीं, अब नहीं ठहरूँगा। रात बहुत गई। अब भी मुझे एक सहस्र तारक-मन्त्र का जप करना है। एक सहस्र नाम लेकर तब कुछ खाकर सोऊँगा।" यह कह कर रौनक़ चला गया।

भोजनादि के अनन्तर शयन-गृह में जा भीतर से किवाड़ बन्द करके रौनक़ ने गोपीकान्त के दिये हुए नोट निकाले। फिर चश्मा लगा कर वह उन्हें बड़ी उमङ्ग के साथ गिनने लगा। बैग से बोतल निकाल कर बची हुई शराब पेट में रख ली। कुछ नशा आने पर नोटों को सामने बिछा कर गद्गद कण्ठ से कहने लगा—यह हज़ार रुपया मेरा हुआ। पुलिस को नहीं दूँगा—किसी को नहीं दूँगा। यह कुल रुपया मेरा—मेरा, मेरा। जिसकी बुद्धि उसका रुपया। बुद्धि है तो सब कुछ है।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

रौनक़लाल आज झटपट स्नान-भोजन करके गाड़ी पर सवार हो कर दारोग़ा से भेंट करने चला। धनीराम भी एक टट्टू पर चढ़ कर उसके साथ गया। एक नौकर घी लेकर पहले ही रवाना हो चुका था।

देवीपुर से थाना तीन कोस था। दोपहर के समय रौनक़ वहाँ जा पहुँचा। थाने का मकान एक तालाब के घाट पर था। सामने बड़ के दो बड़े पेड़ थे। एक पेड़ के नीचे रौनक़लाल की गाड़ी ठहराई गई। गाड़ी से उतर कर रौनक़ ने देखा, खड़ाऊँ पहिने एक शख़्स थाने के बरामदे में टहल रहा है। रौनक़ ने बरामदे में जा अपना परिचय देकर उससे जान-पहचान की।

वह थाने का हेड कान्सटेबुल था। हेड कान्सटेबुल को लोग जमादार कहते हैं, किन्तु रौनक़लाल ने कहा—"अच्छा, आप इस थाने के हेड कान्सबुटेल—छोटे दारोग़ा हैं। अच्छा, अच्छा। आज आपकी भेंट से मुझे बड़ा हर्ष हुआ। बड़े दारोग़ा साहब का नाम क्या है?

"शेख़ शहादत हुसेन।"

"कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"मिर्ज़ापुर ज़िला।"

"दारोग़ा साहब कहाँ हैं?"

"सो रहे हैं।"

"कब उठेंगे ?"

"अब ज़्यादा देर नहीं है। क्यों! कहीं दंगा-फ़साद या खून-ख़राबी तो नहीं हुई है !"

रौनक़—नहीं, नहीं। यह कुछ नहीं हुआ है। मैं देवीपुर सर्कल का ज़िलेदार होकर आया हूँ। मन में आया कि एक बार आप लोगों से भेट मुलाकात कर आऊँ। इसी से आया हूँ।

धनीराम के हाथ की हाँड़ी को जमादार सतृष्ण दृष्टि से देखने लगा। फिर पूछा—इसमें क्या है ?

मानों रौनक़ ने समझा ही नहीं इस भाव से बोला—क्या ?

जमादार ने उँगली से दिखा कर कहा—इस बर्तन में क्या है ?

"बर्तन में ! इसमें दारोग़ा जी के लिए थोड़ा-सा घी लाया हूँ। अपनी ज़मींदारी का ख़ालिस घी है, ताज़ा भी है।"

जमादार ने कहा—ख़ालिस घी ? वाह ! ख़ालिस घी तो हम लोगों को आँख से देखना दुर्लभ हो गया है। क्षुद्र बनिये अक्सर घी में चर्बी मिला दिया करते हैं। मेरी फूफी ने जब से यह सुना है तब से उन्होंने घी खाना बिलकुल छोड़ दिया है। वे कहती हैं, मैं विधवा हूँ, अन्त में यह चर्बी मिला घी खाकर क्या अपना परलोक बिगाड़ूँगी ! रात को कुछ पूरियाँ खा लेती थीं, सो वह भी गईं। अब सिर्फ़ दूध-मात्र आहार है। कुछ फल मिल गये तो खा लेती हैं। हिन्दुओं का धर्म बचना बडा कठिन

है। दारोग़ा जी तो मुसलमान हैं। चर्बी मिला घी खाने पर भी उनकी जात नहीं जायगी।

जमादार के मन का भाव रौनक़ समझ गया। कहीं इशारा छोड़ कर .खुलासा तौर से ही वह घी न माँग बैठे, इस आशङ्का से रौनक़ ने कहा—मैं नहीं जानता था कि आप यहाँ हैं। जो जानता तो आपके लिए भी एक हाँड़ी घी लिये आता। राम राम! घी के बिना आपकी फूफी को बहुत तकलीफ़ हो रही है!

"तकलीफ़ तो हो ही रही है। क्या करूँ! आपसे हो सके तो एक हाँड़ी घी भेज दीजिएगा। जब आप जाने लगेंगे तब चौकीदार के साथ कर दूँगा। पाँच छः सेर मिलने ही से अभी काम चल जायगा। और ज़्यादह की ज़रूरत नहीं। दरकार होगी तब आपको फिर ख़बर दूँगा। आपके पहले जो मथुरा बाबू थे, उनके साथ मेरी बड़ी दोस्ती थी। उस तरफ़ जब कभी जाने का मौक़ा मिलता था तब देवीपुर का दफ़्तर ही मेरे रहने का अड्डा होता था। मथुराप्रसाद बाबू तुरन्त तालाब से बड़ी बड़ी मछली पकड़वा मँगाते थे, बकरा कटवाते थे—.खूब कलिया पुलाव खिलाते थे।

रौनक़—यह तो होना ही चाहिए। आप लोगों की ख़ातिर न की जायगी तो किसकी की जायगी! मैं भी आपसे अभी से कह रखता हूँ—जब कभी उधर से निकलें तो इस ग़रीब को दर्शन देना न भूलिएगा।

जमादार—ज़रूर ज़रूर। आप भी तो बड़े सज्जन जँचते हैं।

इसके बाद और तरह की गपशप होने लगी। कुछ देर में दारोग़ा साहब बाहर आये। दिन में सोने के कारण उनकी आँखें लाल थीं। उनके पीछे पीछे एक नौकर आ रहा था। उसके हाथ में एक बनसी थी। रोज़ दोपहर के बाद दारोग़ा साहब तालाब में बनसी खेलते हैं और मछली पकड़ते हैं।

उनको देखते ही जमादार ने कहा—ये आपसे मिलने को आये हैं।

दारोग़ा ने कफ-लिप्त घरघराते हुए कण्ठ से कहा—ये कौन हैं?

"ये देवीपुर के ज़िलेदार होकर आये हैं। पहले जो मथुरा बाबू थे उन्हीं की जगह पर काम कर रहे हैं।"

"गोपीकान्त बाबू के ज़िलेदार हैं?"

रौनक़ ने कहा—जी हाँ।

"आपका घर कहाँ है?"

"ग़ाज़ीपुर के इलाक़े में।"

"यहाँ से आपका घर दूर है।"

रौनक़ ने बायें हाथ से पेट ठोंक कर कहा—इसी के लिए यहाँ आना पड़ा।

दारोग़ा ने हँस कर कहा—ठीक है। हम लोग भी इसी के लिए अपना अपना मुल्क छोड़ कर इस देश में आये हैं। यहाँ किस काम से आना हुआ है?

कोई विशेष कार्य नहीं। अभी नया आया हूँ, इसी से सोचा, आप लोगों से एक बार मिल आऊँ। मेरे मालिक का भी हुक्म है—'दारोग़ा, मुफ़स्सिल के हाकिम होते हैं। उन लोगों के साथ सदा मिले-जुले रहो जिसमें उन लोगों के मन में किसी तरह की नाराज़गी न होने पावे। क्योंकि दिहात की रक्षा का कुल भार उन्हीं लोगों के ऊपर रहता है। थोड़ा-सा ख़ालिस घी नज़राना लाकर हुज़ूर के पास हाज़िर हुआ हूँ।'

अब क्या था, दारोग़ा जी का चेहरा खिल उठा। बोले—अच्छा, आपके मालिक गोपीकान्त बाबू बड़े ही ख़ुशमिज़ाज आदमी हैं। उनकी ख़ातिरदारी से मैं निहायत ख़ुश हुआ। उनको मेरा बहुत बहुत सलाम कहिएगा। अरे कोई है—जा, यह घी की हाँड़ी भीतर दे आ। ज़िलेदार साहब, आपको मछली पकड़ने का शौक़ है?

रौनक़—शौक़ तो ख़ूब ही था। पर वह ज़माना गया। अब अनेक प्रकार के कामों के मारे मछली पकड़ने को समय ही नहीं मिलता। अब वह उम्र भी नहीं रही। जब आपकी उम्र का था, तब ख़ूब शौक़ था। दिन-रात मछली पकड़ने ही की धुन में लगा रहता था।

दारोग़ा साहब रौनक़ से उम्र में कम से कम चार पाँच वर्ष बड़े थे। वे मुस्कुराकर मन में कहने लगे—यह मुझे अभी जवान ही समझ रहा है। मैंने जो ख़िज़ाब लगा कर दाढ़ी-मूँछ के सफ़ेद बालों को काला कर लिया है, यह जनाब की

नज़र में आया ही नहीं।—प्रकाश्य में कहा—आपकी ही ऐसी कौन बहुत उम्र है। हम और आप एक ही उम्र के होंगे। चलिए, मैं मछली पकड़ूँगा, आप बैठे बैठे तमाशा देखिएगा। वहीं ग़पशप भी होगी।

तालाब के पश्चिम घाट पर, पेड़ की छाँह में, कुछ जगह बैठने के लायक़ बना ली गई थी। वहीं कम्बल बिछाया गया। उस पर दारोग़ा साहब बनसी खेलने बैठे। नौकर लग्गी और चारा रख गया, फिर तम्बाकू भर कर ले आया। दारोग़ा साहब पानी में बनसी डाल फ़र्शी हुक्क़ा पीने लगे।

गोपीकान्त बाबू की ज़मींदारी के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। दारोग़ा ने रौनक़ से कहा—आप अपने मालिक से कहिएगा, अगर किसी बदमाश रियाया को दबाने की या और किसी तरह की ज़रूरत हो तो मुझे ख़बर दें।

रौनक़—ख़बर तो दूँगा ही। हम लोग तो आप ही का पूरा भरोसा रखते हैं। आप लोगों की सहायता के बिना क्या हमें एक पग चलने का सुभीता है? एक किसान का दिमाग़ आसमान पर चढ़ा हुआ है उसे ठीक करना बहुत ज़रूरी है। जब हुज़ूर ने अपने मुँह से ज़िक्र किया है तब अर्ज़ करने में क्या हर्ज है? मेरे इलाक़े में शंकरपुर एक गाँव है। उस गाँव में हरिदास ग्वाला रहता है। वह बड़ा ही शेख़ीबाज़ है। हलकी जाति का लड़का दो अक्षर लिखा-पढ़ा है। वह अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं।

इसी समय बनसी की पैरकुआ हिलने लगी। रौनक़ को हाथ से चुप रहने का इशारा करके दारोग़ा ने ख़ूब ज़ोर से लग्गी पकड़ी। पैरकुआ डूबते ही लग्गी को ऊपर उठाया। ख़ाली बनसी निकल आई। "ओह भाग गई" कह कर दारोग़ा ने फिर बनसी में चारा लगाया और डोरे को पानी में फेंक कर रौनक़ से पूछा—क्या नाम बताया ?

"हरिदास। शंकरपुर का हरिदास।"

"क्या बड़ा पाजी है।"

"बड़ा ही पाजी है, शैतान है। किसी औरत के मामले में बाबू उस पर बहुत नाराज़ हैं। मुझसे कहा है—अगर उस पाजी को किसी तरह एक बार बड़ा घर दिखा दो तो मेरे मन का क्रोध मिटे। मैंने कहा—हुज़ूर, यह कौन बड़ी बात है। कुछ रुपये ख़र्च करने ही से यह हो सकता है। कहिए तो थाने में जाकर दारोग़ा साहब से मुलाक़ात करके इन्तज़ाम कर आऊँ। बाबू ने कहा—अच्छा तो जाओ। दारोग़ा जी से मेरा सलाम कहना। अगर वे मेरा काम कर देंगे तो उनको पान खाने के लिए दो सौ रुपया दूँगा। बल्कि सौ रुपये अभी पेशगी लेते जाओ।

दारोग़ा साहब की बनसी की पैरकुआ फिर हिलने लगी। किन्तु उस ओर न देख करके वे बोले—तो आप रुपया लाये हैं?

"जी नहीं, साथ तो नहीं लाया। दफ़्तर में रक्खा है। हुज़ूर

से मुलाक़ात तो कभी थी नहीं। सोचा, यह कहने से कदाचित् मैं ही विपद में फँस जाऊँ। हाकिम का मन पाये बिना क्या ये बाते कही जाती हैं। ऐसे भी कितने ही अकाल-कोहड़े दारोग़ा हैं जो इन बातों में नहीं रहते—अपने को धर्मपुत्र युधिष्ठिर बतलाते फिरते हैं। अब हुज़ूर से बातचीत हो गई। जी में साहस हुआ। हुक्म हो तो रुपया कल ही लाकर हाज़िर कर दूँ।"

"हाँ, कल लेते आइएगा। किन्तु अपने मालिक से कहिएगा कि यह काम इतनी आसानी से नहीं हो सकता। किसी आदमी को जाल में फँसाना बड़े दुःसाहस का काम है। सब गवाह दुरुस्त रहने चाहिएँ—मैजिस्ट्रेट से सज़ा मिली भी तो उसके ऊपर जज है—और उसके भी ऊपर हाई कोर्ट है। क्या जाने कब किस ओर से क्या आफ़त आ पड़े। पुलिस की नौकरी बड़े जोखों की है। दो सौ रुपये के लिए इतनी बड़ी आफ़त का बोझ मैं सिर पर नहीं ले सकूँगा। बाबू से समझा कर कहिएगा। अगर पाँच सौ रुपया खर्च कर सकें तो मैं कोशिश करूँगा।

रौनक़—हुज़ूर ने जो कुछ कहा है वह ज़रा भी झूठ नहीं। दो सौ रुपया सचमुच बहुत कम है। यह मैंने बाबू से कहा भी था। उन्होंने कहा—अगर दो सौ रुपये में दारोग़ा जी राज़ी न हों तो और भी कुछ दिया जायगा। मैं जाकर बाबू से आज ही कहूँगा। जहाँ तक होगा, बढ़ाने का यत्न करूँगा। आपकी फ़ीस जितनी बढ़ेगी उतना ही मेरा लाभ है। आपके इस तरफ़ कैसा

रिवाज है, नहीं कह सकता—हम लोगों के तरफ़ ज़मींदार-गुमाश्ते फ़ी सैकड़े पचीस कमीशन पाते हैं।

दारोग़ा ने हँसकर कहा—अगर मुझे पाँच सौ दिलाइएगा तो एक सौ आपका होगा। इससे कम होने पर दस रुपये सैकड़ा कमीशन पाइएगा। इस तरफ़ कमीशन का यही रेट है।

रौनक़—मेरे यत्न में त्रुटि न होगी। अब बताइए, किस उपाय से वह साला फँसाया जाय।

दारोग़ा—उपाय बहुत हैं। आपने उसका घर देखा है?

"जी नहीं।"

"उसका घर देखना बहुत ज़रूरी है। सुभीता पाकर कोई चीज़ उसके घर में रखवा कर फिर ख़ानातलाशी करके चीज़ बरामद करनी पड़ेगी। चोरी का माल हो, बन्दूक़ हो—या शराब बनाने का कोई औज़ार हो, अथवा सिक्का ढालने का ठप्पा आदि सामान हो—या किसी के घर में आग लगा देने की तुहमत लगा कर उस पर मुक़दमा चलाया जा सकता है। मगर इसके लिए जिसका घर होगा उसे अपने हाथ में करना होगा। उस गाँव में उसका दुश्मन कौन है—इसका पता लगा कर उसे हाथ में करना बहुत ज़रूरी है। मेरी राय लीजिए तो उसके घर में कोई चीज़ चुपचाप रखवा कर ख़ानातलाशी कराना ही सबसे अच्छा ज़रिया है।

रौनक़—आप जो सलाह दीजिएगा, मैं उसी के बमूजिब काम करने को तैयार हूँ।

दारोग़ा—अच्छा, तो कल सौ रुपये लेते आइएगा। फिर एकान्त में बैठ कर सब बातों का इन्तज़ाम कर लिया जायगा।

"बहुत अच्छा। कल इसी समय आऊँ तो भेंट होगी ?"

"यह हम कैसे कहें—दारोग़ा ही ठहरे—कब कहाँ ख़ून हो—डकैती हो—कहाँ क्या हो जाय—इसका कुछ निश्चय तो रहता ही नहीं। ख़बर पाते ही जाना पड़ेगा। हम लोगों के लिए घोड़े की पीठ पर ज़ीन कसा तैयार रहता है। अभी तो जहाँ तक देखने में आता है—कल इस वक्त थाने ही में रहूँगा।"

रौनक़ आदाब करके बिदा हुआ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

आज ठीक समय पर रौनक़लाल ने थाने में जाकर दारोग़ा को सौ रुपये गिन दिये। दोनों आदमियों ने अलग एकान्त में बैठ कर बड़ी देर तक सलाह मशविरा किया। आख़िर हरिदास को फँसाने का एक पक्का उपाय सोचा गया। दारोग़ा ने कहा—इधर तो सब ठीक हुआ ही समझिए। लेकिन बाक़ी रुपया ?

रौनक़—मेरे बाबू साहब अभी घर पर नहीं हैं। काशी गये हैं। उनके आने पर सब ठीक हो जायगा। पाँच सौ नहीं तो चार सौ ज़रूर मैं दिला सकूँगा—इसका पूरा भरोसा है।

"कोशिश कीजिएगा, हो सके तो कुछ और बढ़ाइएगा।"

"जी। हें हें, यह कहना न होगा। कोशिश में कसर न रहेगी। देखें, कहाँ तक क्या होता है।"

"अच्छा तो आज शाम को ही जाकर उस बात को ठीक कीजिए। वह राज़ी हो जायगा न ?"

"राज़ी क्यों नहीं होगा ? उसका बाप राज़ी होगा, उसके चौदह पुरखा राज़ी होंगे। इसके लिए आप निश्चिन्त रहें।" कह कर रौनक़ टट्टू पर चढ़ कर देवीपुर की ओर रवाना हुआ।

सन्ध्या होने के अनन्तर दफ़्तर में पहुँच हाथ-पैर धोकर रौनक़ भगवान का नाम लेने बैठा। झोली के भीतर उँगली

हिलती है, माला खड़खड़ाती है। मुँह से भी मन्दस्वर में 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' सुना जा रहा है किन्तु उसके मन में चिन्ता की तरङ्ग यों लहरा रही थी—

"सोचा था, बाबू साहब का दिया हज़ार रुपया मेरा ही हुआ किन्तु देखता हूँ, उसमें से चार सौ रुपया शायद निकालना पड़ेगा। सौ तो आज दे ही आया हूँ। तीन सौ वह और लेगा—बिना लिये नहीं छोड़ेगा। चालीस रुपया उसमें से कमीशन मिलेगा। बाक़ी तीन सौ साठ हाथ से निकल गया। किन्तु क्या किया जाय? रुपयों का मोह करने से शत्रु दबाया नहीं जा सकता। शत्रु को दबाने के लिए रुपया चाहिए। वह रुपया फिर किसी युक्ति से बाबू साहब से वसूल कर लिया जायगा। वे कहाँ हैं, यह अब तक मालूम नहीं हुआ। कहीं भी हों, वे चिट्ठी ज़रूर ही लिखेंगे। यहाँ का हाल जानने के लिए जनाब का जी छटपटाता होगा। उनकी चिट्ठी पाते ही यह रुपया वसूल कर लेने की युक्ति निकालूँगा। हरिदास! ओ हरिदास! जिस दिन धर्मपाल बाबू कहेंगे उसी दिन तू मुझ पर जाल करने की नालिश करेगा? ले अब नालिश का मज़ा चखाता हूँ—तू अच्छी तरह मज़ा चक्खेगा। मैं जेल जाता हूँ या तू! कौन किसको जेल भेजता है, यही देखना है। अब धनीराम को मुद्दई होने के लिए राज़ी कर लेने ही से काम सिद्ध हो जायगा। बुला भेजा है, अभी तक नहीं आया। आने पर धमकाकर काम निकालना पड़ेगा।"

रौनक़ इस तरह सोच रहा था कि इसी समय धनीराम हाज़िर हुआ। बोला—हज़ूर ने बुलाया था। क्या हुक्म है?

रौनक़ इशारे से बैठने के लिए उससे कह कर झोली को छाती के पास करके आँख मूँद कर ध्यान में मग्न हुआ। कोई तीन चार मिनट तक इस तरह रह कर झोली को माथे से लगा प्रणाम करते करते कुछ मन्त्र-सा पढ़ने लगा। फिर धनीराम की ओर देखकर बोला—मैं आज फिर थाने गया था।

"थाने में! क्या करने?"

"दारोग़ा जी ने बुलाया था।"

"क्यों? किसलिए बुलाया था!"

"किसलिए बुलाया था, यही कहने के लिए तो मैंने तुमको बुलाया है। मामला बड़ा टेढ़ा है।"

धनीराम ने चौंक कर कहा—क्या किसी पर कुछ ज़ोर ज़ुल्म होने को है?"

"और किस पर? तुम पर और मुझ पर। शायद मुझे और तुम्हें जेल जाना पड़े।"

धनीराम का मुँह सूख गया। वह डर से थूक घोंट कर बोला—मामला क्या है?

"ओफ़! कितना चिल्लाते हो? आहिस्ते आहिस्ते बात करो। देखो कोई बाहर तो नहीं है।"

धनीराम उठ कर देख आया, बाहर कोई नहीं था। रौनक़

ने उसे अपने पास बिठा कर कहा—आज तीन बजे सोकर जब उठा तब मैं तम्बाकू पी रहा था। इसी समय थाने से एक आदमी ने आकर कहा—'आपको दारोग़ा साहब बुलाते हैं।' मैंने सोचा, कल मैं मुलाक़ात कर ही आया हूँ, फिर आज उन्होंने एकाएक क्यों बुला भेजा है! सात पाँच सोचते सोचते घोड़े पर चढ़ कर थाने गया। जाकर देखा तो दारोग़ा साहब लाल पीली आँखें किये बैठे हैं। एक छोटी चौकी पर भूरे रङ्ग की बिल्ली मरी पड़ी थी। मुझको देखते ही कान्सटेबुल को हुक्म दिया, 'बाँधो साले को।' हुक्म पाते ही दो सिपाहियों ने झट रस्सी से कस कर मेरे दोनों हाथ बाँध दिये। तब दारोग़ा मुझे बेतरह गालियाँ देने लगे। मैं तो एकदम गूँगा हो गया। क्या बात है, कुछ भी समझ में नहीं आई। आख़िर दारोग़ा ने कहा—तुम तो एक तरह से हम लोगों की जान ले ही चुके थे—मगर ख़ुदा ने ख़ैर की।

मैंने कहा—हुज़ूर यह कैसी बात कह रहे हैं?

दारोग़ा ने कहा—"तुम कल जो घी दे गये थे उसमें विष था—काले साँप का ज़हर! मेरे बाबर्ची ने उसी घी का आज हलुवा बनाया था। हलुवा नीचे उतार कर वह किसी काम से कहीं गया। इसी समय एक बिल्ली आकर हलुवा खाने लगी। इतने में बाबर्ची आ गया। बिल्ली को डराकर उसने भगाना चाहा, पर वह भाग न सकी। म्यों-म्यों करके घूमने लगी। कुछ देर चक्कर खाकर लोट गई। इसके बाद शक होने पर हमने वह

हलुवा खाने के लिए कौवे के आगे डाला तो कौवा मर गया। कुत्ते को खिलाया तो कुत्ता भी मर गया। मुर्ग़ी को खिलाया तो वह भी मर गई। हम लोगों को मार डालने ही के लिए तुम यह घी दे गये थे—दफ़ा ३०७ के अनुसार तुम्हें दस वर्ष के लिए जेल जाना होगा।" यह सुनकर मैं चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। कहने लगा—दुहाई ख़ुदाबन्द की। मेरा कोई क़सूर नहीं। मैंने रुपया देकर घी मँगाया था। मैं कैसे जानता कि इस घी में विष मिला है! दारोग़ा ने पूछा—घी कौन लाया था? तब मैंने तुम्हारा नाम बतला दिया।

धनीराम थर थर काँपने लगा, किसी तरह हिम्मत करके बोला—मेरा नाम बतला दिया!

"क्या करें, जब जान पर आ पड़ी तब कहना ही पड़ा। कहावत है 'जान तब जहान।' मैंने कुछ झूठ भी तो नहीं कहा। तब दारोग़ा ने कहा—तुम और धनीराम दोनों मुजरिम हुए। दोनों का चालान कर दूँगा। मैंने उनके हाथ पैर पकड़ कर बहुत तरह से प्रार्थना की। अन्त में जब पाँच सौ रुपया देना क़बूल किया तब दारोग़ा ने कहा—अच्छा, तुमको तो छोड़ दिया लेकिन धनीराम को नहीं छोड़ूँगा। मैंने फिर हाथ जोड़ कर कहा—सरकार! वह ग़रीब निर्दोषी है—पाँच सात जगह से खोज कर घी लाया था। कहाँ, किस ग्वाले के घी में साँप ने मुँह डाला था, यह उस अभागे को क्या मालूम था। उसे भी छोड़ देने की आज्ञा दीजिए। दारोग़ा काहे को मेरी बात सुनने

लगा। बहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर कहा, अगर धनीराम मेरा एक काम कर सके तो मैं उसे माफ़ कर सकता हूँ। मैंने कहा—हुज़ूर जो हुक्म देंगे धनीराम वही करेगा—उसका बाप करेगा—उसके चौदह पुरखा करेंगे। तब दारोग़ा ने कहा—एक गाँव में मेरा दुश्मन है। उस पर चोरी का माल रखने का झूठा मुक़दमा चलाना है। अगर धनीराम मुद्दई होना क़बूल करे तो उसे छोड़ दूँगा नहीं तो चालान कर दूँगा। मैंने कहा, वह ज़रूर मुद्दई होना क़बूल करेगा। आप जो कहिएगा वही करेगा। दारोग़ा ने कहा—अच्छा, मैं जिस दिन कहूँगा उस दिन, रात के वक़्त वह कुछ काँसे-पीतल के बर्तन चुपचाप लाकर मुझे दे जाय—और घर जाकर अपने सोने के घर की दीवार में बाहर से एक सेंध दे रक्खे और दूसरे दिन सबेरे यहाँ आकर चोरी होने की रिपोर्ट लिखा जाय। वे बर्तन उस दुश्मन के घर में रखवा कर, चोरी का माल रखने के अपराध में, मैं उसका चालान कर दूँगा। मैंने कहा—वह अवश्य ही करेगा। यह कौन बड़ी बात है। हुज़ूर हाकिम हैं, जिससे ऐसा काम करने को कहेंगे वही हुज़ूर के डर से कर देगा। तब दारोग़ा जी ने मेरा बन्धन खोलवा दिया और कहा—जाओ, उससे पूछो, अगर वह राज़ी हो तो अच्छा है। जो राज़ी न हो तो तुम दोनों का चालान कर दूँगा। अगर वह वैसा करने को तैयार हो और तुम पाँच सौ रुपया दो तो दोनों को माफ़ कर दूँगा। बस, यही हाल है। कहो तुम क्या कहते हो ?"

धनीराम बहुत कुछ धैर्य धारण कर बोला—हुज़ूर जो कहेंगे उसे क्या मैं कभी अस्वीकार कर सकता हूँ !

"तो यह बात मैं कल दारोग़ा से जाकर कह दूँ ?"

"जी हाँ।"

"हाँ, दारोग़ा जी ने एक बात और कही है। तुम्हारे घर में काँसे-पीतल के कुछ टूटे फूटे बर्तन हैं ?"

"होंगे। एक बटलोही है उसका किनारा टूटा हुआ है और एक पीतल का कलसा है, उसकी पेंदी में छेद है।"

"अच्छा, उस बटलोही और कलसे की—कल ही कसेरे के घर जाकर,—राँगे से मरम्मत करा ले आओ। कल ही—समझ गये न ? देरी न होने पावे।"

"क्यों ज़िलेदार साहब ?"

"अरे यह तुम नहीं समझ सके ? रपट लिखते समय दारोग़ा तुमसे पूछेगा—तुम्हारे बर्तनों में पहचान का कोई निशान है ? तुम लिखा दोगे, है—बटलोही का किनारा और पीतल के कलसे की पेंदी अमुक कसेरे के यहाँ से राँगे से मरम्मत करा कर लाया था। इसके बाद जब उस आदमी के घर से ये चीज़ें बरामद होंगी तब तुम ये चिह्न देखकर शिनाख़्त करोगे। अदालत में यह चिह्न दिखलाना पड़ेगा। कसेरा जाकर गवाही देगा—'हाँ, बटलोही और कलसे की मरम्मत मैंने ही की है। यही चिह्न है।' दो एक बर्तनों में इस तरह का चिह्न न होगा

तो शिनाख्त कैसे होगी ? इस तरह की बटलोही और कलसे सैकड़ों होंगे। अब समझा ?"

"जी हाँ। तो मैं कल ही कसेरे के घर जाकर उन दोनों बर्तनों की मरम्मत करा लाता हूँ। आप दारोग़ा से जाकर कह दें। वे जो कहेंगे, यह ग़ुलाम करने को राज़ी है।" यह कह कर धनीराम ने अपना सिर रौनक़लाल के पैरों पर रखकर प्रणाम किया।

———

छत्तीसवाँ परिच्छेद

नौका जब मिर्ज़ापुर में पहुँची तब ग्यारह बज गये थे। गोपीकान्त और बैरागी दोनों घाट पर उतरे।

गोपीकान्त—बाबा जी, तो अब आप अपने चेले के यहाँ जाइएगा ? अगर आप उधर न जाते, सीधे स्टेशन पर ही चलते, तो अभी एक पैसिञ्जर गाड़ी मिल जाती।

बैरागी ने कहा—शङ्कर महादेव, शङ्कर महादेव। एक पैसिञ्जर ! पैसिञ्जर से कैसे जा सकता हूँ ? अभी तो ठाकुर जी की सेवा नहीं हुई। प्रसाद बनाना है। उसके उपयुक्त जगह भी यहाँ नहीं देख पड़ती।

गोपीकान्त—तो आप चेले के यहाँ जाइए। वहाँ सब इन्तज़ाम ठीक होगा। ठाकुर जी की सेवा-पूजा करके भोग लगा कर चले आइए। न होगा तो शाम की गाड़ी से चले चलेंगे।

"और तुम ?"

"मैं यहाँ स्नान करके हलवाई की दूकान में कुछ जलपान करूँगा। आप पिछले पहर स्टेशन में आइएगा, वहीं भेंट होगी।"

बैरागी बाबा दुविधा में पड़ गये। इस अवस्था में अलग होना ठीक नहीं—विशेषकर जब कि धनवान् भक्त मिल गया है। उसका स्थानीय शिष्य भी अमीर है, किन्तु है भारी कृपण। वहाँ रुपये दो रुपये के लोभ से जाकर क्या ऐसे शिकार को

हाथ से खो देना चाहिए ? इसी से बैरागी ने कहा—नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? तुम भी मेरे साथ चलो। मेरा चेला बड़ा सज्जन है। मेरे साथ चलने से वह तुम्हारा भी आदर करेगा।

गोपीकान्त नहीं चाहता था कि किसी रईस के यहाँ जाकर ठहरे। शायद वहाँ किसी परिचित आदमी से भेंट हो जाय, कोई पहचान ले। वह कोई दूसरा बहाना न पाकर बोला—मुझे यह आज्ञा न दीजिए। मैं दूसरे का अन्न नहीं खाता।

"इसमें दोष क्या है ? शास्त्र में लिखा है, 'प्रवासे नियमं नास्ति'।"

"जी नहीं, यहीं स्नान करके पूरी-तरकारी खा लूँगा।"

बैरागी ने कहा—बासी पूरी-तरकारी खाकर क्यों कष्ट सहोगे। आज-कल का मौसम भी अच्छा नहीं है। "बासी-पूरी च मिष्टान्नं अम्लोद्गारं च कारयेत्।"

गोपीकान्त तब भी राज़ी नहीं हुआ। बैरागी ने कहा—तो फिर मैं भी नहीं जाऊँगा। यहीं कहीं रसोई बनाने का बन्दोबस्त कर लूँगा। अपने लिए तो कोई परवा नहीं। इस पहर कुछ न खाता तो क्या होता, किन्तु साथ में ठाकुर जी हैं। उन्हें तो भूखा नहीं रख सकता। क्या यहाँ थोड़ी-सी जगह कहीं न मिलेगी ?—कहकर बैरागी इधर-उधर ताकने लगा।

एक वृद्ध गङ्गा स्नान करके भीगे कपड़े पहने वहाँ खड़े खड़े इन दोनों की बातें सुन रहे थे। वे आगे बढ़ कर बोले—बाबा जी

सीताराम। यदि कृपा हो तो इस ग़रीब के यहाँ चलिए। मैं आप लोगों के रहने के लिए और रसोई बनाने के लिए अच्छी जगह दे सकता हूँ।

बैरागी ने प्रसन्न दृष्टि से देखकर कहा—आपका नाम ?

"मेरा नाम माधवप्रसादसिंह।"

"आप कहाँ रहते हैं ?"

"बहुत ही समीप। यहाँ से मेरा घर देख पड़ता है।"

"आप यहाँ क्या करते हैं ?"

"मेरा बड़ा लड़का यहाँ वकालत करता है।"

"अच्छा, आपके पुत्र वकील हैं ? क्या कहते हो बाबू ?" कह कर बैरागी गोपी बाबू के मुँह की ओर देखने लगा।

गोपी ने कहा—जब ये जगह देना चाहते हैं तब चलने में हर्ज ही क्या है !

वृद्ध ने पूछा—बाबू साहब का नाम ?

गोपीकान्त—मेरा नाम गोपीलाल है।

वृद्ध—आप लोग भगत हैं—भगवान् के प्यारे हैं। आज मेरा बड़ा भाग्य है। तो अब पधारिए।

गोपीकान्त ने कहा—हम लोग यहीं स्नान कर लें तो चलें। आप भीगे कपड़े पहने कब तक खड़े रहिएगा ? आप आगे चलिए। मकान तो यहाँ से दिखलाई दे रहा है। स्नान करके हम भी आते हैं।

"बहुत अच्छा। तब तक मैं वहाँ सब इन्तज़ाम कर रक्खूँगा।" कहकर वृद्ध ने हाथ जोड़ कर कहा—अवश्य आइएगा, आशा देकर निराश न कीजिएगा।

बैरागी—हम स्नान करके तुरन्त आते हैं।

वृद्ध फुर्ती से घर की ओर चले गये।

गोपीकान्त ने कहा—बाबा जी, पहले आप स्नान कर लीजिए। मैं सामान के पास बैठा हूँ।

"अच्छा" कह कर स्नान करने के लिए बाबा जी पानी में पैठे।

इधर गोपीकान्त ने गङ्गा की ओर पीठ करके चमड़े का बैग खोला और रूमाल में बँधा हुआ नोटों का बण्डल निकाल लिया। उसे अपनी धोती के खूँट में बाँध, चपकन की जेब से खुर्दा-रुपया-पैसा निकाल कर बैग में डाल दिया और पहनने के लिए एक धोती निकाल ली। बैरागी बाबा नहाते जाते थे और गोपीकान्त के इस काम पर खूब ध्यान दे रहे थे।

बैरागी बाबा के स्नान कर लेने पर गोपीकान्त स्नान करने गया। झटपट स्नान कर, पानी से निकल, उसने धोती बदली और फिर भीगे कपड़े से नोट का बंडल खोल कर हिक्मत से बैग में रख दिया। पर यह भी बैरागी की दृष्टि से बचा नहीं रहा।

अब दोनों यात्री माधवप्रसाद के घर की ओर रवाना हुए। माधव बाबू कमरे के बरामदे में ही खड़े थे। बरामदे में एक ओर दो छोटी चौकियाँ रक्खी थीं। उन्हीं पर उन्होंने उन

अभ्यागतों को बड़े आदर से बिठाया। बैरागी के चरण उन्होंने स्वयं धोये और एक नौकर ने गोपीकान्त के पैर धो दिये।

कमरे के पीछे ९ बरामदे में एक कम्बल बिछा था। एक कोने में नई ईंटों का चूल्हा बनवा दिया गया था। ईंधन, हाँड़ी, रसोई के और बर्तन, एक पीतल के घड़े में गङ्गाजल आदि सभी सामान रक्खा हुआ था। हवेली के रसोइया ब्राह्मण ने दो थालियों में चावल, दाल, घी आदि सब वस्तु ला कर रख दी।

गोपीकान्त ने कहा—यह सब किसलिए? बाज़ार तो नज़दीक है ही। मैं सब चीज़ें मोल लिये आता हूँ।

माधव बाबू ने कहा—यह कभी हो सकता है? जब आपने कृपा करके इस अधम के घर आतिथ्य स्वीकार किया है तब अपना खर्च करके कैसे खाइएगा। यह नहीं हो सकता।

"आपने हम लोगों को स्थान देकर ही यथेष्ट उपकार किया है। अब आपको विशेष कष्ट देना ठीक नहीं। साथ में रुपया-पैसा है—बाज़ार से आवश्यक वस्तुएँ लिये आता हूँ।" कहकर गोपीकान्त हाथ में बैग ले उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, नहीं, आप ऐसा न करें। इसे आप अपना ही घर समझें। मेरे बहुत पुण्य थे, इसी से बाबा के सदृश साधु पुरुष और आपके ऐसे सज्जन पुरुष के चरणों की रज मेरे घर में पड़ी है। यदि इस ग़रीब की सेवा ग्रहण न कीजिएगा तो मन में बड़ा ही दुःख होगा।" कह कर वृद्ध ने दोनों हाथ जोड़े।

बैरागी ने कहा—गोपीरमण, अब रहने दो। शास्त्र का वचन है—"मनोदुःखं न दातव्यो अतिथीनां सेवकेषु च।" भक्तों और सेवकों के मन में दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। और ये तो हम लोगों को कुछ देते भी नहीं हैं, देते हैं हमारे इष्टदेव को। उनको भोग लगेगा—इसके बाद हम लोग प्रसाद पावेंगे।

गोपीकान्त चुप हो रहा। बैरागी ने अपने हाथ से रसोई बनाई। ठाकुर जी को भोग लग चुकने पर दोनों ने प्रसाद पाया। तब माधव बाबू ने दोनों के लिए कमरे में तख्त के ऊपर बिछौना बिछवा दिया। फिर इनकी आज्ञा लेकर वे भोजन और विश्राम करने के लिए भीतर गये।

बिछौने पर बैठकर बैरागी बोला—शङ्कर की क्या ही दया है। जहाँ जाता हूँ, कोई कष्ट नहीं होता। सोच रहा था कि रास्ते में आज कुछ खाने को मिलेगा या नहीं। किन्तु विश्वनाथ ने सब चीजें जुटा दीं। एक चिलम तो भरो।

गोपीकान्त ने चिलम भर कर बैरागी के हाथ में दी। फिर आप भी दम लगा कर लेट गया। वह मार्ग की थकावट और मन की चिन्ता से अत्यन्त कातर था। आँख मूँदते ही नींद आ गई।

बैरागी बोल उठा—शङ्कर महादेव, शङ्कर महादेव। आज उस पैसिञ्जर में जाने से बड़ा कष्ट होता। प्रयाग बड़ा ही रमणीय स्थान है। पवित्र स्थान है। देवताओं का घर है। तीर्थों

का राजा है। श्रीमाधव जी के मन्दिर में प्रवेश करने पर फिर बाहर निकलने को जी नहीं चाहता। शङ्कर हर, शङ्कर हर— अच्छा गोपीलाल, साँझ की गाड़ी से चलें तो हम लोग वहाँ किस समय पहुँचेंगे ?

कोई उत्तर नहीं।

"गोपीलाल। ओ गोपीलाल !"

गोपीलाल ने तब खुर्राटा लेना आरम्भ कर दिया था।

बैरागी बाबा ने कुछ देर और अपेक्षा की, कहीं कोई न था। नौकर चाकर भी सो गये थे। घड़ी में टन् टन् कर दो बज गये।

बैरागी ने झट अपनी झोली के भीतर से तेज़ छुरी निकाल कर गोपीलाल के चमड़े के बैग को बात की बात में इस पार से उस पार तक फाड़ डाला। गीले रूमाल में बँधा हुआ नोटों का बण्डल और जो कुछ फुटकल रुपया-पैसा था वह सब निकाल कर अपनी झोली में रख लिया। बैग के कटे हिस्से को दीवार की ओर छिपा कर अपनी झोली ले बैरागी बाबा, पैरों को आहट बचा कर, कमरे से निकले और रफू-चक्कर हुए।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

चार बजे के बाद वकील साहब ने कचहरी से लौट कर देखा कि उनकी बैठक में एक अपरिचित भला आदमी सो रहा है। वकील साहब के पिता भी उसी समय भीतर से कमरे में आ पहुँचे। वकील साहब का नाम देवेन्द्रप्रसाद है। उन्होंने पिता से पूछा—ये कौन हैं ?

"एक अतिथि हैं।"

"कहाँ से आये हैं ?"

"घर इनका बनारस की तरफ़ है। ये और एक बैरागी साधु दोनों नाव से उतरे थे। बैरागी बाबा कहाँ गये ? वे तो यहाँ दिखाई नहीं देते।"

इनकी बातचीत का शब्द सुनकर गोपीकान्त की नींद टूट गई। वह आँख खोल कर वकील साहब की ओर देखने लगा।

"कहिए, गोपीलाल बाबू जी, कैसी नींद आई ?" कह कर वृद्ध मुस्कुराने लगे।

"बहुत अच्छी" कहकर गोपीकान्त उठ बैठा। देवेन्द्र बाबू ने हाथ जोड़ कर अभिवादन करके कहा—बाबा जी कहाँ हैं ?

गोपीकान्त ने इधर-उधर देखकर कहा—अयँ ! बाबा कहाँ गये ? यहीं तो सोये थे।

वृद्ध ने कहा—यहीं तो आराम करते थे। गये कहाँ ? मालूम होता है, कहीं बाहर गये हैं।

हम लोगों को साँझ की गाड़ी से जाना होगा। कै बजे हैं ?—कह कर घड़ी देखने के लिए गोपीकान्त ने बैग को अपनी ओर खींच लिया।

बैग को कटा देख गोपीकान्त ने चौंक करके कहा—यह क्या ! मेरे बैग को किसने फाड़ डाला ?

वृद्ध और उनके पुत्र झुक कर बैग को देखने लगे। वे भी बोल उठे—अरे !—यह क्या हुआ ?

गोपी बाबू ने तुरन्त बैग से सब चीजों को खींच खींच कर बाहर निकाल डाला। धोती, चपकन, गंजी, तौलिया सबको दोनों हाथों से पागल की भाँति झाड़ कर कहा—हाय ! सर्वनाश हो गया।

"क्या गया है ?"

"जो कुछ था सब चला गया।"

वकील ने पूछा—क्या था ?

"नोट थे और कुछ रेज़गारी भी थी।"

वृद्ध ने कहा—कितने रुपये के नोट थे ?

"थे कुछ रुपये के। तीर्थ-यात्रा करने को चला था। ख़ूब तीर्थ-यात्रा हुई ! एक पैसा भी पास नहीं रहा जो पोस्ट-कार्ड ख़रीद कर घर पर चिट्ठी लिखूँ और रुपया मँगाऊँ।"

कुछ देर तक सभी चुप बैठे रहे। फिर घर के मालिक ने कहा—वह बैरागी कौन था ?

"यह तो नहीं जानता। नौका में ही उससे भेंट हुई थी। उसने कहा—'मैं भी तीर्थ-भ्रमण करूँगा।' सोचा, मैं नया आदमी हूँ, कभी घर से नहीं निकला। वह साधु था, इसी से उसको साथ में ले लिया था। अन्त में उसने मुझे इस विपद् में डाल दिया।"

वकील ने कहा—यह बिलकुल उसी का काम है।

वृद्ध को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। बोले—"नहीं, उन्होंने कभी नहीं लिया है। शायद वे पास ही कहीं घूमने-फिरने गये हैं। अभी आते होंगे। खुला घर देखकर किसी चोर ने यह काम किया है।" यह कहकर वे बैरागी की खोज में बाहर गये।

वकील ने कहा—"बाबू जी आप चाहे जो कहें परन्तु है यह उसी बैरागी का काम।" बाबू जी जैसे सरलस्वभाव के हैं उसी के अनुसार उन्होंने माथे पर जटा और सारे बदन में भस्म लगी देखकर ही उसे एक सिद्ध पुरुष समझ लिया होगा। बैरागी की कोई भी चीज़ तो यहाँ नहीं दीखती।

"उसके साथ एक झोली, मृगछाला, चिमटा और कमण्डल भी था। अगर वह पास ही कहीं घूमने जाता तो उन चीज़ों को क्यों ले जाता ?"—कहकर गोपीकान्त माथे पर हाथ रख कर चुप हो रहा।

उसकी दशा देखकर वकील ने कहा—आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? घर पर चिट्ठी लिख कर रुपया मँगवा लीजिए। जब तक रुपया न आवे तब तक आप आराम से यहाँ रहिए। मैं आपको चिट्ठी का काग़ज़ और लिफ़ाफ़ा आदि देता हूँ।

इस पर गोपीकान्त कुछ न बोला। वकील ने कहा—पुलिस में इसकी ख़बर दे देना उचित है। क्या नम्बरी नोट थे ?

"जी नहीं, सिर्फ़ दस दस रुपये के नोट थे। जो होनी थी सो हुई। अब थाने में इसकी ख़बर देने से मैं और भी आफ़त में फँसूँगा।"

इतने में बूढ़े भी लौट आये और बोले—ओह—बैरागी बाबा तो कहीं नहीं मिले।

बेटे ने कहा—क्या अब वे यहाँ हैं ? वे तो बहुत दूर खसक गये।

वृद्ध—नहीं, वे यहीं किसी चेले के पास गये होंगे, या किसी मन्दिर में भगवान् का दर्शन करने गये होंगे। शाम तक फिर यहाँ आ जायँगे।

"नहीं बाबू जी, दर्शन करने नहीं गये हैं। दर्शन करने जाते तो झोली, मृगछाला और चिमटा क्यों ले जाते !"

तब वृद्ध इसका कोई प्रतिवाद नहीं कर सके।

उस रात को गोपीकान्त वहीं रह गया। दूसरे दिन उसने वकील साहब से कहा—मेरी इस घड़ी का दाम ५०) रु० है, इसे बन्धक रख कर मुझे दस रुपया उधार दीजिए। आपने मुझ

पर बड़ी दया की है। मेरे घर से न मालूम कब रुपया आवेगा—तब तक यहाँ रहकर रोज़ रोज़ आपको दुःख देना उचित नहीं।

वकील और उनके पिता ने इस प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया। बोले—अगर मैं एक विपद्-ग्रस्त सज्जन को खाने के लिए मुट्ठी भर अनाज नहीं दे सकूँ तो मुझे घर बनाने का फल क्या हुआ? जो मैं आपकी सेवा न करूँगा तो मेरा धर्म डिग जायगा। घड़ी बन्धक रखने की क्या ज़रूरत है। आपके मामूली ख़र्च के लिए जो दरकार होगा, मैं दूँगा। आप यहीं रहिए। रुपया आने पर आप मुझे दे दीजिएगा।

इन लोगों का विशेष आग्रह देखकर गोपीकान्त को सहमत होना पड़ा। उसी दिन उन्होंने रौनक़लाल को पत्र लिखा—

श्री

परमकल्याणपात्र मुन्शी रौनक़लाल को राम राम। मैं अनेक तीर्थों का दर्शन करके आज-कल यहाँ ठहरा हुआ हूँ। मेरे बैग से रुपया-पैसा चोरी हो गया जिससे मैं बड़े कष्ट में हूँ। ख़ज़ाने से बहुत शीघ्र १००) एक सौ रुपया मनीआर्डर करके नीचे के पते से भेज दो। वहाँ का सब समाचार जानने के लिए भी चित्त व्याकुल हो रहा है। इसलिए वापसी डाक से जवाब देना न भूलना। इति ३० कार्तिक।

शुभचिन्तक
श्री गोपीलाल

श्री देवेन्द्र बाबू वकील के मकान पर
मिर्ज़ापुर

पाँचवें दिन चिट्ठी का जवाब आया। रौनक़ ने चिट्ठी के

साथ सिर्फ़ दस दस रुपये के दो नोट भेजे हैं। लिखा है—आपके कमलपुर छोड़ने के बाद मैं दूसरे दिन तड़के उठकर थाने में गया। जाकर देखा, तो हरिदास उस स्त्री को साथ ले रपट लिखाने के लिए बड़ के पेड़ के नीचे खड़ा है। तब मैंने झट-पट दारोग़ा से भेट करके ५००) उनको, १००) हेड कान्सटेब्ल को, ५०) मुन्शी को और अन्यान्य सिपाहियों को ५०), इस तरह ७००) रु० देकर ठीक ठाक कर लिया। दारोग़ा ने रपट न लिखकर उन्हें झूठा मुक़दमा दायर करने के अपराध में धमकी देकर थाने से निकाल दिया था। किन्तु आज मुझे फिर ख़बर मिली है कि हरिदास उस स्त्री को लेकर सदर में मैजिस्ट्रेट साहब के यहाँ नालिश करने गया है। इसलिए उस मामले का बन्दोबस्त करने मुझे आज़मगढ़ जाना होगा।—गाड़ी तैयार है। हुज़ूर के दिये हुए एक हज़ार रुपये में अब तीन सौ बचा है। ख़ज़ाने से और दो सौ लिया है, कुल ५००) रुपया लेकर मैं आज़मगढ़ जा रहा हूँ। यहाँ और रुपया न रहने के कारण मैंने इस पत्र के साथ सिर्फ़ २०) रु० भेजे हैं। आज़मगढ़ में जो हाल होगा, वह वहीं से लिखूँगा। हुज़ूर को अभी घर आने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि आज़मगढ़ से आपके नाम वारंट जारी हो तो आश्चर्य नहीं।

पत्र पढ़ कर गोपी बाबू का मुँह सूख गया।

माधव बाबू ने आकर पूछा—घर का समाचार तो अच्छा है?

टूटे हुए स्वर में गोपीकान्त ने कहा—समाचार तो अच्छा है, किन्तु लड़का लिखता है—रुपया-पैसा अभी कुछ हाथ में नहीं है। जहाँ तक हो सकेगा, शीघ्र ही बन्दोबस्त करके भेज देगा।

वृद्ध—तो हर्ज क्या है, अभी कुछ दिन यहीं ठहर जाइए न। रुपया आने पर घर चले जाइएगा।

गोपीकान्त—सो तो अब हुआ ही। किन्तु आप लोगों को ज्यादा तकलीफ़ देने का साहस नहीं होता।

वृद्ध—गोपीलाल बाबू, आप यह बात न कहें। आप हमारे अतिथि हैं, उस पर भी ऐसे सज्जन। कुछ दिन आपकी सेवा कर सकूँ तो यह मेरा परम सौभाग्य है। आप भगवान् से प्रार्थना कीजिए जिसमें देवता और ब्राह्मणों में मेरी भक्ति बनी रहे, जिनकी कृपा से मुट्ठी भर अन्न मेरे घर में मौजूद रहे जिसे बाल-बच्चे मिल कर खायँ।

अब रौनक़लाल की दूसरी चिट्ठी की प्रत्याशा में गोपीकान्त दिन बिताने लगा।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

एक दिन हुआ—दो दिन हुए—तीन दिन हुए—तो भी आज़मगढ़ से कोई अभिलषित पत्र नहीं आया। गोपीकान्त सोच रहा था—क्या हुआ, रौनक़ ने क्या किया? क्या वारंट जारी हो ही गया? इन बातों की चिन्ता क्षण भर भी उसके मन से न हटती थी। सबेरे और शाम को डाक-प्यून के आने के समय वह सड़क पर जा खड़ा होता था। जहाँ तक उसकी नज़र जाती थी, चाह-भरी दृष्टि से देखता था।

पास में जितना रुपया है वह इतना थोड़ा है कि इसे लेकर अन्यत्र जाने का साहस नहीं होता। वह भी रोज़ रोज़ घटता ही जाता था। एक अपरिचित सम्बन्ध-रहित विनयी व्यक्ति के घर दोनों वक्त भोजन करने में उसे बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। इसी से वह रुपया आने पर, दूसरे दिन, सबेरे सड़क पर टहलने का बहाना करके, बाज़ार गया। वहाँ से देवेन्द्र बाबू के लड़कों के लिए कुछ मेवे और मिठाई ख़रीद लाया।

यह देखकर वृद्ध बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—अगर आप चीज़ें लाये हैं तो आपको इनका दाम लेना होगा।

गोपीकान्त—यह क्यों? यदि मैं अपने पास से लड़कों के लिए कुछ खाने की चीज़ें लाया तो मैंने क्या अनुचित किया?

वृद्ध—आप मेरे अतिथि हैं, अभ्यागत हैं। आप अपना पैसा ख़र्च करके कोई चीज़ क्यों लाये ?

गोपीकान्त दाम लेंगे नहीं और वृद्ध दिये बिना छोड़ेंगे नहीं। बड़ी देर तक दोनों में यही लेन-देन का झमेला होता रहा। आख़िर वृद्ध क्रोध से मुँह लाल कर चुप हो बैठ रहे।

तब गोपीकान्त ने हँसकर कहा—कहिए बड़े बाबू, आपका भेदज्ञान तो अब तक नहीं गया है ? ये चीज़ें अगर आपके पुत्र देवेन्द्र बाबू लाते तो आप कितने ख़ुश होते। मैं ख़रीद लाया हूँ, इसलिए क्यों नाराज़ हो रहे हैं ?

यह सुनकर वृद्ध हँसने लगे, बोले—आपने अन्याय अवश्य किया है, किन्तु इसकी सज़ा आपको अभी देता हूँ। इनमें से थोड़ी थोड़ी सब चीज़ें पहले आपको खानी पड़ेंगी।

गोपीकान्त बोला—यह कौन बड़ी बात है। जो आपकी आज्ञा होगी उसका पालन मैं अवश्य करूँगा।

दूसरे दिन गोपीकान्त फिर बाज़ार गया और टोकरी भर ताज़ा साग-भाजी ले आया। उसके दूसरे दिन देवेन्द्र बाबू के लड़के को टहलाने के लिए ले गया। लौटते समय लड़का एक बाजा लिये घर आया। वह बाजा बजाकर घर के लोगों के कान फोड़ने लगा। छठे दिन तीसरे पहर गोपीकान्त कमरे में बैठकर हुक्का पी रहे थे। इसी समय डाक-प्यून ने आकर एक रजिस्टरी चिट्ठी उनके हाथ में दी। तब चार बज गया था।—वकील साहब तब भी कचहरी से नहीं लौटे थे। कमरे में और

कोई नहीं था। धड़कते हुए हृदय से गोपीकान्त बाबू ने पत्र खोला। उसमें से सौ रुपये का नोट निकला। रौनक़ ने एक बड़ी लम्बी चिट्ठी लिखी है। उसकी नक़ल यह है :—

श्री

स्वस्ति श्रीमहामहिम श्रीयुक्त बाबू गोपीलाल जी महोदयेषु-दास का अनेकानेक प्रणाम। श्रीमान् की सेवा में पहली चिट्ठी भेजने के अनन्तर मैं आज़मगढ़ गया। वहाँ जाकर एक मुख़्तार के मुहर्रिर से सुना—उसी दिन हरिदास लीलावती को लेकर नालिश करने के लिए कचहरी में आया और लाला कुलदीपलाल को उसने मुख़्तार नियुक्त किया। लाइब्रेरी के बरामदे में बैठकर मुख़्तार नालिश का मज़मून लिख रहा था। किन्तु नालिश दायर हुई या नहीं और होने पर उसका क्या फल हुआ, यह मुंशी कुछ भी नहीं बता सका। यह सुनकर मैं आधी रात को उक्त मुख़्तार के घर गया। तब तक मुख़्तार सो गये थे। उन्हें जगा कर मैंने अपना परिचय दिया और सब हाल कह कर रुपये का लोभ दिया। कुलदीपलाल ने ऊँघते हुए कहा—"आप मुझसे क्या करने के लिए कहते हैं?" मैंने कहा—"और कुछ नहीं, आपको ऐसा उपाय करना होगा जिसमें मुक़दमा ख़ारिज हो जाय।" उसने कहा—"बात बड़ी भयानक है—पीछे से कहीं मुझी को न फँस जाना पड़े।" वह बड़ी देर तर्क-वितर्क करके बोला—"अगर मुझको हज़ार रुपया मिले तो मैं मुक़दमा डिसमिस करा दूँगा।"

लेन-देन की रक़म को जब बहुत कस कर घटाया तब पाँच सौ रुपये पर बात तय हुई। उसका आधा ढाई सौ मैंने उसी वक़्त दे दिया और बाक़ी काम हो जाने पर देने का क़रार किया। तब कुलदीपलाल ने कहा—"आज कचहरी में आकर जब उसने मुझे नियुक्त किया तब पौने बारह बजे थे। फ़ौजदारी में दरख़ास्त देने की पुकार हो गई थी। दरख़ास्त लिखकर जब मैं इजलास पर गया तब वक़्त गुज़र चुका था, इस कारण हाकिम ने दरख़ास्त नहीं ली। कल दरख़ास्त पेश करने की बात है।" यह सुनकर मैंने मुख़तार से असल दरख़ास्त माँग कर पढ़ी। उसमें सब घटना संक्षेप से लिखी थी। लिखा था—हरिदास गहरी रात में उस औरत को बाग़ीचेवाले मकान का ताला तोड़ कर ले गया, किन्तु उसमें छोटे बाबू का कोई ज़िक्र नहीं। गवाहों की फ़ेहरिस्त में भी उनका नाम नहीं है। संभव है, उन्होंने लोक-लज्जा के भय से भाई के विरुद्ध गवाही देने से इनकार किया हो। इसी से हरिदास ने उनका नाम नहीं लिखाया। दरख़ास्त पढ़ कर मैंने अपने हाथ से उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये। मुख़तार से कहा, दूसरी एक ऐसी दरख़ास्त लिखिए, जिसे पढ़ते ही हाकिम मुक़दमा डिसमिस कर दे। मुख़तार ने कहा—"इसके लिए कोई चिन्ता नहीं। आज कचहरी में दो स्टाम्प-पेपर ख़रीदे हैं जिन पर मुद्दई के दस्तख़त और अँगूठे की छाप है। एक ही काग़ज़ पर दरख़ास्त पूरी हो गई, दूसरे काग़ज़ की ज़रूरत नहीं पड़ी। वह काग़ज़ मेरे पास मौजूद है, उसी पर

दरख़ास्त लिख सकता हूँ। किन्तु लिखूँगा क्या ?" तब हम दोनों ने विचार करके दरख़ास्त का मज़मून इस प्रकार ठीक किया—

"मेरा नाम लीलावती है। मैं बेवा हूँ। मेरी नालिश यही है कि मैं कमलपुर के ज़मींदार बाबू गोपीकान्त की हवेली में कई महीने से नौकरी करती थी। बाबू साहब बड़े कड़े मिज़ाज के आदमी हैं। वे मुझे बराबर तेज़ निगाह से देखा करते थे। उनकी कमीज़ का सोने का बटन चोरी होने पर उन्होंने मुझी पर सन्देह किया और थाने में भेज देने का डर दिखाया। इसलिए मैंने नौकरी से इस्तीफ़ा देकर अपनी बाक़ी तनख़ाह माँगी, किन्तु बाबू साहब ने मुझे तनख़ाह नहीं दी, गले में हाथ डाल गालियाँ दे घर से निकलवा दिया है। चार महीने की तलब, ३) रु० महीने के हिसाब से, १२) रु० मुझे मिलनी चाहिए। मैं थाने में रपट करने गई थी, किन्तु दारोग़ा ने मेरी नालिश नहीं सुनी। इसलिए अर्ज़ करती हूँ कि अनुचित भय दिखाने और गाली देने के अपराध में फ़ौजदारी ज़ाब्ते की ५०६ और ५०८ दफ़ा के अनुसार सम्मन या वारण्ट के ज़रिये असामी को तलब करके सुविचार करने का हुक्म फ़रमाया जाय।"

मुख़्तार ने कहा—"ऐसे दो तीन गवाहों का नाम लिखवा दीजिए कि यदि सुबूत तलब हो तो वे गवाह आपके मालिक का पक्ष लेकर गवाही दे सकें।" मैंने सरकार के नौकरों और नौकरानी का नाम लिखा दिया। मुख़्तार ने कहा—कल यह दरख़ास्त दाख़िल करके औरत का हलफ़न इज़हार

कराना होगा। किन्तु मैं ऐसे भाव से पूछूँगा, जिसमें असल बात कुछ भी ज़ाहिर न होगी। और मुक़दमा तुरन्त ख़ारिज हो जायगा।

मैं दूसरे दिन भेष बदल कर अदालत में हाज़िर हुआ। दरख़ास्त पेश होने पर लीलावती जब कटहरे में खड़ी की गई तब मुख़तार उससे इस तरह पूछने लगा—

सवाल—किस पर नालिश की है ?

जवाब—गोपी बाबू पर।

स०—कौन गोपी बाबू ? वे कहाँ रहते हैं ?

ज०—कमलपुर के ज़मींदार गोपीकान्त श्रीवास्तव।

स०—उनके यहाँ कितने दिन रही ?

ज०—तीन चार महीने।

स०—तुम्हारे साथ बाबू कैसा व्यवहार करते थे ?

ज०—ख़राब।

स०—उनसे रुपया मिला ?

ज०—नहीं।

स०—उस मकान से कब चली आई ?

ज०—दीवाली की रात को।

स०—किसके साथ आई ?

ज०—हरिदास के साथ।

स०—रिश्ते में वह तुम्हारा कौन है ?

ज०—दूर के नाते से वह मेरा देवर है।

स०—थाने में गई थी ?

ज०—हाँ।

स०—दारोग़ा ने क्या कहा ?

ज०—कहा, तू झूठ नालिश करने आई है, तेरा ही चालान किया जायगा।

स०—तो नालिश सच है या झूठ ?

ज०—सच है।

स०—यह दरख़ास्त देखो। इस पर अँगूठे की छाप तुम्हारी ही है ?

ज०—जी हाँ।

यह इज़हार हो जाने पर हाकिम ने दरख़ास्त पढ़कर मुक़दमा डिसमिस कर दिया। कहा, यह मुक़दमा फ़ौजदारी में चलने लायक़ नहीं है—चाहो तो दीवानी में जाओ।

मैंने मन में कहा, चलो आफ़त टल गई। किन्तु हरिदास बाहर आकर मुख़्तार के साथ झगड़ने लगा। बोला—काम की बात आपने एक भी नहीं पूछी। मुख़्तार ने कहा—'काम की कुल बातें दरख़ास्त में लिखी थीं।' उसकी बातचीत से हरिदास ने सन्देह में आकर दूसरा मुख़्तार करके अर्ज़ी की नक़ल ली। हरिदास नक़ल पढ़कर मुख़्तार की सब चालाकी समझ गया। दूसरे दिन उस मुख़्तार के ख़िलाफ़ ऐफिडेविट करके नया मुक़दमा दायर करने के लिए सब मुख़्तारों के पास गया था,

किन्तु सभी ने कहा—जानते नहीं हो, कौवे का मांस कौवा नहीं खाता। हम लोग किसी मुख़तार के ख़िलाफ़ दरख़ास्त नहीं दे सकेंगे। तब वह छोटे बड़े कितने ही वकीलों के पास गया किन्तु प्रत्येक वकील ने कहा—देखो लाला, मुख़तार के विरुद्ध दरख़ास्त देने से सब मुख़तार हमसे बिगड़ बैठेंगे, इससे हमारे व्यवसाय में बड़ा धक्का लगेगा। आख़िर एक वकील ने इस शर्त पर वकालतनामा लिया है कि दरख़ास्त में सिर्फ़ यही लिखा जायगा कि पहले दिन भूल से वैसी दरख़ास्त दी गई थी—सच्ची बात यह है। मुख़तार के विरुद्ध कोई बात कही या लिखी नहीं जायगी। दूसरे दिन यह दरख़ास्त देने से हाकिम ने सबूत माँगा है। गवाहों का इज़हार होने पर अगर हाकिम की नज़र में मुक़दमा सच जँचेगा तो मुद्दाअलेह के नाम सम्मन जारी होगा नहीं तो डिसमिस हो जायगा। अगहन बदी १३ मुक़दमे की तारीख़ मुक़र्रर हुई है। अब भी दस दिन बाक़ी हैं। मैंने सोच विचार कर स्थिर किया है कि इस विपत्ति से उद्धार पाने पर पहले हरिदास को अपने इलाक़े से भगाना बहुत ज़रूरी है। एक मात्र वही इस मुक़दमे का पैरोकार है। उसके न रहने से मुक़दमा चलानेवाला ही कोई न रहेगा। मालूम नहीं होता कि आपके भाई मोतीलाल बाबू मुक़दमे में किसी तरह की सहायता देंगे। जो उनका यह अभिप्राय होता तो वे स्वयं गवाही देते। हरिदास को भगाने का अब सहज उपाय यही है कि उसे किसी मुक़दमे में फँसा कर जेरबार कर दिया जाय।

दारोग़ा को रुपये देकर मैं सब प्रबन्ध कर सकता हूँ। इसके सिवा उस औरत को भी किसी तरह भगाना होगा। हुज़ूर ने मुझको एक हज़ार रुपये दिये थे जिसमें सात सौ पुलिस को देने पर तीन सौ रुपये बचे थे। तीन सौ वे और सरकारी ख़ज़ाने की जमा दो सौ, कुल पाँच सौ लेकर मैं आज़मगढ़ आया था। उसमें से ढाई सौ रुपये मुख़तार को दिये हैं। सौ का नोट इस चिट्ठी के साथ हुज़ूर के पास भेजता हूँ। मेरे राह-ख़र्च और मकान-किराया तथा डाक-महसूल आदि में दस रुपये साढ़े नौ आने ख़र्च हुआ है। मैं आज देवीपुर जा रहा हूँ। वहाँ जाकर दारोग़ा को कुछ पेशगी देकर हरिदास को फँसाने का प्रबन्ध करूँगा। परन्तु दारोग़ा जैसा लोभी है और हुज़ूर के ख़िलाफ़ मुक़दमा जैसा संगीन है, इससे तो यही जान पड़ता है कि वह पाँच सौ से कम पर हर्गिज़ राज़ी नहीं होगा। लीलावती को भगाने के लिए भी ख़र्च करना पड़ेगा। पेशी के दिन लीलावती या हरिदास अदालत में हाज़िर न हों तो मुक़दमा तुरन्त ख़ारिज हो जायगा। फिर किसी बात की आशङ्का नहीं रहेगी। हुज़ूर भी बेखटके घर लौट आवेंगे। इसलिए श्री चरणों में निवेदन है कि मुझे आठ सौ रुपया देने के लिए सदर दफ़्तर के ख़ज़ांची के नाम एक हुक्मनामा भेज दिया जाय। मैं एक एक पैसे का हिसाब लिखता जाता हूँ। हुज़ूर जब कुशल-पूर्वक घर लौट आवेंगे तब मैं जमा-ख़र्च का हिसाब पेश करूँगा। यथा-साध्य थोड़े ख़र्च में सब काम करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

श्रीमान् अपना कुशल समाचार लिखकर दास को अनुगृहीत करेंगे। इति·····३ अगहन।

आज़मगढ़ } आज्ञाकारी
रौनक़लाल

पत्र पढ़कर गोपीकान्त की चिन्ता बहुत कुछ घट गई। यद्यपि मुक़दमा अभी चल रहा है तथापि कुलदीपलाल मुख़्तार मेरे पक्ष का एक प्रधान गवाह है। पहले उस स्त्री ने मुख़्तार के पास बिलकुल और ही तरह का बयान किया था। बड़े यत्न से चिट्ठी को नये ख़रीदे हुए टीन के बक्स में रख दिया।

विश्वस्त नौकर की सूक्ष्म बुद्धि और कार्यदक्षता की मन में बहुत प्रशंसा करके गोपीकान्त ने उसे चिट्ठी का जवाब दिया। लिखा—"सदर ख़ज़ांची के नाम से हुक्मनामा भेज दिया है। वह तुमको हज़ार रुपया देगा। मुक़दमे की पैरवी के लिए तुम अपने पास आठ सौ रखकर बाक़ी दो सौ रुपये रजिस्टरी चिट्ठी-द्वारा मुझे भेज दो। कल मैं प्रयागराज जाऊँगा। वहाँ पहुँचकर तुम्हें अपना पता लिखूँगा। तुम रजिस्टरी कराकर उस पते पर दो सौ रुपये के नोट भेज देना और सब समाचार लिखना।"
—पत्र के नीचे अपने नये नाम का दस्तख़त कर दिया।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

पाँच बजे देवेन्द्र बाबू कचहरी से लौटे। देखा तो बाहर के बरामदे में एक ज़मींदार का नौकर बैठा है। उसने खड़े होकर देवेन्द्र बाबू को प्रणाम किया। देवेन्द्र बाबू ने पूछा—कहाँ से आये हो ?

"वीरपुर से।"

"वीरपुर से ! अच्छा, अच्छा। कब आये ?"

"अभी आया हूँ।"

"घर पर कुशल है ? बाबू अच्छे हैं ?"

"जी हाँ। सब लोग अच्छे हैं। केवल बिटिया बीमार है। इसलिए आब-हवा बदलाने को उन्हें कहीं ले जाना चाहते हैं। आज रात में वे यहाँ पहुँचेंगे। आप लोग जहाँ ले जाने की राय देंगे वहाँ ले जायँगे। कहते थे, आप लोगों से मिल कर वे कल की गाड़ी से रवाना हो जायँगे।"

"लड़की बीमार है ? उसे क्या होता है ?"

"ज्वर आता है, दस्त लगते हैं। बदन सूख कर आधा हो गया है।"

"अच्छा, बाबू यहाँ किस समय पहुँचेंगे ?"

परसों सात बजे तड़के वहाँ से चलने की बात थी। आज रात को नव दस बजे तक यहाँ आ जायँगे।

"साथ में कौन कौन आता है ?"

"बाबू साहब, बहूजी, बिटिया और छोटा बच्चा। नौकरनी, कहार और एक रसोइया भी आवेगा।"

"यह संवाद भीतर कहला भेजा है ?"

"जी नहीं।"

"अच्छा बैठो" कहकर देवेन्द्र बाबू अन्दर गये। कुछ देर में उनके पिता बाहर आये। उन्होंने भी सिपाही से अनेक प्रश्न करके पूछा—यहाँ से कहाँ जायँगे ?

सिपाही ने हाथ जोड़कर कहा—यह नहीं कह सकता। सुना था, कलकत्ते जाने की राय न होगी तो प्रयाग ले जायँगे।

माधव बाबू ने कमरे के भीतर जा गोपीकान्त को देखकर कहा—आज मेरा भानजा आ रहा है।

"कहाँ से आ रहे हैं ?"

"वीरपुर से। वह वहाँ का ज़मींदार है। उसकी लड़की बीमार है, इसी से उसको जल-वायु बदलाने के लिए कहीं ले जायगा। हम लोगों से भेट करके कल खा-पीकर दो बजे की गाड़ी से उसके रवाना होने की ख़बर है। परन्तु मैं उसे इतना जल्द नहीं जाने दूँगा।"

गोपीकान्त—कल मैं भी जाऊँगा। आज घर से रुपया आ गया।

"घर पर सब लोग अच्छे हैं?"

"जी हाँ, सब लोग अच्छे हैं।"

"कल हम लोगों को छोड़ कर आप चल देना चाहते हैं। दो दिन यहाँ और रहना होगा। ज़रा बाज़ार हो आऊँ। वहाँ से लड़के-बच्चे आते हैं, उन्हें अच्छी तरह खिलाना-पिलाना होगा"—कह कर वे एक नौकर को साथ ले बाज़ार गये। बाज़ार से कितने ही फल, तरकारी और मिठाइयाँ मोल ले आये। सन्ध्या के अनन्तर देवेन्द्र बाबू कमरे में आ बैठे। गोपीकान्त ने उनसे पूछा—जो आ रहे हैं वे शायद आपके फुफेरे भाई हैं?

"जी हाँ, मेरे फुफेरे भाई हैं। वीरपुर के ज़मींदार हैं।"

"नाम क्या है?"

"धर्मपालसिंह। ज़मींदार का लड़का होने पर भी पढ़ा-लिखा खूब है। बी० ए० पास है। वह सुयोग्य लेखक भी है। मासिक पत्रों में अच्छे अच्छे प्रबन्ध लिखता है। उस दिन 'सरस्वती' में उसका एक लेख देखा था—'प्राचीन भारत में बन्दूक़ थी या नहीं?' रामायण आदि ग्रन्थों से अनेक श्लोक प्रमाण में देकर सिद्ध कर दिया है—राजा दशरथ के समय में बन्दूकें और तोपें थीं।"

पूर्व भारत में बन्दूकें थीं या नहीं? इसकी चिन्ता से

गोपी बाबू के सिर में कुछ भी दर्द न हुआ, इससे उसने इस बात पर कान भी न दिया। कालेज के उच्च शिक्षित नवयुवकों से वह बहुत डरता था। उसने प्रयाग जाने का निश्चय किया है—अगर बाबू का भानजा भी वायु-परिवर्तन के लिए वहीं गया तो बड़ी गड़बड़ी होगी। घर के मुखिया माधव बाबू अभी गोपीकान्त को दो-एक दिन और रोक रखना चाहते हैं। यह न होगा, कल गोपीकान्त को यात्रा करनी ही पड़ेगी।

गोपीकान्त को चुप देख कर देवेन्द्र बाबू ने पूछा—महाराज दशरथ के पास तोपें-बन्दूकें थीं, इसे आप स्वीकार करते हैं?

गोपीकान्त—अयँ, क्या कहा?

इसी समय माधव बाबू ने अन्दर के द्वार में खड़े होकर देवेन्द्र बाबू को पुकारा—ज़रा भीतर तो आओ। धर्मपाल का बिछौना किस कमरे में होगा, इसका निश्चय कर लो।

"आता हूँ"—कहकर देवेन्द्र भीतर चले गये। इसलिए बन्दूक़ की बात आगे न बढ़ी।

रात के नव बजे धर्मपालसिंह परिवार-सहित आ पहुँचे। उस रात को गोपीकान्त के साथ उनकी साधारण बातचीत हुई। इससे वह समझ गया कि आगत व्यक्ति शिक्षित होने पर भी भयङ्कर नहीं है।

दूसरे दिन सबेरे सात बजे धर्मपालसिंह बाहर आये। उनके लिए चाय आई। उन्होंने गोपीकान्त से पूछा—आप चाय पीते हैं?

गोपीकान्त चाय का बड़ा ही प्रेमी था। घर पर वह नित्य सबेरे चाय पिया करता था। किन्तु यहाँ आकर सज्जनों और परमभक्तों में परिगणित होने के कारण सबेरे चाय पीने का सुयेाग नहीं मिलता था। आठ बजे वह वृद्ध के साथ गङ्गास्नान करने जाता था। स्नान करके, बूढ़े को दिखाने के लिए, घाट पर बैठकर भजन-पूजन का आडम्बर फैलाता था। घर लौटते लौटते दस बज जाते थे। तब तक चाय पीने का समय टल जाता था।

आज चाय के गरमागरम प्याले को देखकर उसे बड़ा ही लोभ हुआ। विशेषकर वृद्ध माधव बाबू भी वहाँ उपस्थित न थे। इसी से गोपीकान्त ने कहा—हाँ, कभी कभी पी लेता हूँ।

धर्मपाल बाबू ने प्याले को गोपीकान्त की ओर बढ़ाकर कहा—"यह आप लीजिए, मैं दूसरा मँगवाता हूँ।" अरे जा, भीतर से एक प्याला चाय और ले आ।

गोपीकान्त ने यों ही झूठी आपत्ति की, फिर यह भी सोचा कि वृद्ध के आने के पहले ही प्याला खाली कर डालना अच्छा है।

धर्मपाल ने कहा—आप पीते क्यों नहीं? एक प्याला और तो आ ही रहा है।

गोपीकान्त चाय पीता जाता था और शङ्कित नेत्रों से बीच बीच में अन्तःपुर के द्वार की ओर देखता जाता था।

नौकर चाय का दूसरा प्याला ले आया। चाय पीते पीते

धर्मपाल बाबू ने कहा—कल रात को आपका सब वृत्तान्त सुना। आप बड़े गुंडे के पाले पड़ गये थे। कितने लुच्चे बदमाश बैरागी का भेस बना कर घूमते हैं, इसका ठिकाना नहीं। कितने ही बदमाश जेल से भाग कर, कितने ही ख़ून या डकैती करके, पुलिस के डर से बैरागी बन कर घूमते फिरते हैं। किसी पर सहसा विश्वास नहीं करना चाहिए। आपको तो उसने बड़ी विपद् में डाल दिया था।

"गहरी विपत्ति में डाल दिया था। उत्तर को जा रहा था। रुपये के अभाव से यहीं एक सप्ताह बीत गया। कल घर से रुपया आ गया है। मैं आज ही यहाँ से रवाना हूँगा किन्तु माधव बाबू ज़िद करते हैं। कहते हैं, आज मुझे नहीं जाने देंगे और शायद आपको भी न जाने दें।"

धर्मपाल ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—बाबू गोपीलाल जी, यह ठीक हो जायगा। मैंने पञ्चाङ्ग देख लिया है। कल अश्लेषा है, परसों मघा, तरसों बृहस्पतिवार, उसके अगले दिन पूर्णिमा और उसके बाद प्रतिपदा है। जो आज न जायँ तो फिर पाँच दिन तक यात्रा नहीं बनेगी। यही कहकर मामा से आज्ञा लूँगा। आपकी भी छुट्टी मंज़ूर करा दूँगा। आप कहाँ जायँगे?

"मैं प्रयाग जाना चाहता हूँ।"

"प्रयाग। हम भी तो अब वहीं जायँगे। कलकत्ते जाने की राय नहीं हुई। जाड़ों के लिए वह स्थान बड़ा ही विलक्षण है।

मेरी लड़की बहुत बीमार है, इसी से उसको हवा बदलाने के लिए ले जा रहा हूँ। अच्छी बात है। हम लोग भी साथ ही साथ चलेंगे। किस ट्रेन से जाना होगा ?"

इसी समय माधव बाबू आ पहुँचे। वे अन्तिम वाक्य सुन कर बोले—अभी ट्रेन की खोज लेने की ऐसी क्या जल्दी है। दो दिन ठहरो, तब जाना। गोपीलाल को भी आज न जाने दूँगा।

धर्मपाल ने सिर झुकाकर गोपीकान्त की ओर टेढ़ी दृष्टि से देख मुस्कुरा कर कहा—यह तो अच्छा ही होता—किन्तु कल अश्लेषा है, परसों मघा, तरसों बृहस्पतिवार, उसके अगले दिन पूर्णिमा, पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा होगी। जो आज न जायँ तो पाँच छः दिन लग जायँगे। लड़की का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है। इतने दिन विलम्ब करना ठीक न होगा ?

"तुमने पञ्चाङ्ग देखा है ?"

"जी हाँ।"

यह सुनकर माधव बाबू चुप हो रहे। देवेन्द्र बाबू के आने पर उन्होंने कहा—बेटा देवेन्द्र, धर्मपाल तो आज ही जाना चाहता है। कहता है, आज न जाने से पाँच दिन तक मुहूर्त्त नहीं बनेगा।

देवेन्द्र—तब तो जाने देना ही ठीक है।

गोपीकान्त—इतने दिन और देरी करना तो मेरे लिए भी अच्छा न होगा। तीर्थ करके शीघ्र घर लौटना है।

माधव ने कहा—मैं अब कुछ न कहूँगा। क्यों धर्म, तुम किस ट्रेन से जाना चाहते हो ?

गोपीकान्त ने कहा—तीन बजे यहाँ से एक पैसिञ्जर गाड़ी जाती है। एक सबेरे भी जाती है। मैं तीन बजे की गाड़ी से ही गणेश जी का नाम लेकर निकल पड़ूँगा।

धर्मपाल ने कहा—मैं भी तीन बजे की ट्रेन से ही जाता किन्तु इस ट्रेन से जाने में रात को प्रयाग पहुँचूँगा। लड़की को ठण्ड लगेगी। वहाँ जाड़ा कुछ अधिक होता है। सबेरे की गाड़ी से जाने ही में मुझे आराम होगा। गोपी बाबू, आप भी उसी गाड़ी से क्यों नहीं चलते ?

"सबेरे की गाड़ी से ?"

देवेन्द्र बाबू ने कहा—यही अच्छा होगा।

माधव बाबू ने कहा—हाँ, यही अच्छा होगा। धर्म अकेला है, बाल-बच्चों को साथ लिये जा रहा है। सबेरे पहर आज-कल ट्रेन में अक्सर गड़बड़ी हुआ करती है। गोपीलाल बाबू, तुम धर्म के ही साथ जाओ। इससे मैं भी बहुत कुछ निश्चिन्त हो सकूँगा।

गोपीकान्त राज़ी होगया। तब धर्मपाल ने कहा—गोपीलाल बाबू, आप प्रयाग में कितने दिन रहेंगे ?

"अधिक से अधिक एक महीना।"

"ठहरने के लिए मकान का प्रबन्ध कर लिया है ?"

"जी नहीं, मकान का बन्दोबस्त नहीं किया है। अभी

पण्डे के ही मकान में उतरूंगा, फिर कोई मकान पसन्द करके भाड़े पर ले लूँगा।"

"मैंने एक मकान किराये पर ले लिया है। एक काम कीजिए न, पण्डे के घर में ठहर कर आप क्यों कष्ट सहेंगे। अभी चल कर मेरे ही मकान में विश्राम कीजिए। इसके बाद सुभीता देखकर कोई मकान आपके लिए ठीक कर दिया जायगा। आप तो वहाँ एक ही महीना रहेंगे। मैं आपसे अनुरोध करने का साहस नहीं कर सकता, नहीं तो एक महीने के लिए कोई मकान लेने की ज़रूरत ही क्या है? आप तो अकेले हैं। यदि एक महीना मेरे यहाँ रहेंगे तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा। क्यों मामा जी, मैं बेजा तो नहीं कहता?"

वृद्ध ने कहा—अगर ऐसा हो तो बहुत अच्छा है। गोपीलाल जी, यही करो। धर्म अभी लड़का है, बहू भी वैसी ही है। दो नये यात्री, दो बच्चों को लेकर, विदेश जाते हैं। बच्चों में भी एक बीमार है। वहाँ न कोई भाई-बन्धु है और न कोई अपना सम्बन्धी। ऐसी अवस्था में वहाँ जाने देने को तो मेरा जी ही नहीं चाहता था। आप इसके पास रहेंगे तो इसको आपसे बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

गोपीकान्त ने कुछ देर तक मन में सोचा। अब यह बात उसकी समझ में अच्छी तरह आगई कि धर्मपालसिंह आदमी अच्छा है, निष्कपट है और निरभिमानी है। उच्च शिक्षा पाने पर भी उच्छृङ्खल नहीं है। इसका साथ दुःखदायी नहीं

होगा। इसलिए बोला—अच्छा, मैं कल इन्हीं के मकान पर रहूँगा। ये अगर मुझे नज़दीक कोई घर खोज देंगे तो मैं बराबर इन लोगों की खोज-ख़बर लेता रहूँगा। धर्मपाल बाबू ने जो अपने यहाँ रहने के लिए मुझसे आग्रह किया है इससे इनकी बड़ी ही सज्जनता प्रकट होती है। इनकी शिष्टता से मैं अत्यन्त तृप्त हुआ हूँ। किन्तु एक महीने तक इनका गलग्रह होकर रहना मेरे लिए ठीक न होगा। एक साथ रहने से मैं ही इनके काम आ सकता हूँ यह नहीं, बल्कि इनके द्वारा भी मेरे अनेक उपकार हो सकते हैं।

सबके मन के मुताबिक़ सब काम ठीक हो गया। गोपीकान्त ने पूछा—धर्मपाल बाबू, प्रयाग में आपके उस मकान का पता क्या है। वह पता मुझे घर पर लिख भेजना है।

धर्मपाल ने कहा—उस मकान का नाम लाल कोठी है। 'लाल कोठी—प्रयाग' यह पता लिख देने ही से वहाँ चिट्ठी पहुँच जायगी।

गोपीकान्त ने रौनक़ को चिट्ठी लिख दी—"लाल कोठी, प्रयाग, इस ठिकाने से मुझे रुपया भेजो और चिट्ठी लिखो।" सन्ध्या-समय माधव बाबू के नौकर-चाकरों को इनाम देकर गोपीकान्त ने धर्मपाल बाबू के साथ प्रयाग की यात्रा की।

चालीसवाँ परिच्छेद

बलदेव बाबू के जन्मदिन के उपलक्ष्य में वन-भोजन करके सब लोग जब जलपथ से घर लौटे तब साँझ होने में विलम्ब न था। घर पहुँच कर उसी बैठक में चाय पीने के लिए सब इकट्ठे हुए। बलदेव बाबू आज कुछ गम्भीर भाव धारण किये बैठे हैं। दृष्टान्तार्णव की दृष्टान्त-तरङ्गें आज शान्त हैं। दिन भर के उत्सव-आमोद ने उन्हें कुछ श्रान्त कर दिया है। आज सन्ध्या-समय वे सोच रहे हैं, हमारे जीवन की भी सन्ध्या अब समीप है। आत्मीय जनों की एकान्तिक इच्छा रहने पर भी उनका जन्म-दिन अब अधिक बार नहीं लौट आवेगा।

कुछ देर बाद सुधा सबके लिए चाय ले आई। पहले पिता को देकर उसने मोती बाबू के आगे प्याला रक्खा। मोती बाबू ने कहा—मुझे क्षमा कीजिए।

सुधा बोली—क्यों, उस समय तो पी ली थी। कहा था, अच्छी लगती है।

"केवल बाबू जी के जन्म-दिन की ख़ुशी में एक प्याला पी लिया था।"

"मान लीजिए, बाबू जी का जन्म-दिन इस समय भी है।"

मोतीलाल ने हँसकर कहा—तुम्हारी भौजाई ने नहीं माना इसी से उस समय पीनी पड़ी।

सुधा ने मुँह फुलाकर कहा—आप भाभी के अनुरोध से पियेंगे, और मेरे अनुरोध से नहीं ?

बलदेव बाबू, उनकी स्त्री, नारायणप्रसाद और सुशीला, ये सब यह तमाशा देखकर मन ही मन आनन्द पा रहे थे। सुधा का मुँह देखकर मोती समझ गया कि चाय न पीने से बालिका के मन में बड़ा दुःख होगा, तब उसने मुस्कुराहट के साथ हाथ बढ़ाकर कहा—अच्छा लाओ।

चाय देकर सुधा ने अपना बायाँ हाथ सुशीला की ओर बढ़ा कर कहा—भाभी रुपया दो।

माँ ने पूछा—कैसा रुपया बेटी ?

सुधा ने कहा—बाज़ी का रुपया। भाभी ने कहा था, "मैंने मोती बाबू को उस वक़्त चाय पिलाई है इससे क्या तुम भी पिला सकोगी ? कभी नहीं पिला सकोगी।" और मैंने कहा, "मैं ज़रूर पिला सकूँगी।" चार रुपये की बाज़ी लगी थी। जो बाज़ी जीते वह बाज़ी के रुपये आतिशबाज़ी में उड़ावेगी। लाओ भाभी रुपया दो।

सुशीला ने हँसते हँसते आँचल के खूँट से चार रुपये खोलकर सुधा के हाथ में दे दिये।

सुधा ने वे रुपये नारायणप्रसाद के हाथ में देकर कहा—भैया, आतिशबाज़ी बाज़ार से मँगवा दो।

माँ ने कहा—अभी वे चीज़ें कहाँ मिलेंगी ? यह क्या काशी-कलकत्ता है ?

सुधा ने कहा—बाज़ार में मिलेंगी। दिवाली के समय दूकानों में जो आतिशबाज़ी बिकने आई थी उसमें से अब भी बहुत बच गई है। वीरेन्द्र ने मुझसे कहा है।

वीरेन्द्र ने इस बात का समर्थन करके कहा—हाँ माँ, अब भी दूकानों में कितनी ही आतिशबाज़ी पड़ी है। फुलझड़ी है, चरखी है, चक्र है, आसमान तारा है, महताब है।

बलदेव बाबू ने कहा—आतिशबाज़ी में रुपया फूँकना व्यर्थ है।

सुधा ने कहा—तब महारानी की जुबली के समय आतिशबाज़ी क्यों छूटी थी? आपके भी जन्म-दिन में हम आतिशबाज़ी का तमाशा देखेंगी।

बलदेव बाबू ने स्नेह से कहा—अच्छा, तो बाज़ी का रुपया आतिशबाज़ी में ही फुँके।

चाय-पानी के अनन्तर कुछ देर तक गपशप हुई। इतने में बाज़ार से कई क़िस्म की आतिशबाज़ी आ गई।

अन्तःपुर के पीछे एक तालाब है। उसी के घाट पर आतिशबाज़ी छोड़ी जायगी। सभी लोग मकान के पीछेवाले बरामदे में जा बैठे। ख़ुशी ख़ुशी आध घंटे तक आतिशबाज़ी का तमाशा हुआ।

रात को जब तक नींद न आई तब तक लेटे लेटे मोतीलाल न मालूम क्या क्या सोचता रहा। उसके विचारों के सिलसिले

के बीच बीच में एक सुन्दर सुकुमार मुखड़ा बार बार दर्शन देकर उसकी विचार-परम्परा को तोड़ने लगा। आख़िर वह प्रसन्न मुख और वे बड़ी बड़ी आँखें ही उसकी चिन्ता के विषय-रूप में परिणत हो गईं। सुधा ने आज दिन भर अपने परिजनों के साथ जो कौतुक किया है, जो मीठी मीठी बातें कही हैं, वह सभी भाव-पूर्ण दृश्य एक एक कर उसकी आँखों के सामने आने लगा। क्रम क्रम से नींद के आवेग ने जब उसे विह्वल कर डाला तब वह मन में यह कहकर सो गया—बालिका बड़ी अच्छी है। जिसके साथ इसका विवाह होगा, वह सुखी होगा।

मोतीलाल गाढ़ी निद्रा में निमग्न हुआ। आज दिन भर खुले मैदान में इधर-उधर घूमता रहा है, इससे उसे बड़े सुख की नींद आई। रात्रि के पिछले पहर उसने स्वप्न देखा, मानों वह दूल्हे के रूप में सुसज्जित होकर विवाह-मण्डप में आया है। चारों ओर लोगों की भीड़ लगी है। सुहागिनें मङ्गल गीत गा रही हैं। बाहर बाजे बज रहे हैं। रोशनी की अपूर्व शोभा चारों ओर छा रही है। स्त्रियों के द्वारा विवाहकालिक विधि आरम्भ हुई। वर और कन्या को एक लाल कपड़े से ढक कर मुखावलोकन कराया गया। मोतीलाल ने देखा तो कन्या और कोई नहीं—सुधा है।

चिड़ियों की चहचहाहट से नींद टूटने पर कुछ देर तक मोती को ऐसा मालूम होता रहा जैसे वह सुख-सरोवर में स्नान करके निकला हो। अँगड़ाई-जम्हाई लेने के बाद

मोतीलाल उस अँधेरे कमरे में बिछौने के ऊपर उठ बैठा। सोचा, यह क्या सपना देखा है? क्या मेरे संन्यास धारण का यही परिणाम है? क्या विवाह करके संसार-जाल में बद्ध होकर वासना पूरी करने और रुपया कमाने ही को जीवन का प्रधान उद्देश्य बनाना होगा? मन में सपने की बात की समालोचना करके उसे अपने ऊपर कुछ क्रोध भी हुआ। सपना देखना या न देखना अवश्य ही पूर्णतया किसी के इच्छाधीन नहीं है, किन्तु इस स्वप्न से उसके मन में हर्ष क्यों हुआ? यह तो हर्ष की बात नहीं, प्रत्युत विरक्त होने की—घृणा करने की—बात है। ज्ञानशक्ति सो रही थी। स्वामी की अनुपस्थिति में सेवक चित्त, संयम खोकर, बुरे मार्ग पर घूमने लगा। ऐसा नौकर तो अच्छा नहीं। जब तक मालिक की नजर के सामने रहा तब तक बड़ा ही शिष्ट और आज्ञाकारी रहा किन्तु आँख की ओट होते ही यथेच्छ विहरण करने लगा।—अपने चित्त पर आँखें लाल कर मोती ने भविष्य के लिए उसे सावधान कर दिया।

सबेरे उठकर मोतीलाल ने सुना कि सुधा को ज्वर आ गया है। कल वन-भोजन के उत्सव में जाकर उसने नदी में बड़ी देर तक स्नान किया था। यह उसी का प्रतिफल है। बुखार मामूली है, चिन्ता का कारण नहीं। स्नान-ध्यान करके जब मोतीलाल भीतर जलपान करने गया तब उसके नेत्र सुधा को इधर-उधर खोजने लगे। सोचा, ज्वर तो साधारण है—शायद वह भी चादर ओढ़े हुए दर्शन देगी। किन्तु वह कहीं भी देख

न पड़ी। उषःकाल में सावधान कर देने पर भी उसका मन सुधा को न देखने से उदास होगया।

मोतीलाल के मन में दिन भर यह आशा लगी रही कि शाम को चाय पीते समय सुधा अवश्य आवेगी, किन्तु वह आशा भी विफल हुई। सुशीला और नारायण बाबू के अनुरोध करने पर भी आज उसने चाय नहीं पी। आज की यह सायकालिक सभा उसे आनन्ददायक न हुई—एकदम निर्जीव-सी जान पड़ी। मानो पेड़ है, फूल नहीं; आकाश है, चाँदनी नहीं।

रात को बिछौने पर लेट कर मोतीलाल सोचने लगा कि रोग से आक्रान्त होने का पूर्वलक्षण स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है। क़िस्से-कहानियों में जैसा सुना जाता है बिलकुल वही हाल है। इसी तरह अज्ञानी एक एक पग करके आगे बढ़ता है—और अन्त में अगाध जल में गिरकर बह जाता है या कुघाट में जा लगता है। नहीं, ऐसा होने से काम नहीं चलेगा। मोती पहले नहीं जानता था कि मेरा हृदय इतना दुर्बल है। सुधा,-सुधा-सुधा—सारा दिन उसका मन क्यों सुधामय हो रहा है। उस बालिका में ऐसा क्या है जो चित्त को इस तरह खींच रहा है? वह क्या जानती है? न दर्शन जानती है न विज्ञान; शायद यह भी नहीं जानती कि शास्त्र किसे कहते हैं। गीता, उपनिषद् आदि वेदान्त का विषय भी उसका पढ़ा हुआ नहीं है। विचारशक्ति-विहीन, निरी भोली भाली तेरह वर्ष की बालिका है। उसका मुँह सुन्दर है, लावण्ययुक्त है, आँखें बड़ी बड़ी हैं, ओठों पर

कपट-भरी मीठी मुस्कुराहट नाचती रहती है—गले की आवाज़ सुरीली है—बस, यही तो उसकी सम्पत्ति है। क्या इसी पर मोती पागल होगा ? नहीं नहीं, मोती ! सावधान ! यह कल्पना से बाहर की बात है—बड़ी अश्रद्धेय बात है।

कुछ देर तक अपने हृदय की जाँच करने पर मोती समझा—तर्क करने से क्या होगा ? पागल होने में अब क्या बाक़ी है ? रात को मानों नींद ने बड़ा अपराध किया था। और, आज दिन भर के इस जागरण ने ? सुधा को एक बार देखने के लिए उसका मन क्या प्यासे व्यक्ति की भाँति छटपटा नहीं रहा है ? अपने को आप ही ठगने से तो कुछ हाथ नहीं आता। रोग होने का पूर्व-लक्षण क्या, यह तो रोग के ही सारे लक्षण हैं। रोग से भली भाँति आक्रान्त हो चुका हूँ। तो ? तो अब उपाय ? उपाय भागने के सिवा और क्या हो सकता है ? कल ही इन लोगों से विदा होकर घर चल दूँगा। समय रहते सावधान होना अच्छा है।

उस रात को मोती ने सुधा को स्वप्न में नहीं देखा। तड़के उठने पर उसके मन का भाव विजयी वीर के सदृश हो गया। सोचा, रोग के अंकुर ने ज़रा सिर उठाया था सही, किन्तु उसने उसे अपने पैर के तलुवे से अच्छी तरह कुचल कर पीस डाला। क्या वह कोई ऐसा वैसा है ? वह मोह-गज-केसरी साक्षात् मोतीलाल है। मोहिनी मूर्त्ति धारण करके संसार-सुख किसको ठगने आया था ? आदमी को नहीं पहचानता ? मोतीलाल के पास तेरी एक न चलेगी।

कमरे के बाहर आकर सुना कि रात्रि में सुधा का ज्वर बढ़ गया था। सारी रात बेचैनी थी। यह सुनते ही मोती के हृदय में वेदना का तार बजने लगा। नारायण से पूछा—कितनी डिगरी का बुखार है ?

"रात में १०५ तक पहुँच गया था। अभी १०४ डिगरी है।"

"कोई डाक्टर आया था ?"

"रात को ग्रामीण वैद्य आया था। उसको बुलाने के लिए फिर आदमी भेजा है। तीस घंटे से ऊपर हो गये, अभी तक ज्वर नहीं उतरा है। कुशल इतनी ही है कि और कोई उपद्रव नहीं।"

उस दिन प्रातःकाल की पूजा में मोतीलाल का जी नहीं लगा। वह मन मारकर बाहर के कमरे में अकेला बैठा रहा। नारायण और बलदेव बाबू भीतर थे। ख़बर न पाने से उसका जी और अकुला उठा। दो एक नौकरों से पूछा, पर वे अच्छी तरह कुछ नहीं कह सके। सिर्फ़ इतना ही कहा—बहुत बीमार है।

मोतीलाल ने किसी तरह ज्यों त्यों करके दिन का आधा भाग बिताया, इसके बाद वह अपनी वेदना को नहीं रोक सका। उसे हाथ पर हाथ रक्खे चुपचाप बैठ रहना असह्य मालूम होने लगा। उसने सोचा—जाता हूँ, भीतर जाकर देखता हूँ, सुधा कैसे है। घर की सभी स्त्रियाँ तो मेरे सामने निकलती हैं। तो फ़िर संकोच कैसा ?

यह सिद्धान्त करके मोतीलाल भीतर चला। मानों उसके हृदय के भीतर कोई बोल उठा—"वाह रे मोह-गज-केसरी ! बड़ी

आतुरता देख रहा हूँ। क्या किसी को ज्वर नहीं आता ?" मोतीलाल ने मन को उत्तर दिया—मेरे मित्र की बहन बीमार है—मैं चिन्तित क्यों न हूँगा ? यदि मेरी बहन होती—यदि उसको ऐसा बुखार होता तो ?

भीतर जाकर आँगन में सुशीला को देखकर पूछा—सुधा कैसे है ?

"घोर ज्वर है ! १०६ डिगरी है। सिर पर ओडिकलोन की पट्टी रक्खी गई है। आइए न,—देख लीजिए।" कहकर सुशीला मोती को ऊपर ले गई।

सुधा पलँग पर लेटी है। आँखें बन्द हैं। मोती के पैरों की आहट सुनकर एक बार आँख खोली परन्तु यह नहीं जान पड़ा कि उसने किसी को पहचाना हो। वह एकदम अचेत अवस्था में पड़ी थी। उसके माँ-बाप, भाई, सभी उद्विग्न मन से उसके पास बैठे थे।

सुधा का ज्वर से कुम्हलाया हुआ चेहरा देखकर मोती को मानों रुलाई आने लगी। बड़े कष्ट से अपने को सँभाल कर वह बाहर चला आया।

रात को मोतीलाल ब्यालू करने बैठा सही पर उससे कुछ खाया नहीं गया। दुश्चिन्ता में पड़कर वह रात भर करवट बदलता रहा।

दूसरे दिन सबेरे उठकर उसने भीतर जाकर देखा तो ठाकुरजी के कमरे के द्वार पर सुशीला खड़ी खड़ी रो रही है।

देखते ही मोती का मन चौंक उठा। उसने पूछा—क्या हालत है ?

सुशीला रोते रोते बोली—उसके बचने की आशा कम है।

मोती की आँखों से भी मोती टपकने लगे। किसी तरह रोके न रुके।

उसने कहा—अच्छा, एक डाक्टर आज़मगढ़ से क्यों न बुलवा लिया जाय ?

सुशीला बोली—रात के तीन बजे एक आदमी गाड़ी ले कर सिविलसर्जन को लाने गया है।

मोती सिर झुकाये हुए बाहर चला गया।

नौ बजे सिविलसर्जन आ पहुँचा। दिन भर इलाज होता रहा। सन्ध्या के अनन्तर ज्वर की तेज़ी घटने लगी।

मोतीलाल साँझ ही से सुधा के कमरे के बाहर बैठा था। दस बजने पर बलदेव बाबू ने कहा—बाबू, तुम क्यों कष्ट कर रहे हो ? रात बहुत हुई। जाओ, कुछ खा-पीकर सो रहो।

मोती—शुश्रूषा के लिए पारी बाँधकर रात को जागने का जो बन्दोबस्त हुआ है, उस पारी का पहला पहर मैं लेना चाहता हूँ।

बलदेव—अगर आज की यह रात कटती है तो कल से तुम्हें भी एक पहर बैठने की पारी दूँगा। आज अब ज़रूरत न होगी। तुम तकलीफ़ मत करो।

"डाक्टर साहब ने क्या कहा है ?"

"कहा है, आज रात भर में ज्वर उतर जायगा। किन्तु रोगिणी इतनी कमज़ोर है कि ज्वर उतरने के साथ तड़के कहीं नाड़ी न छूट जाय। रात के तीन बजे से लेकर सूर्योदय तक बड़ा सांघातिक समय है। वह कट जाय तो फिर कोई चिन्ता नहीं। नहीं तो—"

बलदेव बाबू के मुँह से फिर कोई शब्द नहीं निकला। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मोतीलाल व्याकुल हृदय से बाहर चला आया। सुशीला ने कुछ खाने के लिए अनुरोध किया था परन्तु मोती ने एकदम इनकार कर दिया।

——

इकतालीसवाँ परिच्छेद

मोतीलाल शयन-गृह में जाकर सोया नहीं, एक आराम-कुरसी पर बैठकर आकाश-पाताल की बातें सोचने लगा। अहा! ऐसा एक सुन्दर फूल क्या सदा के लिए इस संसार से लुप्त हो जायगा? वह मन ही मन कल्पना करने लगा, मानों भोर का समय है। भीतर कुहराम मचा हुआ है। सभी लोग चिल्ला चिल्ला कर रो रहे हैं। यह सुनकर वह भी दौड़कर भीतर गया। देखा तो सुधा को लोग घर से उठाकर बाहर बरामदे में ले आये हैं। आत्मीय परिजन उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं। वह इस संसार से अन्तिम बिदा ले रही है। सब उसके बदन से लिपटे हुए रो रहे हैं। मन में इस कल्पना का आविर्भाव होते ही मोती की आँखों में आँसू उमड़ आये।

कुछ देर तक आँसुओं का प्रवाह जारी रहा। मोतीलाल ने कुरसी से उठकर घड़ी में देखा तो बारह बजने में विलम्ब न था। द्वार खोल बरामदे में खड़ा होकर वह दो मंज़िले-कोठे की खिड़की की ओर देखने लगा। दोनों कमरों में रोशनी हो रही है। एक में सुधा है, और दूसरे कमरे में डाक्टर सोया है। मोतीलाल बरामदे में टहलने लगा। बीच बीच में अन्तःपुर के उन दोनों प्रकाशित कमरों को देख कर वह दीर्घ निःश्वास लेता जाता था। टहलते टहलते मन में सोचा कि यदि मैं केवल

मित्र न होता, कोई आत्मीय होता तो बलदेव बाबू मेरे साथ ऐसे कठोर निर्वासन की व्यवस्था न करते। वह बड़ी देर तक चिन्तित चित्त से टहलता रहा। जब एक बज गया तब वह अपने कमरे के भीतर जा, द्वार बन्द कर, बत्ती कम करके, बिछौने पर लेट रहा।

किन्तु जिसका मन ऐसी घोर दुश्चिन्ता से दुखी होगा उसकी आँखों में नींद सहज ही क्यों आवेगी? बड़ी देर तक करवट बदलते बदलते ज़रा आँख लग गई।

अर्धनिद्रित अवस्था में सुन पड़ा, जैसे भीतर से रोने की आवाज़ आ रही हो। मोतीलाल घबड़ाकर उठ बैठा। कान दे कर सुना तो कुछ सुनाई न दिया। तब उसने जाना, और कुछ नहीं, सपने में सुना था।

बत्ती तेज़ करके देखा, दो बज कर कई मिनट हुए थे। किवाड़ खोलकर वह फिर बरामदे में गया। उन दोनों कमरों में अब भी चिराग़ जल रहे हैं। भीतर सन्नाटा छाया है। कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं देता। यह देखकर मोतीलाल के मन से अमङ्गल की आशङ्का दूर हुई। अभी तक कुशल है, यह सोच कर उसे कुछ ढाढ़स हुआ।

बरामदे में कुछ देर तक टहलते टहलते उसके मन में बड़ी उत्कण्ठा हुई कि एक बार भीतर जाकर सुधा को देख आऊँ। कौन जाने फिर देखने का अवसर मिले या न मिले। एक बार उससे आख़िरी भेंट कर लेना ही ठीक है। अब तीन बजने में

विलम्ब भी नहीं है। फिर उसने सोचा—मैं उसकी चारपाई के पास खड़ा होकर क्या करूँगा? बलदेव बाबू, नारायणप्रसाद आदि कितने ही लोग वहाँ मौजूद हैं। फिर मन में कहा—वही लोग रह कर क्या कर लेंगे? अगर वह जाने पर होगी तो उसे कौन रोक सकेगा?

तब सोचा,—डाक्टर साहब तो हैं। हैं तो क्या? वे ही क्या करेंगे? हाँ, एक महापुरुष हैं जो कुछ कर सकते हैं। जिनके हाथ में सारे संसार की बागडोर है और जिन्होंने अपने हाथ से इस अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना की है, वे ही उसे लौटा सकते हैं। मैं अब उन्हीं को पुकारूँगा—हृदय से उन्हीं की प्रार्थना करूँगा। सुधा का जीवन उनसे भीख में माँग लूँगा।

कर्तव्य स्थिर करने में उसे कुछ विलम्ब नहीं हुआ। इस बात का इतनी देर तक स्मरण क्यों नहीं हुआ—यही उसे आश्चर्य जान पड़ा। सारी रात उसने जागकर बिताई है। यह सारा समय वृथा ही गया। अब वह भगवान के चरणों में मन लगाकर अपनी आर्त-पुकार उन्हें सुनावेगा।

मोतीलाल ने झटपट हाथ मुँह धोकर कपड़ा बदल डाला। सोने के कमरे के एक कोने में उसका पूजा करने का कुशासन, गङ्गाजली आदि सामान रक्खा था। उसने सिर्फ़ कुशासन ले लिया, गङ्गाजल आदि कुछ न लिया। उसकी आँखों से आज जो पवित्र धारा बह रही है वह भगवान् को गङ्गाजल से भी पवित्र जान पड़ेगी। आसन लेकर वह पीछे के बरामदे

में जा बैठा। उस बरामदे के नीचे कुछ ही अन्तर पर नदी बह रही थी। धक से उसे याद आगई कि कुछ दिन पूर्व इसी बरामदे में बैठकर वह उपनिषद् पढ़ रहा था। उस समय हाथ में लाल कपड़ा लिये सुधा उसी के पास अक्षर लिखवाने आई थी।

आसन पर बैठ, पूरब मुँह हो, हाथ जोड़े, आँखें मूँदकर मोतीलाल एकाग्र मन से ईश्वर की प्रार्थना करने लगा। घड़ी में तीन बज चुके थे। बाहर घोर अन्धकार था। नदी देख न पड़ती थी। किनारे से उसकी तरङ्ग के टकराने का मन्द मन्द शब्द-मात्र सुन पड़ता था। और कहीं कोई शब्द न था। मोतीलाल करुणा-भरे स्वर से एक बार अस्पष्ट शब्दों में प्रार्थना का वाक्य उच्चारण करता है—फिर बड़ी देर तक चुप हो रहता है।

चार बज गये। धीरे धीरे अँधेरा कम होता आता है। आकाश के तारों की ज्योति मन्द हो चली। मोतीलाल बीच बीच में आँख खोल कर देख लेता है कि रात कितनी है, फिर आँख मूँदकर ईश्वर की गहरी प्रार्थना में मग्न हो जाता है।

अब रात नहीं है। पूरब ओर आसमान में सफ़ेदी छा गई है। दो एक चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी है। नदी की ओर से प्रातःकाल की ठंडी ठंडी कोमल बयार आना आरम्भ हुआ है। मोती ने क्षण-मात्र पूर्व आकाश की ओर देखकर फिर आँख मूँद ली।

पूरब ओर आकाश में लाली छा गई है। भाँति भाँति के

पक्षियों के कलरव से नदी का किनारा शब्दायमान हो रहा है। क्रम क्रम से पूर्व दिशा की रक्तिमा गाढ़ी होने लगी। देखते ही देखते नये उदित सूर्य की एक सुनहरी किरण भगवान् का आशीर्वाद लेकर ध्यान-मग्न मोतीलाल के मस्तक पर आ पड़ी। तब उसने आँख खोलकर ईश्वर को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

कुशासन को सोने के कमरे में रखकर मोतीलाल लम्बी डग से भीतर गया। वहाँ रोने का शब्द सुनाई नहीं देता, सर्वत्र सन्नाटा छाया है।

आँगन में जाकर देखा कि नारायण की माँ खड़ी है। वह मोती को देखकर बोली—सुधा अच्छी है। ज्वर उतर गया। होश के साथ बात-चीत की है। अभी सो गई है। यह कहकर नारायण की माँ ने आँख गड़ा कर मोती के मुँह की ओर देखा। तब मोती को धक से याद आ गई कि दोनों गालों पर से जो आँसुओं की धार बह चली थी उसके चिह्न को मैं पोंछ कर नहीं आया हूँ। संकोच से नीचा सिर करके वह बाहर चला आया और हाथ-मुँह धो, स्नान करके, फिर पूजा पर बैठ गया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सुधा अच्छी हो गई है, पर अब भी वह दुर्बल है। ऊपर ही रहती है। शरीर में इतनी ताक़त नहीं कि नीचे उतर सके। मोती ने इधर तीन दिन से उसे नहीं देखा।

सुधा के प्रति उसके मन का भाव कैसा है, यह अब उसे अच्छी तरह मालूम हो गया है। इन कई दिनों से उसने लक्ष्य

किया है कि प्रसङ्गवश बातचीत में उसके सामने सुधा का नाम निकल आने से उसे मालूम होता है, जैसे कानों में वीणा का तार बज उठा हो। इसके लिए वह मन ही मन लज्जित होता है परन्तु किसी तरह अपने को सँभाल नहीं सकता। वह अपने हृदय की दुर्बलता का परिचय भली भाँति पा गया है, इसलिए उसने मन में निश्चय किया है कि घर में रहना उसके लिए निरापद नहीं है। भाई की कही हुई बात अब उसे पल भर भी नहीं भूलती—"अगर तुम घर छोड़कर संन्यासी हो जाते तो दूसरी बात थी। गृहस्थाश्रम में रहकर जो उसके नियम को न मानोगे तो इसका बुरा फल अवश्य होगा।" भाई ने अवश्य अन्य भाव से यह बात कही थी किन्तु उस समय यह बात मन में खूब नहीं जँची थी। अब उसके मन की वर्तमान अवस्था ही इसका विशेष प्रमाण है।

इस प्रकार आगे पीछे की बातों को अच्छी तरह सोच विचार कर मोतीलाल ने स्थिर किया कि घर में न रहूँगा। अब पक्के तौर से संन्यासी हो जाऊँगा। घर में रहने से अपने साधन-भजन में पग पग पर विघ्न-बाधायें उपस्थित होती हैं। अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अच्छे गुरु की भी आवश्यकता है। सो बाहर न निकलें तो वह गुरु महाशय ही कहाँ मिलेंगे? अब यहाँ से शीघ्र विदा हो, घर जाकर, गेरुए कपड़े धारण करूँगा और लोटा-कम्बल ले बाहर निकल पड़ूँगा। अहा! वह क्या ही उत्तम आत्मग्लानि-रहित स्वाधीनता का जीवन होगा! दिन भर

लोगों की नज़र से बचकर एकान्त में बैठ, एकाग्र चित्त से, ईश्वर की उपासना में प्रवृत्त रहूँगा। यहाँ मित्र के आतिथ्य-सत्कार में एक सप्ताह से अधिक हो गया। अब बिदा माँगने में विलम्ब ही क्या है? कुछ विलम्ब है तो यही कि सुधा ऊपर से उतरे तो उसे एक बार देखकर सदा के लिए यहाँ से प्रस्थान करूँ। अब मन में आत्मवञ्चना का भाव नहीं है। हृदय की चञ्चलता को अब वह क्षमा की दृष्टि से देख रहा है। इधर कई दिनों से उसने हृदय को अवकाश दे रक्खा है और इसी से वह दिन रात किसी प्रियचिन्ता में डूबा रहता है। रहने दो—और दो दिन की बात है।

दो दिन बाद शाम को सुधा नीचे आई। जलपान करने के लिए भीतर जाकर मोती ने उसे देखा। उसका पीलापन लिये हुए सूखा-सा चेहरा देखकर मोती का हृदय व्याकुल हो उठा। फ़िरोज़ी रङ्ग का रैपर ओढ़े सुधा बरामदे में धीरे धीरे टहल रही थी। मोती ने उसके पास जाकर पूछा—सुधा अब कैसी हो?

"अच्छी हूँ। अच्छा कहिए मोती बाबू, मैं इतना जल्द क्यों कर चंगी हो गई?"

"मैं नहीं जानता। तो क्यों कर अच्छी हुई?"

"एक बड़ा तमाशा हुआ। बाबू जी ने आपको नहीं बतलाया?"

"नहीं।"

"मैं बीमारी के समय, बेहोश हो जाने के कारण, अनाप शनाप बकने लग गई थी—यह आपने नहीं सुना ?"

"सुना है।"

"मैंने उस बेहोशी में कहा था—मैं तो नहीं जानती, सभी कहते हैं,—मैं बार बार यही बोल उठती थी, 'माँ, मेरा ग्रामोफ़ोन कहाँ है, मेरा ग्रामोफ़ोन क्या हुआ ?' इसी से जब मैं होश में आई तब भैया ने मुझसे कहा—'तुम जल्द अच्छी हो जाओ तो तुम्हारे लिए ग्रामोफ़ोन मँगवा दिया जाय।' उसी ग्रामोफ़ोन के लोभ से मैं इतना जल्द अच्छी होगई हूँ।"

इसी समय सुशीला वहाँ आकर बोली—सुधा दिन भर ग्रामोफ़ोन ग्रामोफ़ोन जपती रहती है। जब तक इसका ग्रामोफ़ोन न आवेगा तब तक यह भर नींद सोवेगी भी नहीं।

जलपान करके बाहर आकर मोती ने बलदेव बाबू से अपने जाने की प्रार्थना की। उन्होंने उसे और भी दो-चार दिन ठहरने के लिए सस्नेह अनुरोध किया। किन्तु मोती ने विनय करके उनके अनुरोध को अस्वीकृत किया।

कुछ रात बीतने पर जब सब लोग चाय पीने के लिए इकट्ठे हुए तब सुधा ने कहा—मोती बाबू, तो कल आप चले जाइएगा ?

"हाँ।"

"नहीं, कल मत जाइए। पहले मेरा ग्रामोफ़ोन आने दीजिए, तब गाना सुनकर जाइएगा।"

मोती ने सिर हिलाकर सूचित किया—नहीं, इतना विलम्ब करने से काम नहीं चलेगा। कल जाना ही है।

तब सुधा ने पिता से कहा—बाबू जी, मोती बाबू को ठहरने के लिए कहिए। तीन ही चार दिन में तो मेरा ग्रामोफ़ोन आ जायगा।

बलदेव बाबू ने कहा—मैंने तो मोतीलाल से रहने के लिए बहुत कहा है परन्तु अब वे नहीं रहना चाहते।

मोतीलाल ने कहा—अच्छा, ग्रामोफ़ोन आने दो। दूसरी बार जब आऊँगा तब सुन लूँगा।

इस वाक्य से सुधा एकदम निराश हो गई। बलदेव बाबू ने कहा—जाओ बेटी, देखो चाय तैयार हुई।

"जाती हूँ" कह कर सुधा ने मोती की ओर टेढ़ी गर्दन करके देखा और कहा—आपके लिए भी एक प्याला लाऊँ?

कुछ देर चुप रहकर मोती ने कहा—अच्छा, लाओ।

ग्रामोफ़ोन आने तक रहना अस्वीकार करके मोती ने सुधा के मन में दुःख दिया है। अब चाय पीना अस्वीकार करके उसके मन में और दुःख देने का उसे साहस नहीं हुआ। उसने यह भी सोचा—आज ही तो अन्तिम दिन है। एकदम निष्ठुर व्यवहार करना ठीक नहीं।

दूसरे दिन भोजन आदि करके मोतीलाल नारायणप्रसाद की माँ के पास बिदा होने गया। तब वे अकेली थीं। मोती के बैठने पर दो चार स्नेहभरी बातें कहकर बोलीं—बबुआ,

मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ, किन्तु कहने में कुछ संकोच होता है।

मोती ने कहा—माँ कौन बात? नारायण जैसा आपका लड़का है वैसा ही मुझे भी आप समझिए। जो कहना चाहती हैं, कहें। उसमें संकोच क्या?

इससे पहले मोती ने किसी की माँ को माँ नहीं कहा था।

मोती के मुँह से "माँ" सम्बोधन सुनकर नारायणप्रसाद की माँ बहुत प्रसन्न हुई। वे बोलीं—जैसा नारायण मेरा लड़का है वैसे ही तुम भी वास्तविक रूप से मेरे सन्तान-स्थानीय हो जाओ, यही मेरी लालसा है। मैं चाहती हूँ कि सुधा के साथ तुम्हें ब्याह दूँ। तुम्हारे माँ नहीं है। मैं ही तुम्हारी माँ हो जाऊँ। यही मेरे मन की साध है।

मोती कुछ देर तक चुप रहकर बोला—माँ, यह होने की सम्भावना नहीं। मैंने अपने जीवन की गति को दूसरे मार्ग पर ले जाने का सङ्कल्प कर लिया है। गृहस्थाश्रम मेरे लिए नहीं है। मैं संन्यास धारण करूँगा।

"बेटा, यह क्या कहते हो? क्या यह संन्यासी होने की तुम्हारी अवस्था है? ऐसी बात मत बोलो। मेरी सुधा से तुम ब्याह नहीं करते तो न करो—किन्तु संन्यासी होने की बात मुँह में मत लाओ। अगर और ही कहीं अच्छी लड़की देख भाल कर विवाह करके संसारी सुख भोगोगे तो भी मैं सुख पाऊँगी।"

मोती ने कहा—माँ, यदि मैं ब्याह करता तो आपके आज्ञा-पालन के सौभाग्य से कदापि अपने को वञ्चित नहीं करता।

"यह अविचार की बात है। ऐसा न करो। मैं नारायण के पिता से कहती हूँ। वे तुम्हारे भाई को चिट्ठी लिख देंगे। इसी माघ में अच्छा मुहूर्त्त है। शुभ कार्य सम्पन्न हो जाय।"

मोती के नेत्रों में आँसू भर आये। वह खड़ा होकर बोला—"माँ, मुझे मायाजाल में फँसाने की चेष्टा न करो।" उन्हें प्रणाम कर और उनके पैरों की रज माथे में लगाकर वह चला आया।

घर पहुँच कर मोती वहाँ दो दिन रहा। तीसरे दिन पिछली रात को उसने गेरुए कपड़े पहने और लोटा-कम्बल लेकर वह खाली हाथ घर से निकल पड़ा।

———

बयालीसवाँ परिच्छेद

रौनकलाल ने सबेरे उठ हाथ-मुँह धोकर रेशमी धोती पहिन ली। फिर खड़ाऊँ पर चढ़ फूलों की टोकरी हाथ में ले फूल तोड़ने के लिए फुलवाड़ी में गया।

अगहन का महीना है। जाड़ा पड़ने लगा है। रौनक ने आधी धोती खोलकर ओढ़ ली। पेड़ के पत्तों से ओस की बूँदें टपक रही हैं। फूलों की पत्ती ओस से भरी है। हर एक पेड़ की डाल पकड़ कर, उसे अच्छी तरह हिला फूलों से ओस झाड़ कर, रौनक फूल तोड़ने लगा। सफ़ेद और लाल कनेर, अपराजिता, नगर और गुड़हल के फूलों से रौनक की टोकरी भर गई। फूल तोड़ते समय रौनक बीच बीच में, सतृष्ण दृष्टि से, रास्ते की ओर देखता जाता था। पेड़-पौधों से गाँव की सड़क घिरी थी। बहुत दूर तक दृष्टि नहीं पहुँचती थी। फिर भी रौनक सड़क की ओर देखने लगा। कुछ समय इसी तरह बीतने पर रौनक को उन पेड़-पौधों की आड़ से किसी के रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुन पड़ी। रौनक ने कान खड़े किये। शब्द समीप आने पर मालूम हुआ, जैसे कोई कह रहा है—"अरे मेरा सब ले गया रे। मेरा सब लूट ले गया।" यह सुन कर रौनक का मुँह प्रसन्न होगया।

शब्द क्रम क्रम से और भी निकटस्थ होने लगा।

रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर आस-पास के लोग हाल जानने के लिए बड़ी उत्सुकता के साथ बाहर आ खड़े हुए। कुछ देर बाद बाँस के पेड़ की ओट से धनीराम बाहर निकला। वह छाती पीटता है और चिल्ला चिल्ला कर कहता है—"सब ले गया रे दादा!—सब ले गया।" उसके साथ लड़कों का झुंड था और दो चार जवान आदमी भी थे।

रौनक़लाल को देखते ही धनीराम चिल्ला कर कहने लगा—ज़िलेदार साहब, ज़िलेदार साहब, मेरा सर्वनाश हो गया।

फूलों की टोकरी हाथ में लिये रौनक़ ने, फुलवाड़ी के फाटक की ओर अग्रसर होकर, पूछा—क्या है धनीराम, सवेरे सवेरे इतना हल्ला क्यों मचा रहे हो?

"सर्वनाश होगया। मेरा सब कुछ ले गया—कुछ नहीं बचा।"

"कौन ले गया?"

"चोर चुरा ले गये।"

"चोरी हुई है?"

"जी हाँ।"

"कैसे चोरी हुई?"

"मेरे मकान के पीछे अख़शी जी का बाग़ीचा है। उसी आम के बाग़ीचे में बैठकर चोरों ने सेंध लगाई है! मेरे दक्खिन तरफ़वाले घर में सेंध लगाई है।"

तमाशबीन लोगों में से कितने ही बोल उठे—अयँ! सेंध लगाई है?

धनीराम—कहने से कोई विश्वास नहीं करेगा। इतनी बड़ी सेंध, जिसमें आदमी चाहे तो सीधे इस पार से उस पार तक चला जाय।

रौनक़—तुम लोग किस कमरे में थे ?

"मैं और मेरी स्त्री दोनों उसी कमरे में सोये थे। मेरे दोनों लड़के अपनी चाची के साथ दूसरे कमरे में थे।"

रौनक़ थोड़ी देर ठहर कर बोला—घर में सेंध लगी, चोरी हुई और नींद न टूटी !

"क्या कहूँ सरकार, कुछ भी मालूम न हुआ। सबेरे नींद टूटने पर देखा तो सेंध की राह से घर में उजेला आ रहा है। देखते ही मैं चौंक उठा। हिला कर स्त्री से कहा—'अरी उठ उठ, देख तो दीवार में यह क्या हुआ है ?' वह घबड़ा कर उठी, सेंध देखकर छाती पीटने लगी। इसके बाद किवाड़ खोलकर देखा तो घर में थाली, लोटा, बर्तन-बासन कुछ नहीं: जो कुछ था सब ले गया। बेत की पिटारी में बारह आने पैसे थे, छोटी बहू के हाथों का एक जोड़ा कँगना था, बच्चे की करधनी थी, सब ले गया रे दादा ! मुझे फ़क़ीर कर गया—हूहूहू" करके धनीराम रोने लगा।

वहाँ जितने लोग जमा हुए थे सभी धनीराम के दुःख से द्रवित होकर उसे समझाने लगे। रौनक़ ने कहा—जाओ, अभी थाने में जाकर रपट लिखा आओ।

धनीराम—रपट लिखाने से क्या मेरा चोरी का माल मिल जायगा ?

"भो मैं कैसे कहूँ। पुलिस अगर चोर को गिरफ़्तार कर सके, पता लगाकर माल बरामद कर सके तो ज़रूर तुम्हें मिल जायगा। जिस कमरे मे चोरी हुई है, वहाँ जो चीज़ जैसी पड़ी हो उसे वैसी ही रहने देकर थाने में जाओ। देखो, कोई चीज़ इधर-उधर न होने पावे। दारोगा आकर सब देखेगा। चलो, मैं इसी समय मौक़े पर चलकर देख सकता हूँ। क्या मालूम अगर गवाही मुझे भी देनी पड़े। चलो जी, तुम लोग भी चलो।"

यह सुनकर उपस्थित लोग शङ्कित भाव से परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। सोचा, देखने जायँगे तो शायद हम लोग भी गवाही के बखेड़े में फाँसे जायँ। फ़ौजदारी का मुक़दमा है, क्या जानें क्या से क्या हो जाय। इसी से किसी ने कहा—आप यहाँ के ज़िलेदार हैं—अफ़सर हैं। आप आगे चलें—मैं हाथ-मुँह धोकर आता हूँ। किसी ने कहा—मेरे लड़के को बड़े ज़ोर से बुख़ार चढ़ा है, वैद्य को बुलाने जाता हूँ। कोई बोला—मेरी गाय अभी तक दुही नहीं गई है, गाय दुहाकर आता हूँ।—इस तरह बहाने करके सभी लोग खिसक गये।

अकेला रौनक़लाल, गम्भीर भाव धारण कर, धीरे धीरे धनीराम के साथ उसके घर गया। आँगन में प्रवेश करके ख़ूब ज़ोर से हँसकर रौनक़लाल ने धनीराम की पीठ ठोकते हुए कहा—शाबाश धनीराम, शाबश। आज तुमने जो नक़ल की

है वह थिएटर के ऐक्टर से भी बढ़कर है। दिल्ली के किसी थियेटर में जाकर अगर तू नौकरी करना चाहे तो अभी तुझे तीस चालीस रुपया महीना मिलेगा।

धनीराम ने मुस्कुरा कर कहा—क्या कहा, थिएचर! थिएचर क्या?

"थिएटर नहीं जानते? रामलीला तो देखी है। दिल्ली में आज-कल उसी तरह थिएटर होता है। विलायती लीला और क्या? वहाँ जितने ऐक्टर हैं—उनमें जो जितना चिल्ला सके उसकी उतनी ही क़दर होती है।"

अब दोनों दाक्खिनवाले कमरे के उसारे में जा खड़े हुए। रौनक़ को देखकर लीलावती घूँघट बढ़ाकर गोशाला में चली गई। बड़ी बहू भी मुँह ढँक कर कुछ दूर हट कर खड़ी हुई।

रौनक़ घर के भीतर जा करके सेंध को देख बोल उठा—यही तुम्हारी बुद्धि है! मैं साथ चला आया यह अच्छा हुआ, नहीं तो तुम्हारा मुक़दमा अभी हवा हो जाता।

धनीराम ने डर कर कहा—क्यों ज़िलेदार साहब?

"क्यों ज़िलेदार साहब! अरे गधे, चोर ने बाहर बैठकर सेंध लगाई तो मिट्टी तेरे घर के भीतर कैसे जमा हो गई? जो देखेगा वही कहेगा कि घर के भीतर बैठकर सेंध लगाई गई है। हटा, अभी मिट्टी को यहाँ से हटा दे। पैर से टाल टाल कर सेंध की राह से कुल मिट्टी को बाहर फेंक।"

धनीराम वही करने लगा। फिर रौनक़ ने कहा—मैं घर जाता हूँ, तुम जल्दी कुछ खा-पीकर वहीं आओ। किसी आदमी के साथ तुम्हें थाने में भेज दूंगा।

धनीराम ने ज़मींदारी दफ़्तर में हाज़िरी देकर थाने में जा रपट लिखा दी। शायद धनीराम घबड़ाकर सब बातों का बयान ठीक ठीक न कर सके; बर्तन मरम्मत कराने का चिह्न दिखाना और मरम्मत करनेवाले कसेरे का नाम बतलाना भूल जाय: इसी से रपट का मसविदा रौनक़ ने स्वयं लिखकर धनीराम के हाथ भेज दिया था।

रपट लिखकर दारोग़ा ने तीन चार दिन तक अपने इलाक़े के दाग़ी चोरों के घर की तलाशी ली। किन्तु कहीं कुछ न मिला।

चौथे दिन रौनक़लाल हुक्मनामा दिखाकर सदर दफ़्तर से एक हज़ार रुपये ले आया। थाने में जाकर दारोग़ा को दो सौ रुपये देकर कहा—हुज़ूर को पान खाने के लिए यह लाया हूँ। बाबू साहब ने इस मुक़दमे के लिये चार सौ रुपया देना मंज़ूर किया है। सौ रुपया उस दिन दाख़िल किया था, दो सौ ये हैं, कुल तीन सौ हुए। बाबू ने कहा है, असामी को जिस दिन जेल का हुक्म होगा उस दिन बाक़ी सौ रुपये दे दूँगा।

दारोग़ा ने रुपया लेकर कहा—बस, चार सौ! तुम्हारे बाबू साहब बड़े कंजूस हैं। पाँच सौ भी पूरा पूरा नहीं दे सके।

"कोशिश तो मैंने ख़ूब की थी। बाबू साहब ने कहा—दारोग़ा साहब को मेरा सलाम कह कर कहना—एक दिन का तो कारोबार है नहीं, उनके साथ जब दोस्ती हुई है तब फिर उनके हाथ से कई काम लेने हैं। पहला काम वे किस सफ़ाई से कर दिखलाते हैं, यह देखना है।"

दारोग़ा ने कमीशन का ३०) रौनक़ को देकर कहा—अच्छा, बाबू साहब देख लें मेरे हाथ की सफ़ाई। किन्तु उन्हें ख़ुश करने पर मैं सिर्फ़ वही सौ नहीं लूँगा, बाबू से यह कह देना।

"कहूँगा, ज़रूर कहूँगा। मैं कहने में क्या कुछ कसर रखता हूँ। जितना ही हुज़ूर को मिलेगा उतना ही मुझे भी तो लाभ है। उन बर्तनों को किस उपाय से—"

दारोग़ा ने बात काट करके कहा—दारोग़ा को उपाय की कमी नहीं रहती। आज ही रात को कुल बर्तन हरिदास के घर पहुँच जायँगे। जानते हो, मेरे क़ाबू में कितने चोर बदमाश हैं? उनमें से दो आदमियों को ठीक कर रक्खा है। वे दोनों हरिदास का घर देख भी आये हैं। उस ग्वाले का एक घर पीछे से कुछ टूटा हुआ है, उसी राह से घर में घुसकर पयाल की ढेरी में उन बर्तनों को छिपा आवेंगे। कल आठ बजे मैं जाकर खाना-तलाशी करके उन बर्तनों को निकालूँगा। इसके बाद उस मूजी को मुश्कें बाँधकर डंडे से पीटते पीटते थाने में

ले आऊँगा और ४११ दफ़ा के अनुसार चालान कर दूँगा। एक वर्ष की सजा तो ज़रूर ही होगी।

हरिदास की बन्धन-अवस्था का चित्र, कल्पना-दृष्टि से, देखकर रौनक़ का हृदय पुलकित हो उठा। बोला—दारोगा साहब, डंडे की मार के सिवा और कुछ न होगा? थाने में लाकर उसकी अच्छी तरह मरम्मत की जाती तो अच्छा होता।

दारोगा ने कहा—होना क्या मुश्किल है? किन्तु इतने रुपये से वह काम नहीं होगा। दूध में जितनी चीनी मिलाओगे उतना ही मीठा होगा।

रौनक़ ने दारोगा के दोनों हाथ पकड़ कर कहा—अगर साले को थाने में ला, खूब कसकर बाँधो और उसको किवाँच लगा सको तो बाबू साहब से पचास रुपये और दिला दूँगा।

"अच्छा यही सही" कह कर दारोगा दूसरे काम में लग गया। रौनक़लाल मन ही मन उमँगता हुआ अपने मुक़ाम पर लौट आया।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद

मोतीलाल जब घर से चला तब रात नाम-मात्र को थी। दो एक तारे आकाश में टिमटिमा रहे थे। बस्तीवाले या नौकर-चाकर उस समय भी सुख की नींद में निमग्न थे। मोती बेरोक टोक फाटक पार होकर गाँव की सड़क पर चलने लगा। रास्ते में दो चार परिचित व्यक्ति मिले थे किन्तु रात के धुँधलेपन में, इस कपटवेश में, उसे कोई पहचान नहीं सका।

मोतीलाल एक गेरुवा कपड़ा पहने और इसी रङ्ग की चादर तथा कम्बल ओढ़े था। आधा अगहन बीत चुका था। आधी रात से जाड़ा अपना विशेष प्रभाव दिखाने लग गया था। गेरुवा कपड़े की एक झोली मोती के दाहिने कन्धे में लटक रही थी। उस झोली में पूजा की साधारण सामग्री, एक भगवद्गीता की पोथी, सांख्य, दर्शन और चार पाँच अन्य पाठ्य पुस्तकें थीं। एक बड़ी-सी छुरी भी उसने झोली में रख ली थी। बायें हाथ में लोटा और बगल में मृगछाला थी। खाने की कोई चीज़ या रुपया-पैसा साथ न था। बिना द्रव्य के काम कैसे चलेगा, यह क्या मोती ने नहीं सोचा था? सोचा था, किन्तु बचपन से ही उसका मन भगवान की भक्ति में आसक्त था। उसे विश्वास था कि ईश्वर ने जब जन्म दिया है तब भोजन तो वह देगा ही।

यही निर्भरशीलता का भाव उसके मन में इस समय विशेष रूप से जाग उठा था।

किस रास्ते से कहाँ जायगा—इसका निश्चय करके मोती घर से नहीं निकला था। कमलपुर से दो कोस पर सरकारी पक्की सड़क थी। वह सड़क बराबर आज़मगढ़ तक गई है। जब रेलगाड़ी नहीं खुली थी तब लोग इसी रास्ते से शहर को जाते थे। मोतीलाल भी इसी रास्ते की ओर अग्रसर हुआ।

मोतीलाल जब गाँव से क़रीब एक कोस आगया तब बड़े घटाटोप के साथ सूर्य का उदय हुआ। कुछ दिन पूर्व मदनपुर में रात भर जागने के बाद मोती ने जो सूर्योदय देखा था उसका स्मरण, यह दृश्य देखकर हुआ। समझा कि वह सूर्य उसकी आर्त प्रार्थना के पुरस्कार में सुधा का नवजीवन लेकर उदित हुआ था। क्या ही शान्ति—क्या ही पुलकावली की तरङ्ग ने उसके हृदय को आप्लावित किया था। वह सोचने लगा, सुधा अब कैसे होगी? क्या करती होगी? अहा! उस बालिका के दिन सुख से कटें। इस प्रकार विचारों की परम्परा ने जब मोती के मानसक्षेत्र में अनधिकार-प्रवेश करके दौड़ना आरम्भ किया तब उसे होश हुआ। वह रास्ते में एकाएक ठिठक कर खड़ा होगया। अपने ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—यह क्या? कहाँ तो मैं घर-द्वार छोड़ गेरुवा वस्त्र धारण करके संन्यास-ग्रहण करने चला हूँ—कहाँ मैं धर्म-चिन्तन और भाव-चिन्तन में रह कर समय बिताऊँगा—और कहाँ उसके बदले मेरे मन

पर यह कामिनी की चिन्ता आधिपत्य कर रही है! छिः छिः छिः—धिक्कार है मुझको। इस प्रकार अपने मन को सावधान कर मोह-मुद्गर का श्लोक पढ़ते पढ़ते वह पहले की अपेक्षा और भी तीव्र वेग से उस रास्ते की ओर झपट चला।

इस तरह आधे घंटे तक चलने पर सम्मुख धूप में उसे कष्ट मालूम होने लगा। तब कम्बल को चौहरा कर कन्धे पर रख लिया। सड़क के दोनों ओर के खेत पीले धान से अपूर्व-शोभा धारण किये हुए थे। अब सड़क पर लोग आते जाते दिखाई देते हैं। कितने ही लोग मोती को साधु जान कर प्रणाम भी करते हैं।

मोती जब पक्की सड़क के ऊपर पहुँचा तब सात बज चुके थे। इतने ही में वह थक-सा गया। रात को उसे एक तरह से नींद नहीं आई थी। दूसरे, पैदल चलने का उसे कभी अभ्यास न था। जब प्रयाग के कालेज में पढ़ता था तब शाम को एक बार कम्पनी बाग़ की तरफ़ पैदल घूमने जाता था। जब से कालेज छोड़ा है तब से सुबह-शाम को थोड़ी दूर तक टहलने के सिवा दूर तक पैदल चलने का शायद उसे मौक़ा ही न मिला था।

कच्ची सड़क से जहाँ पक्की सड़क का मिलान हुआ था उसके समीप ही पक्की सड़क पर एक पुल था। उसी के ऊँचे पुश्ते पर एक पेड़ की छाया में मोतीलाल बैठ गया। हेमन्त की ठण्डी हवा सन् सन् बह रही थी। मोतीलाल की थकावट शीघ्र ही

दूर होगई। वहाँ बैठ कर वह सोचने लगा—"अब किधर जाना चाहिए? आज़मगढ़ की तरफ़ या इसकी उलटी ओर, जिधर से यह सड़क आई है?" मोती को मालूम न था कि विपरीत दिशा में यह रास्ता कहाँ ख़तम हुआ है। सोचा, आज़मगढ़ की ओर जाना ही ठीक है। यदि भगवान् की कृपा होगी तो वहाँ से काशी या वृन्दावन चला जाऊँगा।

यहाँ से आज़मगढ़ छत्तीस मील है। दो ढाई दिन का रास्ता है। तीन कोस के फ़ासले पर शिवपुर नामक एक बहुत बड़ा गाँव है। मोती उठकर फिर चलने लगा।

चलते चलते धूप क्रमशः बढ़ गई। मोती की चाल भी धीरे धीरे मन्द हो चली। जब दस का समय हुआ तब मारे प्यास के उसकी छाती फटने लगी। एक पथिक से पूछने पर मालूम हुआ, शिवपुर यहाँ से कोस भर दूर है। आज वहाँ हाट लगेगी। केले, अमरूद और अन्यान्य फल मनों बिकने के लिए वहाँ जा रहे हैं। ग्वाले लोग दही, दूध और घी लिये जा रहे हैं। सड़क के किनारे बहुत बड़ी बावली थी। पानी पीने के लिए मोती रास्ते से उतर उसके घाट पर जा खड़ा हुआ।

पानी के समीप पहुँच कर मोती के मन में हठात् यह बात आई कि आज अभी तक भजन-पूजन तो किया ही नहीं, पहले ही पानी कैसे पी लूँ? तब वह पानी में प्रवेश कर हाथ-मुँह धो पाक साफ़ हुआ। बावली के तीन ओर आम, कटहल और अमरूद आदि फलवान् वृक्ष लगे थे। एक वृक्ष की

छाया में साफ़ सुथरा स्थान देख वह मृगछाला बिछाकर बैठ गया।

उसके गले में अब भी कण्ठी बँधी है। इच्छा है, कोई सद्गुरु संन्यासी मिलने पर उनसे दीक्षा ग्रहण करके इसे उतार देगा।

भगवान् की उपासना करके मोती ने गीता की पोथी निकाली। गीता के कई श्लोक पाठ करने के बाद देखा, बाग़ीचे के भीतर कुछ दूर तीन चार आदमी घूम रहे हैं। एक आदमी के हाथ में फल तोड़ने की लग्गी है और दूसरों के सिरों पर टोकरियाँ हैं। वे सब क्रम क्रम से मोती के समीपस्थ होने लगे। कुछ दूर पर काग़ज़ी नीबू के कुछ पेड़ थे। जिसके हाथ में लग्गी थी वह लग्गी से नीबू तोड़ तोड़ कर एक आदमी के सिर पर, टोकरी में, फेंकने लगा। मोती ने समझ लिया कि इसी का बाग़ीचा है।

नीबू तोड़ चुकने पर उस आदमी की नज़र मोती पर जा पड़ी। तब वह कुछ डरता डरता आगे बढ़ा। कुछ दूर पर अपना फटा हुआ जूता उतार कर वह मोती के पास खड़ा हो चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

मोती को पुस्तक की ओर से सिर उठाते देख उस आदमी ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। फिर वह हाथ जोड़ कर कहने लगा—बाबा जी, मैंने इस बावली के पासवाले पेड़ ज़मींदार से १२०) सालाना पर ठीके में लिये हैं। आज ही पहले पहल फल

तोड़ने आया हूँ। शिवपुर की हाट में बेचूँगा। आज बाग़ीचे में बाबा के चरणों की धूल पड़ी है, मेरे लिए यह बड़ा ही शुभ शकुन हुआ—कह कर उसने टोकरी से एक चकोतरा और एक पका शरीफ़ा निकाल कर मोती बाबू के सामने रक्खा और हाथ जोड़े।

मोती आँखें मूँद कर मन ही मन बोला—प्रभो! मैं जानता था कि जब तुम्हारे चरणों की शरण गही है तब मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं करनी होगी। हे दयामय! ऐसा करना, जिसमें तुम्हारे चरणों का दृढ़ विश्वास मेरे हृदय में सदा अटल भाव से बना रहे।

मोती के आँख खोलने पर उस आदमी ने हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक कहा—बाबा जी! आशीर्वाद दीजिए जिसमें इस बाग़ीचे के फल बेचने से मुझे दो पैसा मुनाफ़ा हो।

मोती ने कहा—मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हें भक्ति प्राप्त हो, और भगवान् के चरणारविन्द में तुम्हारा मन बराबर लगा रहे।

द्रव्य-प्राप्ति का आशीर्वाद न पाकर वह आदमी कुछ उदास हो गया। "अच्छा तो जाता हूँ बाबा जी" कह कर वह फिर प्रणाम करके चला गया। मोती फिर भगवद्भजन में निमग्न हुआ।

आध घण्टे के बाद मोती ने चकोतरे को झोली में रखकर शरीफ़ा खाया। बावली में जाकर मुँह धोया और कुल्ला करके उसने फिर रास्ता पकड़ा।

जब वह शिवपुर पहुँचा तब दोपहर हो गया था। गाँव के बाहर हाट लगी है। चारों ओर कड़ी धूप फैली है। मोती ने सोचा, कहीं पर कुछ देर सुस्ताकर स्नान कर लेना चाहिए। हाट के समीप ही एक स्वच्छ सरोवर दिखाई दे रहा था।

विश्राम की इच्छा से वह कुछ दूर स्थित एक बड़ के पेड़ की ओर चला। वहाँ पहुँच कर देखा, पेड़ के नीचे एक जटाजूटधारी साधु सारे अङ्ग में भस्म रमाये बैठे हैं। कितने ही स्त्री-पुरुष उनको चारों ओर से घेरे खड़े हैं। एक युवती स्त्री बैठकर उनसे हाथ दिखा रही है। साधु बाबा के बग़ल में एक कपड़ा बिछा है। उस पर चौअन्नी, दुअन्नी और कुछ पैसे पड़े हैं।

मोतीलाल कुतूहल-वश वहाँ दो मिनट के लिए खड़ा हो गया। वह साधु उसे खड़ा देख, क्रोध और उदासीनता की दृष्टि से, उसकी ओर घूरने लगा। उसके मन का अभिप्राय समझ कर मोती वहाँ से हट गया।

तालाब के किनारे पहुँच कर मोती ने देखा, दो-तीन आदमी घाट पर नहा रहे हैं। सीढ़ी पर झोली आदि रखकर मोती पानी में पैठा। कुछ देर तक स्नान करने से उसका शरीर ठण्डा हुआ। स्नान करके चादर लपेट कर वह एक पेड़ के नीचे गया। सूखने के लिए भीगे कपड़े को उसने पेड़ की दो टहनियों में बाँध दिया और धरती साफ़ कर मृगछाला बिछा ली। फिर वह झोली से गीता की पोथी निकाल कर पाठ करने बैठा। पाठ करते करते मोती को भूख लगी। रात ही से चलने का परिश्रम था और एक

शरीफ़े के सिवा कुछ खाया न था। भूख का दोष क्या ? मोती ने मन में हँसकर कहा—साधु-संन्यासी को भोजन से क्या मतलब—सारा दिन खाऊँ खाऊँ करने से कैसे चलेगा ? उसने फिर गीता पढ़ने में मन लगाया।

किन्तु भूख बड़ी बलवती होती है। वह न गीता मानती है न उपनिषद् और न वेद-वेदान्त ही मानती है। मोती देर तक पाठ में मन नहीं लगा सका, तब पोथी समेट कर झोली से चकोतरा और छुरी निकाली। भूख में वह चकोतरा अमृत के समान मीठा लगा। चकोतरे को खाकर तालाब में हाथ-मुँह धो वह फिर पोथी पढ़ने लगा।

कुछ देर होते न होते मोती ऊँघने लगा। पिछली रात को वह एक तरह सारी रात जागता ही रहा था। उसके बाद धूप में कन्धे पर झोली लटका कर छः कोस रास्ता पैदल चलना पड़ा है। पुस्तक बाँध कर और झोली को सिर के नीचे रखकर मोती कम्बल ओढ़ मृगछाला के ऊपर सो रहा।

जब जागा तब सूर्यास्त होने में विलम्ब न था। एक खूँट खुल जाने से आधी धोती धरती पर लोट रही थी। मोती ने झट उठ कर उसे खोल साधुओं की तरह गले में बाँध लिया। फिर वह सोच विचार करने लगा।

जाड़े की रात है। इस पेड़ के नीचे कब तक बैठा रहूँगा ? कोई स्थान ढूँढ़ना चाहिए। भूख लगी थी, तो भी वह कुछ देर तक इतस्ततः करता हुआ बैठा रहा।

सूर्यास्त होते देख मोती उसी तरफ़ चला जहाँ पैंठ लगी थी। सोचा, वहाँ कोई जगह रहने को मिल जायगी।

बड़ के पेड़ के नीचे आकर देखा तो पूर्वोक्त संन्यासी अब भी वहीं बैठा था। इस समय उसके पास कोई भी नहीं था। पैंठ भी प्रायः उठ गई थी। मोती को देख उसने हँसकर और "आओ जी आओ, बैठो," कहकर बग़ल में बैठने को जगह बतलाई।

मोती मृगछाला बिछाकर बैठ गया।

साधु ने पूछा—कहो कहाँ थे ?

मोती ने बतला दिया कि अमुक स्थान में था।

साधु ने पूछा—क्या मिला ?

मतलब न समझ कर मोती ने पूछा—कैसा क्या मिला ?

साधु ने हँसकर कहा—यही रुपया-पैसा। यही पूछता हूँ, हाथ क्या लगा।

मोती ने हँसकर कहा—कुछ भी नहीं।

साधु ने कहा—मुझे भी वैसा सुभीता नहीं मिला। आज-कल के लोग बड़े कंजूस होते हैं, बड़े मक्खीचूस। धर्म-कर्म में एक पैसा ख़र्च करना नहीं चाहते। साधु-संन्यासी को कुछ देने के नाम से तो उनकी नानी मर जाती है। एक औरत को लड़का होने की जड़ी दी तब उसने आठ आना पैसा दिया है। और लोगों ने हाथ दिखा, हज़ारों बातें पूछ-पाछ कर दो-चार पैसे दिये। तुमने किसी को जड़ी-बूटी दी या नहीं ?

मोती—मैं जड़ी-बूटी नहीं जानता।

"हाथ देखा ?"

"हाथ देखना भी नहीं जानता।"

"तो क्या जानते हो ? सिर्फ़ गाँजा फूँकना जानते हो ?"

मोती—वह भी नहीं जानता।

"क्या अभी तक गाँजा पीना नहीं सीखा है ? शायद तुम अभी अभी भर्ती हुए हो। मैं तो तुम्हारा चेहरा देखकर ही समझ गया हूँ। मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ—तुम बड़े अल्हड़ हो। सिर में जटा तक नहीं। सिर्फ़ गेरुवा पहिरने और कन्धे में झोली लटकाने ही से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। अङ्ग में भभूत रमानी चाहिए, सिर पर लम्बी जटा चाहिए, और घंटे घंटे पर गाँजा पीना चाहिए। नशे से जब आँखें अंगारे की तरह लाल हो रहेंगी तभी तो देखकर लोगों को भक्ति होगी। जब मैं पहले पहल घर से निकला था तब एकदम सीधा काशी गया। वहाँ के बाज़ार से साढ़े तीन रुपये में एक लम्बी जटा लेकर माथे पर रख ली थी। सीधे सादे रहने से क्या कुछ होता है।" यह कहकर साधु ने गाँजा निकाल कर बाँयें हाथ में रख दहने हाथ के अँगूठे से मलना आरम्भ किया।

गाँजा तैयार होने पर उसे चिलम में भर कर कहा—घर छोड़े कितने दिन हुए ?

"बहुत थोड़े दिन।"

इधर-उधर देखकर साधु ने मोती के कान के पास मुँह ले जाकर पूछा—कहो किस दफ़ा में ?

मोतीलाल ने दफ़ा का अर्थ न समझ कर पूछा—क्या कहा ?

संन्यासी ने हँसकर कहा—क्यों मुकरते हो ? जैसे कुछ जानते ही नहीं ! बड़े ही निर्दोष बिलकुल भोले-भाले हो । ख़ून, डकैती या जाल—कहो किस मुक़दमे में फँसे थे ?

मोती ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—मैं तो किसी भी मुक़दमे में नहीं फँसा था।

साधु ने सिर हिलाकर और मुस्कुराकर कहा—वाह जी वाह ! तुम तो बड़े पक्के मालूम होते हो। यों ही घर से निकल पड़े हो ! मानो दुनिया से तुम्हारा कोई सरोकार ही नहीं।— अब उसने गाँजे की चिलम पर आग चढ़ाई।

मोतीलाल चुप हो रहा। साधु दो चार कश लगाकर बोला— सच सच कहो न ! मुझसे छिपाते क्यों हो ? मैं ख़ुफ़िया पुलिस नहीं हूँ। कौन साला झूठ नहीं बोलता ? तुम्हारी क़सम, तुम अपनी बीती कह डालो। फिर मैं भी अपना सारा क़िस्सा कह सुनाऊँगा ;

इस पर भी मोती ने स्वीकार नहीं किया कि वह किसी फ़ौजदारी मामले में फँसा था।

साधु ने और दो चार दम लगा चिलम नीचे रखकर

कहा—तुम न कहो तो इससे क्या मैं मान लूँगा ? इतने लोगों के हाथ देखकर जो फल कहता हूँ वह कुछ मिलता है, कुछ नहीं भी मिलता है; किन्तु तुम्हारा हाथ बिना देखे ही कहे देता हूँ, तुम दौरा-मुक़दमे के फ़रार असामी हो। चिलम पर आग जल रही है—साक्षात् ब्रह्म है। अच्छा इसे छूकर कहो कि तुम फ़रार नहीं हो ?

मोती ने उसकी यह बात भी स्वीकार नहीं की। आख़िर साधु ने गाँजे की चिलम मोती की ओर बढ़ाकर कहा—पिओगे ?

"नहीं।"

तब साधु ने बचे हुए गाँजे को भस्म करके कहा—उठो, चलो।

मोतीलाल—कहाँ ?

"ठाकुरद्वारे में। यहाँ ठाकुरद्वारा है, तुम्हें मालूम नहीं ?"

"नहीं।"

"इस तरफ़ पहले पहल आये हो। गाँव के भीतर श्रीराधा-कृष्ण का मन्दिर है। रोज़ हलुवा, पूरी, मालपुआ का भोग लगता है। जो साधु-संन्यासी वहाँ पहुँचते हैं, प्रसाद पाते हैं। ख़ूब गरमागरम मालपुआ, जो जितना खा सके—खाय। आठ, दस, पन्द्रह। घी से ख़ूब तर रहते हैं। बहुत बढ़िया होते हैं। मैं आज रात को वहीं रहूँगा। साधु-संन्यासियों के रहने के लिए एक

पक्का मकान भी है। एकबारगी खूब आनन्द। सिर्फ़ एक ही चीज़ का सुख नहीं और सब तरह का सुख है। चलना हो तो मेरे साथ चलो।" यह कहकर साधु उठ खड़ा हुआ।

ऐसे भण्ड का साथ पकड़ना मोती को ज़रा भी पसन्द न था। तथापि भोजन और आश्रय के लिए विवश होकर उसने उस कपट-वेशधारी साधु के साथ जाना स्वीकार किया। दोनों धीरे धीरे ठाकुरद्वारे की ओर अग्रसर हुए।

चवालीसवाँ परिच्छेद

रास्ते में जाते जाते मोतीलाल ने पूछा—बाबा, आपका नाम क्या है ?

"मेरा नाम भैरवानन्द भारती है। जब गृहस्थ था तब दूसरा नाम था। तुम्हारा नाम क्या है ? स्थान आदि कहाँ है ?"

"मेरा नाम अभी तक कुछ नहीं रक्खा गया है—अभी घर का ही नाम है।"

"वह नाम ज़ाहिर न करना। किसी को मत बतलाना। असली नाम और गाँव दोनों को छिपा डालना ही अच्छा है। पुलिस को पता लग जाय तो वह रजिस्टर में नाम दर्ज कर धर-पकड़ करना शुरू कर दे। मुझे चुपचाप बतला दो; मैं तुम्हें नहीं पकड़वाऊँगा।"—कहकर साधु हँसने लगा।

मोती को चुप देखकर उसने कहा—देखो, एक बात तुम्हें अभी समझाये देता हूँ। ठाकुरद्वारे में पहुँचकर खूब गम्भीर होकर रहना। समझ गये न ? ऐसा भाव दिखाना, जिसमें लोग समझें कि इसका मन सदा परमार्थ-चिन्तन में ही डूबा रहता है। संसार कुछ नहीं—सर्वं मिथ्या। रुपया-पैसा, खाने-पीने की चीजें, ये सभी तुच्छ पदार्थ हैं। इन पर भूल कर भी नज़र नहीं डालना। आँख मूँद कर केवल ध्यान करना—सोहं सोहम्।

हम लोग जो हँसी-तफ़रीह करते हैं वह छिपकर अपनी मण्डली में। अपनी धर्मगोष्ठी में हँसो बोलो, जो जी में आवे करो, उसके लिए कोई मनाही नहीं। किन्तु उन लोगों के सामने एक-दम गम्भीर विश्वम्भर-मूर्त्ति बन जाना चाहिए। अच्छा एक काम करो न, तुम मेरे चेला बन जाओ। दो एक चेला न होने से साधु-संन्यासी की क़दर नहीं बढ़ती। तुमको भी लाभ होगा। मेरे साथ घूमने से तजरबा हासिल करोगे। दो पैसे कमाने का ढँग सीखोगे। मैं तुमको सब बातों में होशियार कर दूँगा। विज्ञानशास्त्र की भी शिक्षा दूँगा।

मोती—आपने विज्ञान पढ़ा है ?

"क्यों नहीं पढ़ा है। आज-कल शहरों में विज्ञान की बड़ी क़दर है। विज्ञान की दो चार बातें यदि उन लोगों के मन के माफ़िक कह दो तो फिर तुम्हारी पूजा में कमी न रहेगी—बड़े बड़े सेठ साहूकार, डिपटी, मुन्सिफ़ तुमको गुरु बना कर मन्त्र लेंगे। तुम्हारी सेवा करेंगे। रुपये-पैसे की कमी न रहेगी। यही सब देख सुनकर मैंने विज्ञान का कुछ विषय सीख लेना बड़ा आवश्यक समझा। मुझे कोरा मूर्ख मत समझो, मैं पढ़ा लिखा आदमी हूँ। हिन्दी-विज्ञान की कोई पुस्तक मिल जाती तो मैं स्वयं पढ़कर उसका मतलब समझ लेता, इस बात का मुझे गर्व था। भगवत्कृपा से एक सुयोग भी मिल गया। एक दिन घूमते घूमते मैं एक बड़े आदमी के घर आतिथ्य ग्रहण करने के लिए जा पहुँचा। कमरे के भीतर पैर रख कर देखा तो

कोई बाबू नहीं है। बरामदे की कोनेवाली खुली कोठरी में, जहाँ बैठकर लड़के पढ़ते थे, जाकर देखा तो वहाँ एक भी लड़का नहीं था। टेबल पर कितनी ही किताबें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। उनमें एक किताब की पीठ पर मोटे अक्षरों में "सरल विज्ञान पाठ" लिखा देखा। फिर क्या था, झट मैं उसे झोली के भीतर डाल कर "बकः परमधार्मिकः" की भाँति धीरे धीरे चल दिया। दूसरे भक्त के घर जाकर आतिथ्य ग्रहण किया। उसी पुस्तक को पढ़कर मैंने कुछ विज्ञान की बातें सीख ली हैं। पुस्तक के जिस पेज पर लड़के का नाम लिखा था उसे फाड़ कर फेंक दिया है। कभी कभी पढ़ता हूँ। अगर तुम मेरे चेले बन कर मेरी खूब सेवा-शुश्रूषा करो, और किताब लेकर कहीं चम्पत न हो जाओ तो वह किताब मैं तुमको पढ़ने के लिए दे सकता हूँ। किन्तु पढ़ कर क्या तुम खुद समझ सकोगे? कहाँ तक पढ़े लिखे हो?"

मोती ने कहा—बहुत नहीं, मामूली तरह से कुछ लिख पढ़ लिया है।

"हें हें। मालूम होता है, उस तरफ़ ठन ठन गोपाल—काला अक्षर भैंस बराबर है। उल्टा घड़ा है। अच्छा, मैं तुमको ज़बानी ही सिखा दूँगा, कुछ चिन्ता मत करो। क्या सभी लोग लिखे पढ़े होते हैं? आज-कल के बाज़ार में कितने ही संन्यासी पढ़े लिखे मिलते हैं। तुम मेरे चेला बन जाओ। ऐसा सुयोग फिर नहीं मिलेगा।"

इस तरह बातें करते करते दोनों ठाकुरद्वारे के समीप जा पहुँचे। सभा-मण्डप के एक ओर ठाकुर जी का मन्दिर था, दूसरी ओर अतिथिशाला थी। मोती ने भीतर जाकर देखा कि अतिथिशाला के बरामदे में तीन संन्यासी और बैठे हैं। उनमें एक अधेड़ ख़ूब विशालकाय हृष्ट-पुष्ट था। एक बालक संन्यासी गाँजा बना रहा था और एक युवा संन्यासी बेल की लकड़ी के भङ्गघुटने से कुण्डी में भङ्ग रगड़ रहा था। मोती और भैरवानन्द को देखकर वह मोटा संन्यासी धीर स्वर से बोल उठा—"अरे और दो मूरत साधू आगया। उसमें आधी छटाँक भङ्ग और डाल दे।" यह कहकर वह उच्च स्वर से पुकारने लगा—पुजारी जी—ओ पुजारी, ओ मिसिर जी।

आवाज़ सुनकर एक दुबले पतले मिसिर जी रामनामी दुपट्टा ओढ़े बाहर आये। उन्होंने पूछा—क्या है स्वामी जी?

स्वामी जी—पुजारी जी, और दो मूरत साधू आया है। दो छटाँक किसमिस, दो छटाँक चीनी और आध सेर दूध मँगा दो।

"बहुत अच्छा" कह कर पुजारी चला गया।

इतने में मोतीलाल और भैरवानन्द वहाँ जा खड़े हुए। स्वामी जी ने कहा—बैठो।

दोनों के बैठने पर स्वामी जी मोती को सिर से पैर तक देखने लगे। फिर बोले—तुमने नया भेष लिया है।

मोती के साथी साधु ने कहा—बिलकुल नया।

"तेरा ही चेला है?"

भैरवानन्द ने मोती के मुँह की ओर देखकर कहा—हाँ, है तो—पर अभी इसको चेला नहीं किया है। लेकिन हमारा चेला होने के वास्ते उसकी बड़ी ख्वाहिश है।

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। देखो, हमारे दो दो चेले हैं। एक भङ्ग पीस रहा है, एक गाँजा मल रहा है।" इतने में बालक चेले ने गाँजे की चिलम गुरु के हाथ में दी। कई दम खींच कर उसने चिलम भैरवानन्द के हाथ में दी। भैरवानन्द ने प्रसाद पाकर एक दूसरे संन्यासी को दी। उसने दो दम लगा कर मोती को देने के लिए हाथ बढ़ाया। यह देखकर स्वामी जी बोल उठे—क्यों रे तू भी गाँजा पीता है?

मोती ने कहा—नहीं महाराज।

"बहुत अच्छा—बहुत अच्छा। मत पी—गाँजा मत पी—तू अभी बच्चा है। गाँजा पियेगा तो पागल हो जायगा—कलेजा जल जायगा—मर जायगा। भङ्ग पी—गाँजा मत पी। भङ्ग अच्छी होती है। भङ्ग पीवे मौज करे बना रहे अवधूत। यह कवित्त है। जब तेरी चालीस वर्ष की उमर हो तब गाँजा पीना। अभी भङ्ग पी।"

गाँजे की चिलम नियमित भाव से पियक्कड़ साधुओं के बीच घूमने लगी। सूर्यास्त हो गया।

इधर एक बड़े लोटे में चीनी मिला हुआ दूध रक्खा था। भङ्ग का गोला भी तैयार हो चुका था। वह दूध में मिला दिया गया। मन्दिर का नौकर तुरन्त के धोये तीन चार मिट्टी के

पुरुवे दे गया। उन्हीं पुरुवों से सभी विजयापान करने लगे। दो पुरुवा भंग पीने के बाद स्वामी जी ने देखा, मोती भंग नहीं पीता है। बोले—क्यों रे, तू भंग भी नहीं पीता ?

मोती—जी नहीं।

"भंग नहीं पीता है तो सुन, एक कवित्त सुन—

जिसने इस दुनिया में आकर एक दिन भी पिया न भंग।

उसने सच पूछो तो क्या देखा जहान का रङ्ग ?

समझा ? नहीं समझा। जिसने इस दुनिया में आकर याने जनम लेकर एक दिन भी भंग नहीं पी लिया उसने जहान का—जहान नाम है दुनिया का—जहान दुनिया को कहते हैं, फ़ारसी लफ़्ज़ है। उसने दुनिया का रङ्ग ढङ्ग क्या देखा ? कुछ नहीं देखा।"—कहकर स्वामी जी हहा कर हँसने लगे।

और संन्यासी भी स्वामी जी के स्वर में स्वर मिलाकर हँसते हँसते बोल उठे—"कुछ नहीं देखा।" भैरवानन्द बोल उठे—वाह वाह, बहुत अच्छी कविता है, बहुत अच्छी।

घड़ी भर रात बीती। आरती होने में अब विलम्ब नहीं है। एक एक कर गाँव के कितने ही स्त्री-पुरुष आरती देखने के लिए मन्दिर में इकट्ठे होने लगे। सोने का चश्मा लगाये, शाल ओढ़े हुए, एक मोटेमल बाबू भी आये। आरती होने में कुछ विलम्ब देख वे दर्शक लोग संन्यासियों के पास आकर बैठे।

स्वामी जी ने चार पुरुवे भंग पेट में डाल करके पाँचवें पुरुवे का कुछ अंश मात्र पीकर बचा बचाया बालक चेले को दिया।

उसने उसे एक ही साँस में साफ़ कर डाला। इसके बाद स्वामी जी ने कहा—अरे बच्चा, थोड़ा भजन सुना दे। माई लोग बाबू लोग आये हैं। थोड़ा हरिनाम गाकर इन लोगों को सुना दे।

तब लड़के ने दो करतालें निकालीं। स्वामी हाथ में करताल लेकर बजाने लगे और लड़का करताल के ताल पर नाचते नाचते गाने लगा—

राम-नाम लड्डू गोपाल नाम घी।
कृष्ण-नाम मिसिरी घोल घाल पी॥

स्वामी जी करताल बजाने के साथ ताल ताल पर सिर हिलाने लगे। जब गाना समाप्त हुआ तब स्वामी जी ने उस बुढ़िया से, जो सबके आगे बैठी थी, कहा—माई तुमने गीत का अर्थ समझा।

"हाँ बाबा, कुछ कुछ समझती हूँ।"

स्वामीजी ने कहा—राम-नाम लड्डू है (हाथ के इशारे से गोलाकार पदार्थ दिखाकर) मोतीचूर का, बेसन का। गोपाल-नाम घी है—मक्खन के ऐसा, कृष्ण-नाम मिसरी है। सबको घोल घाल कर पिओ। मतलब हर घड़ी राम कृष्ण गोपाल कहो।

विधवा ने कहा—हाँ बाबा जी, राम-नाम लड्डू से भी बढ़कर और कृष्ण-नाम मिसरी से भी बढ़कर मीठा है।

"हाँ, बहुत मीठा है—बहुत मीठा। एक साधु ने कहा है—

"भरोसा देह का मत राखो,
अमीरस नाम का चाखो।

समझा माई जी ? यह जो मनुष्य का चोला है इसका कुछ भरोसा नहीं, कुछ भी नहीं।"

अन्य संन्यासी भी स्वर में स्वर मिलाकर बोले—कुछ भी नहीं—कुछ भी नहीं।

बुढ़िया ने कहा—सच्ची बात है बाबा जी, इस देह का भरोसा ही क्या ? अभी है, कुछ देर में नहीं।

स्वामी जी—माई तू बड़ी भगतिन है। तूने ठीक कहा है—नाम जो है वही अमृत है। उसके पीने से जीव को मोक्ष होता है; वह आवागमन से छूटता है।

दर्शक आपस में फुसुर फुसुर कर कहने लगे—"यह साधु असल में तत्त्व-ज्ञानी है—ऐसे महात्मा के दर्शन से पुण्य होता है।" स्वामी जी ने यह बात अच्छी तरह सुन ली।

"संस्कृत में भी लिखा है—असारे संसारे—यह संसार कुछ चीज़ नहीं है।"—कहकर स्वामी जी दोनों आँखें मूद कर भक्ति-गद्गद स्वर से कहने लगे—

साँस साँस में कृष्ण रट श्वास वृथा ना खो।
क्या जाने इस श्वास का यही अन्त ना हो।

इतने में आरती का घंटा बज उठा। दर्शकों ने स्वामी जी को प्रणाम करके किसी ने दुअन्नी, किसी ने चौअन्नी, किसी ने पैसा उनके पैरों के समीप रक्खा। चश्माधारी बाबू ने टन से एक रुपया उनके आगे फेंक दिया। सब लोग आरती देखने गये।

आरती होने पर पुजारी ने भगवान् की प्रसादी पूरी, मोहन-भोग, मालपुआ, साधुओं में बाँट दिया। मोती ने भी हाथ पसारा किन्तु मारे ग्लानि के उसका मन व्याकुल हो रहा था। इन वञ्चकों के दल में मिलकर मानो वह भी उन्हीं का साथी होकर मालपुआ खाने आया है। यह सोच कर उसका हृदय लज्जा और क्षोभ से संकुचित हो गया था। किन्तु बेचारा करे क्या! भूख से पेट जल रहा था। उसने एक कोने में दबकर अँधेरे में बैठ, किसी तरह आँख के जल को आँख में ही रोक कर भोजन किया।

ठाकुर जी के मन्दिर का द्वार बन्द हो गया। पुजारी आदि सभी चले गये। और जो दो संन्यासी पहले ही से उस अतिथिशाला में थे उन्होंने स्वामी जी से कहा—भेंट में आज कितना आया?

युवक चेले ने कहा—दो रुपये।

एक संन्यासी ने कहा—हमारा हिस्सा?

यह सुन कर स्वामी जी ने कहा—कैसा हिस्सा?

"भाई लोग जो भेंट दे गई हैं वह सभी साधुओं को दे गई हैं। क्या वे अकेले तुम्हीं को दे गई हैं? उसमें आधा हमारा होगा।"

स्वामी जी बोले—ठीक है। तो मुझे प्रणाम करके मेरे पैरों के पास क्यों रख गईं। श्लोक सुनाया मैंने, श्लोक का अर्थ

बताया मैंने, नाच कर गीत गाया मेरे चेले ने। मुफ़्त का हिस्सा लेनेवाले तुम लोग ! मैंने उनको ख़ुश किया है, उन्होंने मुझे भेंट दी है। तुमने क्या किया है जो हिस्सा माँगते हो ? लाज नहीं आती ?

उन संन्यासियों ने कहा—हम भी तो यहीं बैठे थे। हम लोग क्या घास काटने आये हैं ? लाओ, हमारा हिस्सा दो।

दोनों में भारी झगड़ा हुआ। वाद-विवाद के अनन्तर गाली-गलौज होने लगी। स्वामी जी के मुँह से ऐसी अश्लील गालियाँ निकलने लगीं, जिन्हें सुनकर कान मूँदना पड़े। आख़िर स्वामी जी भंग घोटने का सोंटा हाथ में ले घुड़क कर बोले—"कौन हमसे हिस्सा बँटाता है, बँटावे तो देखें। आज लाश गिर जायगी।" युवक चेला भी गुरु का पक्ष लेकर ख़ूब कूद-फाँद करने लगा। आख़िर दोनों संन्यासी कोई उपाय न देख चुप हो रहे।

तब स्वामी जी दोनों चेलों को लेकर घर के भीतर चले गये। भैरवानन्द से एक संन्यासी कहने लगा—देखा, इस बेईमान को ? इस तरह ग़रीब का हिस्सा मार खाता है ! उस पर ब्रह्मज्ञानी बनकर लोगों को ठगता है।

दूसरा संन्यासी बोला—उसने दो कवित्त कहे हैं और दो चेलों को साथ लाया है। इससे क्या सर्वस्व ग्रास करेगा ? मेरा भी हक़ मारा गया। मुफ़्त में गालियाँ सुनीं।

मोती चुपचाप यह तमाशा देख रहा था। क्रोध से उसका सर्वाङ्ग जल रहा था। पाखण्डियों के साथ एक रात रहना होगा।

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट सङ्ग जनि देइ विधाता॥

उसने निश्चय किया कि पेड़ के नीचे जाकर सोना अच्छा है, परन्तु इन वकव्रातियों के साथ रात बिताना अच्छा नहीं। मोती अपनी झोली आदि सब सामान ले ठाकुरद्वारे से बाहर हो गया।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

श्री राधाकृष्ण के मन्दिर से निकल कर मोतीलाल, मन के आवेग से, बहुत दूर तक चला गया। चाँदनी रात थी, आकाश निर्मल था। सड़क जनशून्य थी। अधिकांश ग्रामवासी सो गये थे। कहीं कहीं बैठक की खिड़की की राह से थोड़ा थोड़ा प्रकाश बाहर आ रहा था।

दस मिनट तक इस प्रकार स्वेच्छानुसार चलने के बाद मोती का मन कुछ स्थिर हुआ। तब उसने खड़े होकर सोचा—रात को कहाँ जाऊँ? किसी गृहस्थ के घर में रात भर ठहरने के लिए प्रार्थना करूँ तो शायद वह मुझे चोर समझ कर सन्देह करे। साधु-संन्यासियों की श्रेणी में जब ऐसा व्यवहार होते देख रहा हूँ तब गृहस्थों का वैसा समझना कुछ विचित्र नहीं है।

इस तरह सोच विचार कर वह आगे बढ़ा। उसे देखकर बीच बीच में दो एक कुत्ते भूँक उठते थे। कुछ दूर और आगे जाकर मोती ने देखा कि खुले हुए मैदान में अनेक छोटे छोटे छप्पर पड़े हैं, समीप ही एक बहुत बड़ा बड़ का पेड़ है। वह समझ गया कि दिन में जहाँ पैंठ लगी थी वहीं फिर आ गया हूँ।

मोतीलाल दृष्टि दौड़ा कर चारों ओर देखने लगा। हाट के दोनों ओर कितनी ही स्थायी दूकानें हैं। दूकानदार लोग फाटक

बन्द करके सो गये हैं। छप्परों के समीप जाकर देखा—दो तीन जगहों से मछली की दुर्गन्ध आ रही थी। हाट के दिन मल्लाहिनें इन्हीं घरों में बैठ कर मछलियाँ बेचती हैं। दो तीन छप्परों में बदबू तो न थी किन्तु ख़ूब कूड़ा-करकट पड़ा था। वहाँ सोने से रात में साँप वग़ैरह का भय था। इसलिए मोतीलाल ने उस स्थान को छोड़कर फिर पक्की सड़क पकड़ी।

कुछ ही दूर आगे जाने पर देखा, सड़क के पास एक ऊँचे बरामदे का सुन्दर बँगला है। सोचा, इस बरामदे में बे-खटके सो सकता हूँ। तब वह रास्ता छोड़कर बरामदे के पास जा खड़ा हुआ। मन में सोचा, जिसका मकान है उससे आज्ञा लेकर बरामदे में सोना अच्छा है। इसलिए उसने धीरे से पुकारा—यहाँ कोई है? कुछ उत्तर न मिला।

मोती ने फिर स्वर को कुछ ऊँचा करके आवाज़ दी—यहाँ कोई है?

फिर भी कुछ उत्तर न मिला। मोती ने सोचा, मकान ख़ाली तो नहीं है। सीढ़ी पर पैर रख धीरे धीरे वह उसारे में गया। कुछ कुछ जो प्रकाश था उसमें देखा कि कमरे का दरवाज़ा बन्द है। तब उसने धीरे धीरे बरामदे के प्रान्त में जाकर देखा तो एक किञ्चित् खुली खिड़की की राह से रोशनी आ रही है। खिड़की के पास जाकर देखा कि कोठरी के भीतर एक तीस बत्तीस वर्ष का युवा नीचे आसन बिछाये उस पर हाथ जोड़े आखें मूँदे बैठा है। मोती ने समझा कि वह उपासना में लीन है, अभी

उसको पुकारना उचित नहीं। मोती वहाँ चोर की तरह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर वहाँ से हटकर उस कोठरी के द्वार के पास आया। द्वार भीतर से बन्द था। थक जाने के कारण मोती ने सोचा, कन्धे से झोली उतार कर नीचे रख कर ज़रा बैठ जाय। बैठते समय कन्धे से धरती पर झोली रखने का शब्द हुआ। तब भीतर से आवाज़ आई—कौन है?

मोती ने खड़े होकर कहा—मैं संन्यासी हूँ।

बाबू किवाड़ खोल कर बाहर आये। बोले—आप संन्यासी हैं? आइए, भीतर आइए।

मोती—भीतर जाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने आपकी शान्ति भङ्ग की, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। मैं आपके बरामदे में रात को सोऊँगा, यही आज्ञा लेने आया हूँ।

बाबू—सोइएगा तो बरामदे में क्यों? इस अगहन में, जाड़े की रात में, आपको कष्ट होगा। मेरे इसी कमरे के भीतर सोइए। आइए।

मोती—नहीं, मैं आपको तकलीफ़ देना नहीं चाहता। मैं इसी बरामदे में बड़े आराम से सोऊँगा। आप जाकर सोइए।

"भला ऐसा भी कभी हो सकता है? मैं घर के भीतर सोऊँ, और आप बरामदे में रहें! आइए, आइए। मुझे कुछ तकलीफ़ नहीं होगी। बहुत जगह है।"

मोती ने, बाबू के पीछे पीछे, घर के भीतर प्रवेश किया। देखा तो कमरा साफ़-सुथरा और ख़ूब लम्बा-चौड़ा है। एक

तरफ़ चौकी पर बिछौना बिछा हुआ है। उसके पास ही बेञ्च पर एक स्टील ट्रङ्क रक्खा है। दीवार से कुछ हटकर एक विलायती चूल्हा और चाय औटाने तथा पीने का सब सामान पड़ा है। चौकी के सिरहाने की तरफ़ एक टेबुल पर लालटेन बल रही है और कितनी ही मोटी मोटी पुस्तकें उस पर रक्खी हुई हैं। दीवार में चार पाँच नक़शे मोड़े हुए लटक रहे थे। दो बेञ्चें और एक टूटा हुआ काला बोर्ड भी था।

बाबू ने भीतर जा चौकी पर बैठ अपने बग़ल में स्थान दिखा कर कहा—"आइए, बैठिए।" मोती चौकी की कगनी पर बैठ कर कमरे में बिछे आसन पर दृष्टि डाल कर बोला—आप उपासना में संलग्न थे। मैंने बाधा डाली, बड़ा अन्याय हुआ।

बाबू—उपासना क्या, उपासना की नक़ल कहिए। हम लोग उपासना क्या करेंगे? गृहस्थ का मन क्या स्थिर रहता है? बैठ कर भगवान् का स्मरण करने की चेष्टा-मात्र करता हूँ। आप आये हैं, यह मेरा सौभाग्य है।

कुछ देर इधर-उधर की बातें होने के अनन्तर बाबू एकाएक बोल उठे—अच्छा, बाबा जी, आप आज्ञा दीजिए तो मैं एक बात पूछूँ।

"पूछिए।"

बाबू दोनों भौंहें उँगली से दबाकर बोले—मनुष्य की मृत्यु होने पर आत्मा कहिए—या जो कहिए—उसकी क्या स्वतन्त्र सत्ता रहती है?

मोती ने कहा—हिन्दूशास्त्रों पर विश्वास करने से—

बाबू ने बात काट कर कहा—वह सब मैं जानता हूँ। मैंने पढ़ा है। मैं आपसे वह नहीं पूछता—आप अपने मन का—शास्त्र-पुराण की बात छोड़ दीजिए—अपने मन का स्वाधीन विश्वास जो हो, वही मुझसे कहिए।

मोती—मेरे मन का विश्वास है—मनुष्य के मर जाने पर भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है।

बाबू एक मिनट चुप रह कर बोले—अस्तित्व रहता है। मेरा भी यही विश्वास है। स्वामी जी, मैं आपसे एक बात और पूछूँगा। आशा है, आप कृपा-पूर्वक मेरी धृष्टता क्षमा करके समीचीन उत्तर दे अनुगृहीत करेंगे। मैं आपकी परीक्षा करने के अभिप्राय से या आपको धोखे में डालने के लिए नहीं पूछता। किसी कारण से मेरा मन बड़ा ही व्याकुल है। यह कहने की अभी ज़रूरत ही क्या! इसे जाने दीजिए। हाँ, आपने जो कहा है कि मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता रहती है—यह आपका स्वतन्त्र विश्वास है। अच्छा, इस विश्वास का आधार क्या है? क्या विचार कर आपने विश्वास किया है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है?

मोती—मेरा विश्वास a Priori के आधार पर अवलम्बित है और—

बाबू—आप अँगरेज़ी जानते हैं?

"जी हाँ।"

"पाश्चात्य दर्शन पढ़ा है ?"

"हाँ, कुछ कुछ।"

"अच्छा ही हुआ। तब हम लोगों का अनुभव मिलेगा। अच्छा क्या कहते थे, कहिए।"

मोती—मेरा विश्वास है कि प्रथम तो ईश्वर सृष्टिकर्ता हैं और फिर उनकी सृष्टि का अभिप्राय शुभ है। मनुष्य को जो उन्होंने सिरजा है वह यों ही नहीं सिरजा; किसी अभिप्राय से ही सिरजा है। मनुष्य को क्रम क्रम से ऊँचे शिखर तक पहुँचाने ही के लिए बनाया है। वे उसे एक एक सीढ़ी ऊपर चढ़ा कर चरम स्थान तक पहुँचा देंगे। स्कूल में जैसे अलग अलग क्लास होते हैं, मैं समझता हूँ, मनुष्य का एक एक जन्म भी उसी तरह एक एक क्लास है। एक जन्म में मनुष्य अपनी कितनी क्या उन्नति कर सकता है ? मृत्यु के साथ साथ यदि सभी समाप्त हो जाय तो यह सृष्टिव्यापार बिलकुल ही, लड़कों के खेल की तरह, निरुद्देश्य होगा। इसी से मैं विश्वास करता हूँ कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। उसे चाहे आत्मा कहिए चाहे और कुछ। वही आत्मा फिर नया मनुष्य-शरीर धारण करती है; पिछले जन्म में मनुष्य-जीवन का सबक़ जहाँ तक सीखा था, इस जन्म में फिर वहीं से आरम्भ कर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होती है।

बाबू ने कहा—मैं भी एक समय यही सोचता था। अच्छा, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। क्या वृक्षों में भी आत्मा

है ? पेड़ सूख जाने पर क्या उसका स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है और वह फिर नया पेड़ होकर जन्म लेता है ?

मोती ने कहा—यह मेरी समझ में नहीं आता।

"तब तो भगवान् का वृक्षों की रचना करना उद्देश्य-हीन, लड़कों का खेल, हुआ ?"

"सो क्यों ? वृक्ष सूख जाता है, किन्तु उसके फल के बीज से जो सैकड़ों पेड़ उत्पन्न होते हैं, वही ईश्वर के उद्देश्य की सार्थकता के प्रमाण स्वरूप हैं।"

बाबू ने कहा—तो मैं भी इसी तरह कहूँ कि ईश्वर ने पूर्ण परिणति के लिए मनुष्य की सृष्टि की है, बहुत ठीक। किन्तु प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र भाव से पूर्ण परिणति को प्राप्त हो, यह उनका उद्देश्य नहीं है। पूर्ण परिणति के लिए उन्होंने मानव-जाति की सृष्टि की है। वंशावली-क्रम से मानवजाति पूर्णता की ओर अग्रसर होती है। वही उनके अभिप्राय को सफल करेगी।

मोतीलाल ने कुछ सोच कर कहा—तर्क के इस पहलू की ओर मेरा ख़याल कभी नहीं गया था। अच्छा, मैं इसे सोचकर देखूँगा। मृत्यु के बाद प्रत्येक मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है, आपके इस विश्वास का आधार क्या है ? क्या मैं यह पूछ सकता हूँ।

बाबू धीरे धीरे कहने लगे—ज़रूर पूछ सकते हैं। देखिए, मैं छोटी उम्र में पक्का हिन्दू था—जैसे कि सब होते हैं। जब पहले पहल कालेज में गया तब मेरे साथ एक विद्यार्थी रहता था।

मुझे याद है, उसने कहा था, गङ्गा भी अन्य नदियों के ही समान है। उसमें पाप-नाश करने की कोई विशेष शक्ति नहीं है। इस पर मैंने उसे एक महीने तक नास्तिक कह कर चिढ़ाया था। इसके बाद जब मैं बी० ए० में पढ़ने लगा—जब विज्ञान की आलोचना करते करते मेरे मन का भाव बदलने लगा—तब मेरे मन में यह आशङ्का होने लगी कि हमारे ये सब देवी और देवता ऋषि-मुनियों की कविकल्पना ही तो नहीं हैं? क्रम क्रम से जितनी आलोचना करने लगा उतना ही संशय बढ़ने लगा। एक दिन मेरे छात्रावास में भोज था। लड़कों ने धोखा देकर मुझे भंग मिला हुआ पेड़ा खिला दिया था। थोड़ी ही देर में नशे से मेरा सिर घूमने लगा। उस रात को, भंग के नशे में, आँख मूँद कर मैंने न जाने कितने अद्‌भुत चित्र देखे, यह सब आपको क्या बताऊँ। दूसरे दिन तबीअत ठीक होने पर मन ही मन सोचा कि हिन्दू-पुराण के ये तैंतीस कोटि देवता ऋषि-मुनियों के स्वप्न हैं। एम० ए० में हर्बर्ट स्पेन्सर की ग्रन्थावली पढ़ कर तो मैं एकदम घोर अज्ञेयवादी हो उठा। 'पास' करके हेडमास्टरी करने लगा। जितना ही पढ़ता गया उतना ही संशय-वादी होता गया। इस तरह कई वर्ष बीतने पर मेरी—

बिचले हाल की घड़ी में टन् टन् कर बारह बज गये। घड़ी सुन कर बाबू आधे मिनट तक चुप रहे, फिर धीरे धीरे कहने लगे—

मेरी स्त्री की मृत्यु हुई। उसके शोक से मैं एकदम पागल-सा

बन गया। छः महीने हो जाने पर भी मेरा मन स्थिर नहीं हुआ। कहीं एक जगह स्थिर होकर नहीं रह सकता था। छटपटा कर समय बिताता था। बराबर घूमते ही रहने की इच्छा होती थी। तब इन्सपेक्टर साहब से कह कर यह डिपटी-इन्सपेक्टरी की नौकरी ली है। तीन ज़िलों में जितने स्कूल, पाठ-शालायें हैं उन सबको देखता फिरता हूँ। यह बँगला यहाँ का प्राइमरी स्कूल है। आज सबेरे ही यहाँ आया हूँ। कल सबेरे फिर यहाँ से दूसरी जगह जाऊँगा। बात बड़ी ही असम्बद्ध निकल आई—ख़ैर। मेरी स्त्री की मृत्यु के अनन्तर मेरे मन में होने लगा—ऐसा नहीं हो सकता कि मर जाने से ही मनुष्य का सब समाप्त हो जाता हो। ऐसा होने से तो वह फिर कभी मुझे दिखाई ही न देगी, किसी काल में भी नहीं। पर यह असम्भव है। अवश्य ही उससे फिर कभी न कभी भेंट होगी। तब मैं विश्वास करने लगा कि मेरी स्त्री आत्म-रूपिणी होकर कहीं न कहीं अवश्य है। मेरी आत्मा जब इस देह का त्याग करेगी तब फिर हम दोनों में भेंट होगी। परलोक का विश्वास जम गया, संशयवाद मिट गया। ईश्वर में भी फिर विश्वास-ज्ञान दृढ़ हुआ। तभी से मैं भगवान् का स्मरण करता हूँ। उनसे कहता हूँ—हे प्रभो, वह मेरी अर्द्धाङ्गिनी कहाँ है? उसे सुख से रक्खो जिसमें उससे फिर मेरी भेंट हो।

यह कह कर बाबू चुप हो रहे। मोती आश्चर्य से मुग्ध हो कर इस शोक-गाथा को सुन रहा था। बाबू जब वैसी ऐकान्तिक

प्रार्थना में निमग्न थे उस समय आकर मैंने व्याघात पहुँचाया, यह सोच कर उसका अनुताप और बढ़ गया।

बाबू ने चौकी से उतर कलसी से एक गिलास पानी ले कर पिया; और गिलास भर पानी लेकर बाहर जा वे आँख मुँह धो आये। रूमाल से मुँह पोंछते पोंछते कुछ प्रकृतिस्थ हो कर उन्होंने कहा—बाबा जी, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आपने कुछ भोजन किया है या नहीं, मैं यह पूछना अब तक भूल ही रहा था।

मोती ने हँसकर कहा—आप चिन्ता न करें। इस स्थान पर पहुँचने के एक घंटा पहले मैं भोजन कर आया हूँ।

"आपको बहुत थका हुआ देखता हूँ। आप इस चौकी पर सो रहिए।"

"आप कहाँ सोइएगा ?"

"बिछौने के नीचे जो शतरंजी है उसे बिछाकर मैं नीचे सोऊँगा।"

मोती ने खड़े होकर कहा—नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? मैं ही नीचे सोऊँगा, मेरे पास कम्बल है।

बाबू—नहीं, आपको नीचे कष्ट होगा। आप चौकी ही पर सोइए।

मोती—कुछ कष्ट न होगा। ये जो दोनों बेञ्चें हैं इन्हीं को जोड़ कर मैं लेट रहूँगा।

बाबू कुछ देर तक चुप रहकर बोले—यदि आप बेञ्च पर सोवें तो भी मैं नीचे ही सोऊँगा। मैं चौकी पर नहीं सोता। आपके न आने पर भी मैं, चौकी से बिछौना उतार कर, नीचे ज़मीन पर ही सोता।

मोती ने आश्चर्ययुक्त होकर कहा—चौकी पर क्यों नहीं सोते?

बाबू ने धीरे से कहा—मेरी स्त्री के शरीर के अणु-परमाणु इसी पृथिवी में मिले हैं न! इससे मैं ज़मीन पर सोना ही पसन्द करता हूँ।

मोती ने इस पर कुछ न कहकर उनका बिछौना चौकी से उतार दिया। उस चौकी पर सो कर रात के पिछले पहर मोती ने सपना देखा, मानो सुधा उसका हाथ पकड़कर कह रही है—"आओ।"

दूसरे दिन सबेरे उठकर, डिपटी इन्सपेक्टर साहब के अनुरोध से, उनके साथ बैलगाड़ी में बैठकर मोतीलाल आज़मगढ़ को रवाना हुआ।

छियालीसवाँ परिच्छेद

हरिदास सबेरे का काम करके बड़े कमरे के उसारे में बैठा बैठा तम्बाकू पी रहा था। इसी समय उसके सत्रह वर्ष के जेठे लड़के ने आकर कहा—दादा, दरवाज़े पर सिपाही बैठा है।

हरिदास ने विस्मित होकर कहा—सिपाही! सिपाही क्यों आया है?

लड़के ने उत्तर दिया—यह तो मैं नहीं जानता। मैं बाहर जाता था। उसने कहा, बाहर न जाने पावोगे। हुक्म नहीं है।

इसी समय घर की कहारिन हाँफते हाँफते आकर बोली—मालिक, गली के द्वार पर सिपाही खड़ा है।

यह सुनकर हरिदास उठ खड़ा हुआ और बोला—क्यों, सिपाही क्यों आया है?

कहारिन ने कहा—मैं बर्तन मलने के लिए तालाब के घाट पर जा रही थी। सिपाही ने रोक दिया। कहा, दारोग़ा का हुकुम है, बाहर नहीं जाने दूँगा।

तब हरिदास ने दोनों दरवाजों पर जाकर देखा, सचमुच ही लाल मुरैठेवाले दो कान्सटेबल खड़े हैं। पूछने पर उन्होंने कहा—अभी दारोग़ा साहब आते हैं। किसी को बाहर जाने का हुक्म नहीं है।

हरिदास ने पूछा—क्यों, क्या हुआ है?

"हम लोग नहीं जानते। अभी दारोग़ा साहब आने हैं—उनके आने पर मालूम होगा।"

हरिदास चिन्ताकुल हो आँगन में आ खड़ा हुआ। तब उसकी बेटी ने आकर कहा—दादा, गोशाला के पिछवाड़े की दीवार जो कुछ गिर गई है, वहाँ भी एक सिपाही है।

हरिदास ने उस ओर जाकर देखा—बात ठीक ही है। टूटी दीवार के बाहर भी एक सिपाही खड़ा है। बाहर जाने के सभी मार्ग बन्द हैं।

घर के सभी लोग इस अचिन्तनीय घटना से चिन्तित हो उठे। शीघ्र आनेवाली किसी विपत्ति की आशङ्का से सभी के मुँह पर अन्धकार छा गया।

कुछ देर बाद घोड़े पर चढ़े हुए दारोग़ा शहादतहुसेन आ पहुँचे। पीछे पीछे दो चौकीदार दौड़े आ रहे थे। एक के माथे पर लकड़ी का छोटा-सा बक्स था जिसमें दारोग़ा साहब के काग़ज़-पत्तर, दावात-क़लम आदि आवश्यक सामान था।

दारोग़ा ने सदर दर्वाज़े पर पहुँचते ही घर के मालिक को पुकारने का हुक्म दिया। दोनों चौकीदार गला फाड़-फाड़कर पुकारने लगे। हरिदास ने बाहर आकर दारोग़ा को सलाम किया। दारोग़ा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

"हरिदास।"

"यह घर तुम्हारा है?"

"जी हाँ।"

"और कोई शरीकदार है ?"

"कोई नहीं। मैं ही सोलह आने मालिक हूँ।"

"तुम्हारे घर की खाना-तलाशी होगी। औरतों को हटाओ।"

हरिदास—क्यों दारोग़ा साहब ? मेरे घर की तलाशी क्यों ली जायगी ?

"मुझे ख़बर लगी है, तुम्हारे घर में चोरी का माल है।"

इसी समय धनीराम वहाँ आ पहुँचा।

हरिदास ने कहा—चोरी का माल ! मेरे घर में ? कभी नहीं। किसने ख़बर दी है ?

दारोग़ा घोड़े से उतरकर बोला—"किसने ख़बर दी है, यह बतलाने का हुक्म पुलिस को नहीं।" एक चौकीदार ने घोड़ा पकड़ा। दूसरे चौकीदार से दारोग़ा ने कहा—महल्ले के दो-चार मातबर आदमियों को बुला लाओ।

दारोग़ा आँगन में जा करके, धनीराम को दिखा कर, बोला—इस आदमी के घर में सेंध लगी थी। माल चोरी गया है। पता लगा है, वह माल तुम्हारे घर में है। अगर अपनी भलाई चाहो तो अभी दिखा दो, वह सब चीज़ें कहाँ हैं। जो न बताओगे तो तुम्हारे घर को खोदवा डालूँगा।

यह सुनकर हरिदास के मन से भय का बोझ उतर गया। हँसकर बोला—यही बात है तो आप ख़ुशी से खाना-तलाशी कर सकते हैं। मेरे घर में किसी का कुछ माल नहीं है। यह

ख़बर ज़रूर मेरे किसी दुश्मन ने आपको दी है। (धनीराम की ओर देखकर) क्यों भैया, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है, घर कहाँ है?

दारोग़ा ने धनीराम को घुड़ककर कहा—ख़बरदार, चुप रहो। कुछ मत बोलो।

हरिदास ने कहा—न बतलावे। मेरे किस दुश्मन ने मुझ पर यह झूठी तुहमत लगाई है, यह मालूम हो ही जायगा। आज न सही, कल सही। तब मैं आप ही के पास जाकर अर्ज़ करूँगा। उसके द्वारा पग पग पर मैं इतना अपमानित किया गया, मुझे झूठ-मूठ उसने इतना हैरान किया—इसका इन्साफ़ हज़ूर को करना होगा। अच्छा, अभी आइए। मैं सन्दूक़, बक्स, पिटारी आदि सब चीज़ों की कुंजी देता हूँ। आप ख़ुशी से सब चीज़ों की तलाशी ले लीजिए।

इसी समय महल्ले के तीन चार आदमी थर-थर काँपते हुए दारोग़ा साहब के सामने आ खड़े हुए। सभी किसान हैं, अशिक्षित हैं। दारोग़ा साहब को सलाम करके वे चुपचाप खड़े रहे। दारोग़ा ने काग़ज़ क़लम निकालकर उन सबका नाम लिख लिया। फिर बोला, ख़ाना-तलाशी होगी। तुम लोग गवाह हो, साथ साथ हाज़िर रहो।

तब बूट खटखटाते हुए दारोग़ा ने हरएक कमरे की तलाशी ली। बक्स पिटारी जहाँ जो कुछ थीं, सबको खुलवा खुलवा कर

देखा। दारोग़ा ने सभी बर्तन और ज़ेवर आदि एक जगह जमा करके धनीराम से पूछा—इन सबमें तेरा कोई माल है ?

धनीराम ने हाथ जोड़ कर कहा—नहीं हज़ूर।

दारोग़ा ने अपनी छड़ी उसकी बग़ल में कोंचकर कहा—साले बिना देखे ही कहता है ! पहले सब चीज़ों को अच्छी तरह देख ले तब बोल।

धनीराम सब चीज़ें अच्छी तरह देख कर बोला—नहीं, इनमें मेरी कोई चीज़ नहीं है।

तब दारोग़ा आँगन में उतरकर चारों ओर देखने लगा। मिट्टी खोदकर गाड़ रखने का कोई चिह्न कहीं है या नहीं, यह देखने के लिए दारोग़ा ने कान्सटेबलों को हुक्म दिया। उन्होंने चारों ओर खोज डाला पर कहीं वैसा चिह्न ढूँढ़ निकालने में वे समर्थ नहीं हुए।

आँगन में धान के दो बड़े बड़े बखार थे। दारोग़ा ने हुक्म दिया—"देखो, इन दोनों के भीतर तो माल नहीं है।" सिपाहियों ने अपनी वर्दी-पेटी खोलकर दोनों बखारों से कुल धान बाहर कर डाला। किन्तु कोई माल नहीं निकला।

तब दारोग़ा ने दल-बल-सहित रसोईघर की ओर जाकर कहा—"इस घर में ज़रूर माल है।" हरिदास के हज़ार एतराज़ करने पर भी दारोग़ा घर में घुस ही गया। उसने क़रीम ख़ाँ कान्सटेबल से पुकारकर कहा—हाँड़ियाँ फोड़ डालो। देखो, उनके भीतर माल है या नहीं।

उस मुसलमान सिपाही ने लाठी से मिट्टी के बर्तनों को तोड़-फोड़ डाला। बासी भात, दाल आदि सब चीज़ें घर में छितरा गईं। उसके कुछ छींटे सिपाही की दाढ़ी और बदन पर भी जा पड़े लेकिन माल न मिला। अब दारोग़ा गोशाला के द्वार पर जाकर बोला—"यहाँ एक बोझ पयाल फैला हुआ है। इसको तो अब तक देखा ही नहीं।" आज्ञा के अनुसार कान्सटेबल लोग उस पयाल को हटाकर खोजने लगे। पयाल हटाते ही उसके भीतर से कुछ काँसे-पीतल के बर्तन निकल पड़े। यह देख धनीराम उछलकर बोल उठा—यही मेरे बर्तन हैं। कँसेरे से मरम्मत करवाई थी, देखो यह चिह्न है।

दारोग़ा ने लहमे भर तक हरिदास की ओर ग़ुस्सा-भरी नज़र से देखकर कहा—क्यों रे पाजी, अब बता? ये चीज़ें कहाँ से बरामद हुईं?

यह घटना देखकर हरिदास को काठ मार गया। कुछ देर तक उसके मुँह से बात ही नहीं निकली। आख़िर बड़े कष्ट से बोला—यह मेरे किसी दुश्मन का काम है। मुझे फँसाने के लिए कोई छिपा कर रख गया है।

व्यङ्ग के स्वर में दारोग़ा बोला—हाँ, दुश्मन का काम है! अदालत में जाकर यही जवाब देना। इसकी अक़्ल तो देखो! पयाल के भीतर छिपा रक्खा था। समझता था, पुलिस आवेगी तो सन्दूक़-पिटारी ढूँढ़ेगी, घर ढूँढ़ेगी। पयाल की ढेरी में कौन

ढूँढ़ेगा ? अरे मैं तेरह वर्ष से दारोग़ागिरी करता हूँ। मेरी ही आँखों में तू धूल डालेगा चोट्टे ?

यह सुनकर हरिदास की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वह काँपते हुए स्वर से चिल्लाकर बोला—ख़बरदार दारोग़ा साहब ! गाली मत दीजिए, ज़बान सँभाल कर बोलिए।

दारोग़ा ने कड़ी आवाज़ में कहा—छोटे मुँह बड़ी बात ? दारोग़ा के ऊपर आँखें लाल करना ? पाजी साले, हरामज़ादे ! करीम ख़ाँ, साले बेअदब को हथकड़ी डाल दो।

करीम ख़ाँ ने फ़ौरन हरिदास को एक धक्का दिया। पास ही एक अमरूद का पेड़ था, किसी तरह उसे पकड़कर हरिदास नीचे गिरने से बचा। किन्तु पेड़ की रगड़ लगने से उसकी बग़ल का चमड़ा छिल गया और उससे लहू बहने लगा। हरिदास खड़ा भी नहीं होने पाया कि दो कान्सटेबलों ने उसके दोनों हाथ मोड़ कर पीठ की ओर कसकर पकड़े और करीम ख़ाँ ने हथकड़ी डाल दी। हरिदास के घर की स्त्रियाँ और बालक कुछ दूर खड़े थे। वे यह देखकर चिल्ला उठे और रोने लगे।

दारोग़ा ख़ूब ज़ोर से धरती पर पैर पटक स्त्रियों की ओर देखकर—"चुप रहो हरामज़ादियो, नहीं तो अभी—" कहकर अश्लील गालियाँ देने लगा।

हरिदास ने चिल्लाकर कहा—"दारोग़ा, तुम बड़े नीच हो, अफ़सर के मुँह से ऐसी बोली ! फिर चिता देता हूँ, स्त्रियों को गाली मत दो। मैं कलक्टर साहब के पास जाकर

तुम पर नालिश करूँगा।" उसकी आँखों से मानो क्रोध और क्षोभ की आग निकल रही थी। रह रहकर उसकी नाक फूलने और होंठ फड़कने लगे।

दारोग़ा ने हरिदास के गाल में ख़ूब ज़ोर से थप्पड़ मारकर कहा—करीम ख़ाँ, साले के मुँह में थूक दो।

यह हुक्म तामील करने में करीम ख़ाँ इधर-उधर करने लगा। स्त्रियाँ फिर चिल्लाकर रोने लगीं।

स्त्रियों के बेइज़्ज़त होने की आशङ्का से हरिदास के दो-चार आत्मीय मोटे मोटे लट्ठ लेकर एक पेड़ की आड़ में आ खड़े हुए। दारोग़ा ने उन ग्वालों के मन का भाव समझ हुक्म दुहराने की आवश्ययकता नहीं समझी।

यह सब अत्याचार देखकर धनीराम रूँधे गले से बोला—दारोग़ा साहब—इसे छोड़ दीजिए—ये बर्तन मेरे नहीं हैं।

दारोग़ा ने आँख बदलकर कहा—क्या कहा?

धनीराम ने पूर्व की अपेक्षा दृढ़ स्वर में कहा—सरकार ये बर्तन मेरे नहीं हैं। इसे छोड़ दीजिए।

दारोग़ा गरजकर बोला—क्यों बे! तेरे नहीं हैं? तो फिर तूने पहले क्यों अपने बतलाये!

"हज़ूर मैंने झूठ कह दिया था।"

दारोग़ा ने बड़े ज़ोर से दपटकर कहा—दारोग़ा के सामने झूठा इज़हार? तो तेरा ही चालान करता हूँ। तू सात बरस के लिए जेल भेजा जायगा। करीम ख़ाँ, हथकड़ी लाओ।

यद्यपि दूसरी हथकड़ी न थी तथापि करीम ख़ाँ ने अपने थैले में हथकड़ी ढूँढ़ने के लिए झूठ-मूठ हाथ डाला।

धनीराम ने भौंह तानकर कहा—अयँ! झूठा इज़हार देने से जेल जाना होता है?

दारोग़ा ने दाँत पीसकर विकृत स्वर में कहा—नहीं—जेल क्यों जाना होगा? लड्डू खाने को मिलेंगे। करीम ख़ाँ, हथकड़ी पहना दो।

धनीराम काँपते-काँपते—हजूर, तो वह—बर्तन—मेरे ही हैं। कहकर जिधर स्त्रियाँ थीं उधर पीठ करके सिर नीचा करके खड़ा हो रहा।

दारोग़ा ने काग़ज़ क़लम निकाल कर बर्तनों की फ़र्द तैयार की। उस पर गवाहों से दस्तख़त करा लिये। धनीराम फिर कहीं यह इज़हार लौटा न ले और यह कहने न लग जाय कि ये बर्तन मेरे नहीं हैं—इसलिए उस फ़र्द के एक किनारे पर उसके हाथ के अँगूठे की भी छाप ले ली।

इतने में पड़ोस के और भी कितने ही लोग हरिदास के आँगन में आ खड़े हुए थे। देखा कि एक बूढ़ा आदमी हरिदास के बेटे के साथ खड़ा होकर फुसुर फुसुर बातें कर रहा है। इसके बाद लड़का स्त्रियों के पास जाकर चुपके से कुछ कहने लगा। दारोग़ा की दृष्टि से यह बात छिपी न रही। तेरह वर्ष की अभिज्ञता के फल से दारोग़ा समझ गया कि बात क्या है।

तब शहादतहुसेन उच्च स्वर से ठहर ठहर कर कहने

लगा—इधर तो सब ठीक हुआ। अब एक चौकीदार बर्तन बाँध ले चले। करीम ख़ाँ, असामी की कमर में रस्सी बाँधो। भोलासिंह और ज़ालिमसिंह उस रस्सी के दोनों छोर, दो ओर से, पकड़कर ले जायँ। अगर रास्ते में यह बदमाशी करे—या चलने में देरी करे—तो करीम ख़ाँ तुम इसकी पीठ में ख़ूब डण्डे जमाना। और रास्ते के किसी जङ्गल से दो चार किवाँच के पेड़ लेते आना। थाने में जाकर असामी अगर आसानी से क़सूर क़बूल न करेगा तो इसके बदन में किवाँच लगाना होगा। जल्दी करो, इसकी कमर में रस्सी बाँधो।

करीम ख़ाँ ने रस्सी निकाली। यह देखकर स्त्रियाँ फिर रोने चिल्लाने लगीं।

अब वृद्ध ने दारोग़ा के पास आकर कहा—हज़ूर, एक बार इस तरफ़ आने की तकलीफ़ करें।

हज़ूर बड़ी मिलनसारी के साथ बूढ़े के साथ साथ चले। आँगन के एक कोने में दोनों खड़े हुए। बूढ़े ने कहा—दारोग़ा साहब, कोई उपाय कर दीजिए, नहीं तो ग़रीब मारा जायगा।

"मैं क्या उपाय करूँगा ?"

"ग़रीब आदमी है, बाल-बच्चों का सहारा वही है। सब बरबाद हो जायगा। दया कीजिए। छोड़ दीजिए।"

"मैं रहम करनेवाला कौन ! मैं कैसे छोड़ूँगा ! क़ानून क्या मेरा बनाया है ? हम लोग सरकार का नमक खाते हैं। सरकार के क़ानून को जिसने नहीं माना है उसे कैसे छोड़ सकते हैं।"

"क्यों नहीं छोड़ सकते हैं—हज़ूर ग़रीब के माँ-बाप हैं। आप चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं।"

असल बात कहने में वृद्ध को संकुचित होते देख दारोगा ने अधीर होकर कहा—ये वाहियात बातें सुनने की मुझे फ़ुरसत नहीं। जो कहना हो झटपट कहो।

तब वृद्ध ने इधर-उधर देखकर कहा—दारोगा साहब, कितने में आप उसे छोड़ सकते हैं?

"बिलकुल छोड़ देना तो बड़ा मुश्किल है। अच्छा ये बातें फिर होंगी। मैं जो अभी काम की बात कहता हूँ सो सुनो। मैंने सिपाहियों को जो हुक्म दिया है उसे तो तुम अपने कानों सुन ही चुके हो। मैं बड़ा कड़ा हाकिम हूँ। जो कहा है वह सब करूगा—बल्कि ज़्यादह भले हो जाय कम नहीं। अगर अभी मुझको १००) रुपया दो तो कमर की रस्सी और हथकड़ी खुलवा दूँगा। सिर्फ़ सिपाही के साथ साथ जायगा। इक़रार कराने के लिए किवाँच लगाना, जूते से पीटना या और किसी तरह का अत्याचार नहीं करूँगा। सिर्फ़ हाजत में करा दूँगा। तुम लोग उसके साथ जा, वहाँ रहकर, रसोई बनाकर खिला सकते हो, बात-चीत कर सकते हो। सिर्फ़ इतने के लिए अभी १००) चाहिए। और बात-चीत शाम को थाने में होगी। रुपया ख़र्च करने से क्या नहीं हो सकता है?"

बूढ़ा कई दफ़े स्त्रियों के पास गया और कई दफ़े दारोगा के पास आया। आख़िर ५०) रुपये पर दारोगा को राज़ी

होना पड़ा। तीन कान्सटेबल दो दो रुपये और दो चौकीदार आठ आठ आने पाकर ही खुश हो गये। कुल ५७) रुपया पान-तम्बाकू के लिए लेकर अभियुक्त को साथ ले दारोग़ा जी थाने को रुख़सत हुए।

दूसरे दिन रौनक़लाल ने चिट्ठी में कुल हाल गोपीकान्त को लिख भेजा। अन्त में यह भी लिख दिया—हरिदास मातबर आदमी है। उसने दारोग़ा को ५००) रु० तक घूस देकर मुक्त होने की चेष्टा की थी। यह सुनकर मैंने थाने में जाकर दारोग़ा को और १००) रुपया देना क़बूल किया तब उन्होंने आज उसका ४११ दफ़ा के अनुसार चालान किया है। जो हाल होगा उसकी इत्तिला हुज़ूर को फिर दूँगा।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

दो दिन डिपटी इन्सपेक्टर के साथ रहकर मोती ने काशी जाने की इच्छा प्रकट की। डिपटी बाबू ने उसे रेल-भाड़ा देना चाहा था किन्तु उसने लेना स्वीकार नहीं किया। कहा, "मैं पैदल ही जाना चाहता हूँ।" वह काशीवाली सड़क पर धीरे धीरे जाने लगा। यह सडक सीधी नहीं है। चक्कर काट कर गई है। समय पर यथेष्ट भोजन न मिलने के कारण उसके शरीर का सामर्थ्य दिन दिन घटता गया। कल से भूखा है, नंगे पैरों चलने से पैर के तलुवे में फफोले पड़ गये हैं। घर छोड़े आज दो सप्ताह हो गये। इतनी दूर पैदल ही आया है—डिपटी साहब के साथ दो दिन तक मोतीलाल को समय पर भरपेट भोजन मिला था। तब से भरपेट भोजन नहीं मिला। कभी थोड़ा-सा दूध मिल गया, कभी कुछ फल-फूल मिल गये और कभी वह भी नहीं। यदि वह लोगों से माँग सकता तो उसकी यह दुर्दशा न होती। पर भीख माँगने में तो वह बिलकुल ही असमर्थ है। उसके कन्धे पर झोली, बाँयें हाथ में लोटा और बग़ल में वही मृगछाला है। उसकी धोती और चादर अब बहुत मैली हो गई है। सिर के बाल धूल से भर गये हैं। कमज़ोरी के मारे आँखें धँस गई हैं।

रास्ते के प्रान्तवर्ती पेड़ों की छाया में होकर मोती जा रहा

है। दिन डेढ़ पहर के क़रीब चढ़ आया है। बीच बीच में दो-चार किसान उस राह से इधर-उधर जाते-आते दिखाई देते हैं। धूप जितनी बढ़ती जा रही है, मोती की गति का वेग भी उतना ही घटता जा रहा है। और तीन-चार मील रास्ता तय करने पर वह सारनाथ पहुँचेगा। वहाँ पहुँचने पर यदि उसे कोई बिना माँगे भोजन देगा तो वह खायगा। भूखे रहने पर भी उसे किसी से भोजन माँगने का साहस नहीं होता। चलते चलते प्यास के मारे उसका कण्ठ सूख गया है तो भी वह धीरे धीरे चल रहा है। और कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे रास्ते में एक पक्का पुल मिला। अधिक थकावट मालूम होने से मोती उसी पुल पर बैठ गया। पहले मन में सोचा था, पाँच मिनट सुस्ताकर फिर चलूँगा किन्तु पन्द्रह बीस मिनट हो जाने पर भी उठने को जी नहीं चाहता था। एँड़ी एक जगह फट गई थी, देखा तो उससे लहू बह रहा है।

वह बैठे बैठे सोचने लगा, मालूम होता है कि अब ग्यारह का समय होगा। अगर घर पर होता तो दासी आकर कहती—"छोटे बाबू, रसोई हो गई भोजन करने चलिए।" आसन पर जाकर बैठता और भरपेट षट्रस भोजन करता। कुछ देर तक इसी तरह आकाश-पाताल की बातें सोच रहा था। इसी समय मानो किसी ने कान में कहा—"हाय रे अन्न! हाय रे मोती!" तब वह चौंक उठा। अपनी दुर्बलता पर लज्जित होकर और अपने ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह वहाँ से उठ खड़ा हुआ। फिर पैर घसीट घसीट कर चलने लगा।

दोपहर से बेर ढल गई। सारनाथ का मन्दिर देख पड़ता है। एक मील से भी कम होगा। दो एक पक्के मकान भी नज़र आते हैं। प्यास से वह इतना व्याकुल हो गया है कि उसे एक पग भी चलना कठिन हो गया है। समीप ही एक बड़ा-सा पक्का कुआँ था। रास्ते से उतरकर मोती कुएँ की ओर गया। वहाँ जाकर देखा तो वह एक खँडहर था। मिट्टी के टूटे-फूटे घड़े वहाँ पड़े थे। जगह जगह पर आग जलने के चिह्न भी विद्यमान थे। बाँस के खम्भों पर एक छपरी पड़ी थी। उसी के नीचे मोती जा बैठा। कुछ सुस्ताकर पानी पियेगा।

बैठकर वह भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा। उसमें सबसे मुख्य अन्न की चिन्ता थी। यह चिन्ता किसी भी तरह दूर होनेवाली न थी। सारनाथ पहुँचने पर उसका क्षुधा से सूखा हुआ मुँह देखकर क्या कोई कुछ खाने को न देगा? हाय! कलावन्नगतः प्राणः—संसारी जीव का अन्न बिना नहीं चल सकता।

मोती की आज अभी तक नित्य-पूजा भी नहीं हुई है। झोली और कम्बल आदि उस छपरी के भीतर रखकर मोतीलाल ने कुएँ पर स्नान किया। नहा-धोकर भजन-पूजन करके वह जल-पान करेगा—खाने को कोई भी वस्तु उसके पास न थी।

भजन-पूजन करके उसने कुछ पानी पिया और भीगे कपड़े को सूखने के लिए फैला दिया। फिर मृग-छाला बिछाकर

वह उसी छपरी के नीचे आ बैठा और झोली से वेदान्त-रामायण निकालकर दसवाँ सर्ग पढ़ने लगा। पढ़ते पढ़ते यह श्लोक निकला—

संन्यासमाश्रयति यो हि विनैव कर्म-
योगं स चेह लभते खलु दुःखमेव।
यः कर्मयोगमनुतिष्ठति वा मुनिः सन्
स ब्रह्म विन्दति परं न चिरेण मर्त्यः॥

जो कर्मयोग को त्याग कर संन्यास धारण करता है वह यहाँ दुःख ही पाता है। जो मननशील होकर कर्मयोग का अनुष्ठान करता है वह मनुष्य शीघ्र ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

यह बात नहीं कि मोतीलाल ने यह श्लोक पहले न पढ़ा हो किन्तु इस श्लोक का विलक्षण भाव उसे अभी सूझ पड़ा। पुस्तक बन्द करके वह सोचने लगा—मैंने जिस जीवन-वृत्ति का अवलम्बन किया है वह बिलकुल कर्मशून्य है इसलिए दुःख ही मेरे हाथ लगेगा। सो भी केवल अन्न-कष्ट या शारीरिक कष्ट ही नहीं है, किन्तु मैं जिस शास्त्रचर्चा या भगवद्-भजन को निर्विघ्न-पूर्वक करने की इच्छा से घर छोड़कर आया हूँ उसका इस दो सप्ताह के भीतर कितना क्या कर सका हूँ? घर में रहकर मैं दो दिन में जो कर सकता वह इस दो सप्ताह में भी नहीं कर सका। मेरा शरीर जैसे दिन-दिन सूखता जा रहा है वैसे ही मानो मेरी मानसिक शक्ति भी क्रमशः शिथिल होती जा रही है।

मोतीलाल फिर पोथी खोलकर पाठ करने लगा। किन्तु भावार्थ अच्छी तरह से हृदय में नहीं जमा। भूख से देह अवसन्न थी। सिर चकरा रहा था। बैठे रहने में भी कष्ट मालूम होने लगा। तब वह उसी मृगछाले पर लेट गया। लेटते ही नींद आगई।

नींद में वह भाँति भाँति के पदार्थ खाने का स्वप्न देखने लगा। उसने विचित्र स्थानों में अद्भुत भोजन करना देखा। इस तरह दो घंटे बीत गये।

नींद टूटने पर मोती ने आँख खोलकर देखा तो सूर्यदेव पच्छिम आकाश में ढुल पड़े हैं। बैठकर वह स्वप्न की बातें सोचने लगा। एक लम्बी साँस लेकर वह मन्दस्वर में यह सवैया पढ़ने लगा—

जब दाँत न थे तब दूध दियो जब दाँत भये तब अन्न न दैहै।
जो जल में थल में पसु पच्छि न की सुधि लेत सो तेरिहु लैहै॥
काहे को सोच करे मन मूरख सोच किये कछु हाथ न ऐहै।
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहुको दैहै॥

मोतीलाल की आँखों से आँसू बह चले। वह कुछ देर तक आँसू-भरी दृष्टि से उस खँडहर की ओर देखने लगा। इसके बाद आँखें पोंछकर सोचने लगा—ईसाइयों की प्रार्थना है—Give us this day our daily ~~bread~~—हे प्रभो! आज हमारा दैनिक भोजन दो।—ईसाइयों की इस प्रार्थना को

पहले मैं तुच्छ समझता था। प्रभु से भक्ति या मुक्ति न माँग कर यह क्या माँगा जाता है, "प्रभो मुझे रोटी दो।" उनकी इस माँग पर मैं हँसता था। किन्तु आज अच्छी तरह समझता हूँ कि भोजन ईश्वर का कितना बड़ा दान है, अन्न ही से आनन्द है। अन्न बिना गति नहीं। अन्न ही जीवों के लिए सर्वप्रधान सर्वप्रथम प्रार्थनीय पदार्थ है।

मोतीलाल अपनी चीज़ वस्तु लेकर धीरे धीरे सारनाथ की ओर चला। एक मील रास्ता चलने में उसे एक घण्टा लगा। दूर से जो सफ़ेद मकान देख पड़े थे वे रईसों के वाटिका-भवन थे। वे अभी बन्द हैं। मोतीलाल जितना ही आगे बढ़ने लगा उतने ही अधिक लोग उसे मिलने लगे। कोई कोई उसे प्रणाम भी करने लगा।

जब सूर्य पश्चिम में पेड़ों की आड़ में जा छिपा तब मोतीलाल का सिर भूख से घूमने लगा। आँखों के सामने अन्धकार छा गया। ऐसा मालूम हुआ कि अब वह मूर्छित होकर गिर पड़ेगा। समीप ही सड़क के पास एक मकान का सुन्दर बरामदा था। वह उसी बरामदे में जा बैठा, परन्तु देर तक बैठा नहीं रह सका। बेहोश होकर वहीं लेट गया।

इसके कई मिनट बाद मकान के भीतर से एक पन्द्रह सोलह वर्ष का और दूसरा अट्ठारह वर्ष का लड़का काला कोट पहिने, हाथ में बाइसिकिल लिये, बाहर आया। मोती को उस अवस्था में पड़ा देख बाइसिकिल छोड़ दोनों उसके पास गये।

देखा कि आगन्तुक की आँखें बन्द हैं, साँस चल रही है पर है वह चैतन्यरहित। इस असमय में एक संन्यासी का इस तरह सड़क के पास बरामदे में आकर सो रहना उन दोनों लड़कों को आश्चर्यकारक जान पड़ा। वे दोनों शङ्कित भाव से एक दूसरे का मुँह देखने लगे। एक ने कहा—"अभी तक इसकी बेहोशी नहीं गई है।" दूसरे लड़के ने कहा—"शायद इसे कोई बीमारी हो गई है। बाबू जी को ख़बर दो।" एक आदमी रास्ते से जा रहा था। उसने उच्च स्वर से हँसकर कहा—"गाँजे की मात्रा अधिक हो गई है, उसी की लहर है।" किन्तु उस बात पर ध्यान न देकर एक लड़का अपने बाप को बुला लाया।

उसने आकर मोती की नाड़ी देखी। छाती पर हाथ रक्खा। फिर कहा—नहीं, कोई बीमारी नहीं है किन्तु नाड़ी बहुत ही क्षीण है। मालूम होता है, भूख से इसकी ऐसी दशा हुई है। फिर वह मोतीलाल की छाती पर हाथ रखकर परीक्षा करने लगा। इस बार मोती ने आँख खोलकर उसकी ओर देखा।

गृहपति रामलाल ने पूछा—तुम कौन हो?

क्षीण स्वर में उत्तर मिला—संन्यासी।

"तुम्हें क्या हुआ है?"

कुछ उत्तर नहीं मिला। बाबू ने फिर पूछा—तुम कुछ खाओगे?

उसी खिन्न स्वर में उत्तर मिला—हाँ।

"कितने दिन से कुछ नहीं खाया है ?"

"दो दिन से।"

"समझ गया" कहकर रामलाल दोनों पुत्रों की सहायता से मोती को उठाकर कमरे के भीतर ले गये। भीतर दवाओं से सजा हुई कई आलमारियाँ थीं। यह छोटा-सा औषधालय था। उक्त बाबू यहाँ के डाक्टर हैं।

मोती को एक आराम-कुरसी पर लिटाकर उन्होंने पौष्टिक दवा में थोड़ा-सा गरम पानी मिलाकर उसे पाँच-छः चम्मच पिला दिया। मोती असमर्थता के कारण कुरसी पर लेटा हुआ था। अब इस पथ्य-सेवन से दो मिनट बाद वह कुछ सीधा होकर बैठ गया। डाक्टर ने फिर नाड़ी देखकर पूछा—कैसे हो?

"अच्छा हूँ।"

बाबू ने पूछा—थोड़ा दूध पिओगे ?

"पिऊँगा।"

आध पाव दूध गरम करके लाने के लिए नौकर को हुक्म देकर डाक्टर बाबू ने मोती से "तब तक यह थोड़ी-सी बची हुई दवा पी डालो" कहकर बाक़ी दवा उसको पिला दी।

डाक्टर ने पूछा—बैठने में तकलीफ़ मालूम होती है? लेटोगे ?

"जी हाँ, लेटूँगा।"

"आओ" कहकर डाक्टर बाबू उसका हाथ पकड़कर

बग़लवाली कोठरी में ले गये। वहाँ चौकी पर बिछौना और उसके ऊपर एक साफ़ चादर बिछी थी। तकिया भी रक्खा था। मोती को लिटाकर वे पास ही एक कुरसी पर बैठ गये।

मोती—आज आपने मेरे प्राण बचाये।

डाक्टर—तो दो दिन से कुछ नहीं खाया था?

"कुछ नहीं, परसों सन्ध्या-समय थोड़ा-सा दूध और एक पेड़ा खाया था।"

डाक्टर बाबू मोती के मुँह की ओर आधे मिनट तक देख-कर सड़क की ओर देखने लगे और मन में सोचने लगे—आश्चर्य है। हम लोग अपने को हिन्दू सनातनधर्मी कहकर बड़ी बड़ी डींगें हाँकते हैं। किन्तु इतनी बड़ी बस्ती में एक संन्यासी बिना अन्न के मरा जा रहा था। हम लोग व्याख्यान देने के समय हिन्दू और मुट्ठी भर भीख देने के समय साहब बन जाते हैं।

मोती—किसी का दोष नहीं। मैंने किसी से माँगा ही नहीं।

बाबू ने मोती की ओर देखकर कहा—"माँगने पर ही क्या अतिथि को भोजन देना चाहिए?" इसी समय दूध आगया। मोतीलाल दूध पीकर और भी स्वस्थ हुआ।

डाक्टर बाबू—आधे घंटे के बाद फिर थोड़ा-सा दूध पीजिएगा। इसके बाद दो घंटे तक कुछ नहीं। रात को थोड़ा-सा भात और मछली का झोल खाने के लिए दूँगा।

"मैं मांस-मछली नहीं खाता।"

बाबू ने हँसकर कहा—तो कोई हर्ज नहीं। अरवा चावल का भात, गाय के घी में भुनी हुई तरकारी और परवल का झोल तो खाइएगा। आज मैं आपको कहीं भी नहीं जाने दूँगा। रात को यहीं रहना। कल भोजन करके जहाँ जाना हो, चले जाना।

मोती की आँखों से मानो कृतज्ञता का भाव उमड़ पड़ा।

रात को भोजन करके मोती बड़ी देर तक जागता रहा। अब उसके मन में और ही तरह का भाव उदित हुआ। जिस मार्ग पर मोती चल रहा है वह उसके लिए सुखकर नहीं है। किसी समय वह अवश्य सोचता था कि संसार-बन्धन तोड़ने के लिए संन्यासी हुए बिना साधन-भजन में विघ्न होता है—आत्म-चिन्तन के लिए पूरा समय नहीं मिलता। किन्तु इस दो सप्ताह की अभिज्ञता से वह अच्छी तरह जान गया है कि यह उसका भ्रम है। घर में रहकर वह जिस प्रमाण से साधन, भजन और शास्त्र-चिन्तन कर सकता है गृहत्यागी होने पर उसका शतांश भी नहीं कर सकता। जब से उसने घर छोड़ा है तब से अन्न-चिन्ता और आश्रय-चिन्ता ही उसके मन पर अधिकार जमाये हुए है।

इन दो सप्ताहों की, प्रतिदिन की, समस्त घटनाओं को वह एक एक कर सोचने लगा। आधी रात के समय उपासना-लीन डिपटी इन्सपेक्टर की वह शान्तमूर्ति याद हो आई। उन्होंने

कहा था—"गृहस्थ का मन क्या स्थिर रहता है ?" किन्तु गृहत्यागी मोतीलाल क्या एक दिन भी उसकी भाँति उपासना कर सका है ? सोचा, वह सज्जन यदि अपनी पत्नी के प्रति इतना गहरा प्रेम नहीं रखता तो क्या वह इस तरह एकाग्र-मन से ईश्वर का स्मरण कर सकता ? वह तो नास्तिक था ही, प्रेम ने उसके हृदय को आस्तिकता की ओर झुका कर उच्च भगवद्भक्ति का पात्र बना दिया है। इस विचार के साथ साथ उस रात का सपना—सुधा उसका हाथ पकड़कर कह रही है—"आओ" भी याद आया। बलदेव बाबू के घर, पीछे के बरामदे में बैठकर, तीन बजे रात से सूर्योदय तक भगवान् की प्रार्थना की थी—इसके पूर्व तो एकाग्रभाव से मोतीलाल ने कभी भगवान् को इस तरह नहीं पुकारा था। इन बातों की आलोचना करके मोतीलाल ने निश्चय किया—संसार-बन्धन में रहकर ही ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो सकता है। फिर उसके मन में आया कि ईश्वर की इस प्रकार की उपासना सकाम उपासना है। यह तो श्रेष्ठ उपासना नहीं है। फिर सोचा, बिलकुल उपासना न करने की अपेक्षा सकाम उपासना भी अच्छी ही है। जिस प्रदेश की नदी में गँदला जल बह रहा है वह प्रदेश मरुभूमि से तो अवश्य ही अच्छा है। इसलिए मोतीलाल ने स्थिर किया कि संन्यास धारण करने का संकल्प त्याग कर मैं कल घर को लौट जाऊँगा। किन्तु जाऊँगा कैसे ? राह-खर्च तो पास है ही नहीं।

अब डिसपेन्सरी की घड़ी में एक बजा। मोतीलाल ने

सोचा कि राह-ख़र्च नहीं है तो क्या हुआ, ईश्वर कोई उपाय कर ही देगा। इस तरह सोचते-सोचते वह सो गया।

दूसरे दिन सबेरे मोतीलाल उठकर औषधालय में बैठा था। अकस्मात् वहाँ एक सहपाठी से उसकी भेंट हो गई। यह सहपाठी सारनाथ की सैर करने आया था। उससे कुछ रुपया उधार लेकर गृहस्थोपयोगी पोशाक से फिर सुसज्जित हो, साँझ की गाड़ी से, मोतीलाल कमलपुर को रवाना हुआ।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। आज रौनक़लाल को कमलपुर जाना होगा और रात में बक्स खोलकर बसन्ती को दिखलाना होगा कि काली माई की कृपा से रुपया चौगुना हो गया।

सबेरे उठकर रौनक़ ने दफ़्तर के काम में मन लगाया। कुछ देर बाद चौकीदार ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी दी। चिट्ठी खोलकर रौनक़ ने देखा, दारोग़ा ने उसे बुला भेजा है—ज़रूरी काम है।

रौनक़ तुरन्त दफ़्तर बन्द करके घोड़े पर सवार हो थाने को गया। दारोगा शहादतहुसेन चौकी पर बैठा, टीन का बक्स आगे रक्खे, काग़ज़-पत्तर देखते देखते हुक्का पी रहा था। रौनक़ को देखकर बोला—आइए मुंशी जी, बैठिए, बन्दगी।

रौनक़ ने बैठकर कहा—बेमौक़े क्यों याद किया गया हूँ?

"कहता हूँ—तम्बाकू पिओ।" कहकर दारोग़ा एक रद्दी लिफ़ाफ़ा और चिलम रौनक़ के हाथ में देकर फिर काग़ज़-पत्तर देखने लगा।

लिफ़ाफ़े के काग़ज में चिलम लपेटकर रौनक़ तम्बाकू पीने लगा।

पाँच मिनट के बाद दारोग़ा ने काग़ज़ की ओर से दृष्टि

हटाकर सिर उठाया। रौनक़ ने हुक्के पर चिलम रख दी। दारोग़ा ने कहा—नरसों हरिदास के मुक़दमे की तारीख़ है।

रौनक़—गवाह तो सब ठीक हैं ?

"ठीक की क्या बात पूछते हो ? मुद्दई का ही पता नहीं है।"

रौनक़ अचम्भे के साथ बोला—पता नहीं है ! कैसे ?

"गवाहों को सिखा पढ़ा कर तो मैंने सब ठीक कर लिया है। कल धनीराम को बुलाने के लिए दो दफ़े आदमी भेजा था। आदमी ने लौटकर कहा—वह घर पर नहीं है। कहाँ गया है यह भी घर का कोई शख़्स नहीं कह सकता। आज तड़के चौकीदार को फिर भेजा था, तुम्हारे नाम की चिट्ठी भी उसी को दी थी। कह दिया था, धनीराम से भेंट न हो तो यह चिट्ठी मुंशी जी को देना। वह पैदल आ रहा है, इसी से अभी तक नहीं पहुँचा। तुमको चिट्ठी दी है इससे जान पड़ता है आज भी धनीराम से भेंट नहीं हुई। साला भाग तो नहीं गया।"

रौनक़ ने उत्तेजित स्वर में कहा—भेंट नहीं हुई ! यह आप क्या कहते हैं। आज तड़के मैंने अपनी आँखों उसे तालाब के घाट पर देखा है। साला ज़रूर ही घर में छिपा है। हरामज़ादा कहीं जाने का बहाना करके घर में ही छिपा बैठा है।

दारोग़ा—यही तो तरद्दुद की बात है।

"क्यों, तरद्दुद क्या! मेरे साथ दो कान्सटेबल दीजिए। मैं अभी जाकर उसे पकड़वा देता हूँ।"

"मान लिया कि आप पकड़वा देंगे। लेकिन बिगड़े हुए मुद्दई को लेकर क्या मुक़दमा चल सकता है?"

"हरिदास ने उसे अपनी मुट्ठी में तो नहीं कर लिया है!"

"दो-चार कश तम्बाकू पीकर दारोग़ा ने कहा—नहीं, ऐसा तो मालूम नहीं होता। जिस दिन मैंने ख़ानातलाशी ली थी उसी दिन से वह कुछ बेदिल-सा मालूम होता है। उस दिन जब वे बर्तन पयाल के भीतर से निकले तब मैंने हरिदास को कुछ डाँट-डपट दिखाई थी; और कुछ नहीं सिर्फ़ गाली देकर एक थप्पड़ मारा था। इतने ही में वह बोल उठा—दारोग़ा साहब इसे छोड़ दीजिए, ये बर्तन मेरे नहीं हैं। मैंने २११ दफ़ा की धमकी दी और कहा, झूठा मुक़दमा चलाने के क़सूर में तुझी को जेल भिजवा दूँगा। तब साला रास्ते पर आया। इसी से कहता हूँ कि अदालत में जाकर वह मूजी कहीं सब बात बिगाड़ न दे।"

रौनक़—बिगाड़ देगा! उसकी मजाल क्या। अगर ऐसा करेगा तो जूते से पीट कर उसकी खाल खींच लूँगा।"

"यह कुछ करना न होगा। उसी घड़ी उस शैतान पर अदालत से, झूठी नालिश दायर करने के अपराध में, २११ दफ़ा की रू से कार्रवाई की जायगी। अभी उससे मीठी मीठी बातें करके किसी तरह काम निकालना ही अच्छा है।"

रौनक़ कुछ देर तक चुप रहकर बोला—तो इजाज़त दीजिए, अब जाता हूँ। मैं उसे अच्छी तरह समझा बुझा कर अभी भेजे देता हूँ।

देवीपुर आकर रौनक़लाल स्वयं धनीराम के मकान पर गया। बहुत पुकारने पर धनीराम का बेटा बाहर आकर बोला—दादा आज सबेरे ही उठकर कहीं गये हैं। कहाँ गये हैं, और कब आवेंगे, यह कुछ नहीं कह गये।

रौनक़ ने सोचा, धनीराम अवश्य ही घर के भीतर कहीं छिपा है। इसी से वह आँगन में जाकर उच्च स्वर से कहने लगा—

"धनीराम घर पर नहीं है तो क्या, उसकी जोरू तो है, उसी से कहता हूँ। सुनो, धनीराम का ऐसे वक़्त में घर से जाना बड़ा ख़राब हुआ है। नरसों मुक़दमे की तारीख़ है। आज़मगढ़ जाना ज़रूरी है। धनीराम मुद्दई है। मुझसे पूछे बिना आज क्यों चला गया? कब सीखे-पढ़ेगा? मुक़दमे की बहुत बातें उसको समझानी हैं। वकील की जिरह में बड़े बड़े होशियार गवाह—अच्छी तरह तालीम न पाने पर—अदालत में ठहरते ही नहीं। कुछ का कुछ कह देते हैं। धनीराम किस लेखे में है। कहाँ गया, कब आवेगा, यह भी नहीं कह गया। ऐसा मूर्ख तो देखा नहीं। कल खा-पीकर बारह या एक बजे यहाँ से चलेगा तभी तो ठीक समय पर आज़मगढ़ पहुँचेगा। तारीख़ पर हाज़िर न होने से हाकिम उसी घड़ी उसके नाम से वारंट जारी करने का हुक्म देगा। सदर से सिपाही

जमादार आकर हाथ में हथकड़ी डाल मारते पीटते यहाँ से घसीट कर ले जायँगे। सरकार के हुक्म को न मानना क्या सहज बात है? वारंट जारी होने पर भी अगर अदालत में हाज़िर न होगा तो पुलिस हल, बैल, थाली, लोटा सब ज़ब्त कर लेगी और धनीराम के बदले तुम्हीं को इज़हार देना होगा। कहीं गया है इसकी चिन्ता नहीं, लेकिन परसों शाम तक उसे आज़मगढ़ पहुँच जाना चाहिए। अगर वह अपना पता बता गया हो तो झट आदमी भेजकर उसे बुला लो। गवाही देने में उसे डर किस बात का है? क्या संसार में कभी कोई गवाही नहीं देता? वही पहले पहल देगा? जज मजिस्टर बाघ नहीं है जो उसे निगल जायगा। जो हो, घर आते ही उसको धूल-भरे पैरों मेरे पास भेज देना, नहीं तो तुम लोगों पर बड़ी आफ़त आयगी। भारी मुसीबत में फँसोगी।"

यह कहकर रौनक़ दफ़्तर में लौट आया। उसके मन में विश्वास था कि धनीराम ने छिपे छिपे मेरी सब बातें सुनी होंगी। डर से आप ही कुछ देर बाद दफ़्तर में आवेगा और कहेगा, मैं अभी अमुक स्थान से घर आया हूँ।

भोजन करके रौनक़ ने कुछ देर आराम किया, किन्तु धनीराम के आने की प्रतीक्षा में उसे नींद न आई। दिन को पिछले पहर बैलगाड़ी में बैठकर वह कमलपुर को रवाना हुआ। दफ़्तर में कह गया—धनीराम आवे तो तुरंत एक आदमी के साथ उसे दारोग़ा के पास भेज देना।

साँझ होने के पहले ही रौनक़लाल की गाड़ी कमलपुर पहुँची। तालाब के कोने पर पहुँचते ही रौनक़ ने देखा—बसन्ती पानी का घड़ा बग़ल में दबाये आ रही है। आँखों ही आँखों में दोनों की बातें हो गईं।

घर के भीतर जाकर रौनक़ ने गाड़ीवान से घर, आँगन बुहरवाकर साफ़ करवा लिया। तालाब से दो घड़े पानी मँगवा कर रख लिया। गाड़ीवान ने तब जलपान के लिए पैसा लेकर गाड़ी वहीं खड़ी कर दी। दोनों बैलों की रास अपने हाथ में ले किसी रिश्तेदार के घर वह रात को मेहमानी करने गया। रौनक़ ने कह दिया, कल सबेरे ही फिर देवीपुर जाना होगा।

रात के नौ बज गये। देवीपुर से पूरी तरकारी आदि खाने की जो सामग्री साथ रख ली थी उसी से रात की क्षुधा शान्त करके रौनक़ पान चबाता हुआ हाथ में हुक्का लेकर बैठा। थोड़ी ही देर में सदर दरवाज़े की ज़ंजीर झनझना उठी।

रौनक़ ने जाकर द्वार खोल दिया। बोला—बसन्ती, आओ।

भीतर आकर दर्वाज़ा बन्द करके बसन्ती बोली—आपकी कैसी बुद्धि है। दर्वाज़ा खुला रखना चाहिए था। ज़ंजीर खट-खटानी पड़ी। अगर कोई सुन लेता तो?

रौनक़—क्या मैं जानता था कि तुम इतनी सबेरे आओगी। मैं सोचता था कि तुम दस बजे के पहले न आ सकोगी। आज इतनी जल्दी तुम छुट्टी कैसे पा गईं?

उसारे में आकर बसन्ती बोली—मुझे तो आजकल आठों पहर छुट्टी ही छुट्टी रहती है। मालकिन यहाँ नहीं हैं।

"कहाँ गई हैं ?"

"तीरथ करने।"

"कब ?"

"कल रात को। क्या आपने नहीं सुना ? बाबू बहुत बीमार हैं। प्रयागराज से तार आया था। बहू जी को साथ ले कर छोटे बाबू इलाहाबाद गये हैं।"

"कुछ सुना है, बड़े बाबू को किस तरह की बीमारी हुई है ?"

"ज्वर आता है।"

"छोटे बाबू कहीं गये थे न। वे कब आगये ?"

"कल सवेरे ही आये थे। दोपहर को तार आया। इससे रात ही को फिर रवाना हो गये।"

"यह तो बड़े शोच की बात सुनी है।"

"शोच की तो बात ही है। भगवान् की कृपा से बाबू साहब शीघ्र अच्छे होकर देश लौट आवें। कल से घर भर के लोग मारे शोच के छटपटा रहे हैं। सभी बेचैन हैं।"

बात सचमुच बड़ी शोचनीय है।—कहकर रौनक़ कुछ देर तक नीचा सिर करके चुप हो रहा। उसकी चिन्ता बसन्ती की चिन्ता से और ही तरह की थी। उसे भय हो रहा है कि उसने मोती बाबू के ख़िलाफ़ जो, झूठे मुक़दमे की, बात बना कर

बाबू से कही है वह कहीं खुल न जाय। भगवान् जो करेंगे, वही होगा। अब तक़दीर जिस रास्ते ले चले।

कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर रौनक़ ने कहा—बसन्ती, तुम कपड़े बदल कर शुद्ध हो आई हो?

"हाँ। क्या अभी सन्दूक़ खोला जायगा?"

"बैठो, दस बजने दो। कुछ गहरी रात हुए बिना काली जी की योगिनियाँ बाहर नहीं निकलतीं। आओ, तब तक हम लोग समय नष्ट न करके थोड़ा थोड़ा चरणामृत पान करें। अगर आज काली माई ने मेरे मुँह की लाज रख ली तो और क्या चाहिए? ब्याह करके हम तुम दोनों रुपयों की गद्दी पर बैठे रहेंगे। मैं कपड़े बदल कर चरणामृत लिये आता हूँ।"

सोने की कोठरी में जाकर रौनक़ ने वह लाल धोती पहन ली। इसके बाद वह एक बोतल में से आधा तरल पदार्थ ताँबे के बर्तन में ढाल कर उसमें कनेर का फूल डाल बाहर आया। कुशासन पर बैठकर उसने कहा—बसन्ती जाओ तो, घर के भीतर नहाने की चौकी पर से पत्थर के दो कटोरे ले आओ।

बसन्ती ने एक कूँड़ी आप ली और एक रौनक़ को देकर कहा—यह चरणामृत कहाँ पाया?

ताम्रपात्र की ओर भक्तिपूर्ण दृष्टि से देखकर रौनक़ ने कहा—"यह बहुत दूर से आया है। कामरूप कामाख्या से एक साधु लाया था। उसी ने मुझको थोड़ा-सा दिया है।" अब

रौनक़ ने अपनी कूँड़ी भर ली और बसन्ती की कूँड़ी आधी भर दी।

अपनी कूँड़ी ख़ाली करके रौनक़ ने कहा—जय काली मैया कहकर तुम भी पी डालो।

बसन्ती कूँड़ी को मुँह के पास ले जाकर बोली—ओ मैया! बदबू आती है।

रौनक़—चुप चुप, पगली! कोई ऐसा कहता है। दुर्गन्ध नहीं—सुगन्ध, सुगन्ध। कामाख्या देवी की प्रतिमा के नीचे एक कुण्ड है—उसी कुण्ड में चरणामृत भरा रहता है। उस कुण्ड में ढेरों फूल और बेलपत्र गिरते रहते हैं। फूल और बेलपत्रों के सड़ने से इसमें ऐसी सुगन्ध आती है। बाँयें हाथ से नाक मूँद कर दहिने हाथ से कूँड़ी पकड़ गट से पी जाओ।

बसन्ती ने रौनक़ के उपदेशानुसार पीकर कूँड़ी नीचे रख दी।

वह नाक मुँह सिकोड़ कर बोली—माई री माई! कैसी सुगन्ध है! छिः छिः, राम राम!

रौनक़ ने फिर अपनी कूँड़ी में सुरा ढाल कर कहा—यह क्या? "छिः छिः राम राम" क्या कहती हो? जानती हो किसका चरणामृत है? साक्षात् कामरूप कामाख्या देवी का। तुमने छिः छिः कहा है इससे जीभ गल कर गिर पड़ेगी। इनसे बढ़कर साक्षात् काली इस कलि में और कहाँ हैं? यह कह कर वह एक ही दम में कूँड़ी का चरणामृत सोख गया। इसके बाद धोती के अग्रभाग को गले में लपेट दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते

करते बोला—हे मा, कामरूप कामाख्या भगवती ! बसन्ती के अपराध पर ध्यान न देना। यह बड़ी भोली भाली है, अज्ञान है। इसकी बात को ग्रहण न करना। माफ़ करो मा। दुहाई मा।

रौनक़ का यह आचरण देखकर बसन्ती कुछ भय और कुछ आश्चर्य से हतज्ञान हो बैठी रही।

कुछ देर के बाद रौनक़ ने अपनी कूँड़ी फिर चरणामृत से भरी और बसन्ती की कूँड़ी को भी बारह आने भर दिया।

बसन्ती ने कहा—अब नहीं, मैं अब न पी सकूँगी।

रौनक़—पी लो, नहीं पिओगी तो अपराध होगा। पहली बार पीने में तुमने नाक-भौं सिकोड़ी है, छिः छिः कहा है, इससे तुमको बड़ा भारी पाप हुआ है। क्या जानें रुपया चौगुना होने के बदले कहीं बिलकुल न उड़ जाय। फिर तो ब्याह भी मज़े में होगा और हम लोग बड़े आदमी भी ख़ूब बनेंगे। पिओ, पीकर कहो—अहा ! मैया का चरणामृत पीने से हृदय शीतल हुआ।

तब बसन्ती आँख मूँदकर किसी तरह उसे घोंट कर बोली—आहा ! मैया का चरणामृत पीने से हृदय शीतल हुआ। अच्छा कहिए, कुछ तेज़ है न ?

रौनक़ ने अपनी कूँड़ी ख़ाली करके कहा—हाँ है।

"इतना तेज़ क्यों है ?"

रौनक़ ने हँसकर कहा—मा कामाख्या का चरणामृत तेज़ न होगा तो क्या आदमी के हाथ से बनाई गई काली का

चरणामृत तेज होगा ? जिसे तुम तेज कहती हो वह असल में मा काली की शक्ति है—ब्रह्म-तेज है।

बसन्ती—खूब तेज है। मेरा सिर घूमने लगा।

"घूमेगा नहीं ? कामरूप कामाख्या देवी सब देवताओं में प्रत्यक्ष देवता हैं। उनके बाद कालीघाट, कलकत्ते, की काली हैं। क्या तुम कभी कालीघाट गई हो ? जो लोग पुरी जाते हैं वे रास्ते में काली माई का दर्शन भी करते जाते हैं।"

"नहीं।" बसन्ती की दोनों आँखें चढ़ गईं। साँस प्रबल हो उठी।

रौनक़ ने बड़े भाव से कहा—अच्छा, पहले हमारा ब्याह हो जाय तब तुमको कालीघाट की काली और कामाख्या भगवती, सबका दर्शन करा लाऊँगा।

बसन्ती—हमारा-ब्या-ह-क-ब-होगा ?

बसन्ती की जीभ लड़खड़ाते देखकर रौनक़ समझ गया कि दवा असर कर गई। वह मुस्कुराकर झट बोला—यदि भगवती की दया हुई तो ब्याह हुआ ही समझो। उसकी चिन्ता ही क्या है। अगर आज मेरे वह पचास रुपये दो सौ हो गये तो एक महीने के बाद ही ब्याह हो जायगा। आज अगहन सुदी नवमी है। यह महीना एक तरह से बीत ही गया। पूस में हिन्दुओं का ब्याह हो ही नहीं सकता। माघ आते ही यह शुभ कर्म हो जायगा।

बसन्ती—फ-फ-फिर क-कलकत्ते जा-जा ना-ना हो-होगा ? का-काली घा-घाट की क-काली जी का दर्शन मुझको क-कराओगे ?

"हाँ, दर्शन ज़रूर कराऊँगा। काली जी दिखाऊँगा, चिड़ियाख़ाना दिखाऊँगा, जादूघर दिखाऊँगा, एक दिन थियेटर दिखलाने को भी ले जाऊँगा।" यह कहकर रौनक़ ने फिर अपने लिए एक प्याला ढाला। यह देखकर बसन्ती ने कहा—थो-थोड़ा मुझे भी, मुझे भी दो।

रौनक़—नहीं, तुमको अब पीने की ज़रूरत नहीं है। तुम औरत हो। अधिक ब्रह्म-तेज सहन न कर सकोगी।

बसन्ती—थोड़ा-थो-ड़ा।

रौनक़ ने हँसकर उसकी कूँडी में थोड़ा-सा ढाल दिया। बसन्ती उसे पीकर ऊपर मुँह करके बोली—माई का च-चरणामृत पीकर हृदय-हृदय-शीतल हु-हुआ।

अब रौनक़ अपने ब्याह और भावी सुख-संभोग का चित्र बड़ी ख़ूबी से खींचने लगा।—अब नौकरी न करनी पड़ेगी। मन्त्रबल से रुपया बढ़ा बढ़ा कर बड़े सुख से समय बितावेंगे। आज़मगढ़ और काशी में मकान बनवावेंगे। रौनक़ ने कहा—दोमंज़िला। बसन्ती बोली—तेमंज़िला न होगा तो मैं न मानूँगी। इसी तरह बात-चीत होते होते दस बज गये।

रौनक़ ने कहा—अब देरी करने का काम नहीं। चौका लगाकर आसन बिछाओ और धूप जला दो।

बसन्ती लड़खड़ाती हुई उठी और उसी तरह हिल डुल कर उसने सब काम किया।

तब रौनक़ ने लकड़ी का सन्दूक़ लाकर कहा—ओहो, बड़ा भारी मालूम होता है।

"देखूँ" कहकर बसन्ती ने बक्स अपने हाथ में लेकर दो तीन बार हिलाया। भीतर रुपये झनझना उठे।

रौनक़ ने आसन पर बैठकर बक्स को सामने रख लाल डोरे से जहाँ बँधा था वहाँ हाथ लगाया और एक सौ आठ बार मन्त्र जपा। फिर बोला—बसन्ती, अब बक्स को खोलो।

आँचल के खूँट से कुंजी निकाल कर बसन्ती ने ताला खोला। रौनक़ रुपया गिन गिनकर थाक लगाने लगा। अन्त में हिसाब लगाया तो ठीक दो सौ आठ रुपये हुए। रौनक़ आनन्द से पुलकित हो दोनों हाथ जोड़कर बोला—माँ काली, इस दास के ऊपर सदा ऐसी ही दया रखना।

रौनक़ ने बसन्ती को उसके आठ रुपये गिनकर दे दिये। बाक़ी भीतर जाकर वह सन्दूक़ में रख आया। लौट कर कहा—एक दौने की जड़ तो उखाड़ लाओ। महीने के तीस रुपये मिले थे। पन्द्रह रुपये ख़र्च हो गये हैं, पन्द्रह मौजूद हैं। पहले के दस हुई हैं। पचीस रुपये फिर रखता हूँ। एक सौ तो होंगे। कुल तीन सौ होने से हमारा तुम्हारा ब्याह ख़ूब धूमधाम से हो सकेगा।

लालटेन लेकर रौनक़ बसन्ती के साथ साथ आँगन में

गया। पूर्वोक्त विधि से दौने की जड़ उखाड़ी गई। रौनक़ के २५) रुपये बक्स में रखने पर बसन्ती ने कहा—मेरे भी कुछ रुपये न रख दोगे ?

"क्यों न रख दूँगा ? जाओ, जल्दी ले आओ।"

"कुछ साथ ही लाई हूँ।"

कुछ का नाम सुनकर रौनक़ का मन छोटा हो गया। बोला—अच्छा, जो लाई हो वही दो।

बसन्ती ने कमर से एक थैली निकाल कर पचास रुपये बक्स के भीतर रखकर कहा—मेरे भी दो सौ रुपये होंगे।

"अवश्य ही—अपनी आँख से तो अभी देख चुकी हो।" कह कर रौनक़ बक्स बन्द करने लगा।

बसन्ती ने कहा—ठहरो, ठहरो। और कुछ दें तो क्या नहीं होगा ?

रौनक़ कुछ आश्वस्त होकर बोला—होगा क्यों नहीं। तुम्हारी इच्छा हो तो और रख दो। जितना ही रक्खोगी उतना ही अधिक पाओगी।

"पहले सोचा था, पहली दफ़े पचास रुपया रखकर ही देखती हूँ। किन्तु पारख तो हो ही गई है, देरी करने से क्या होगा। और भी एक सौ"—कह कर बसन्ती ने फिर कमर से एक बड़ी थैली निकाल कर रुपये उँडेल दिये। रौनक़ ने रुपये गिनकर बक्स में भरे और ताला बन्द करना चाहा।

बसन्ती बोली—ठहरो, ठहरो। अभी मत बन्द करो। अच्छा, एक बात पूछती हूँ। एक नोट रख दूँ तो चार नोट होंगे न ?

रौनक़ मन ही मन ख़ूब प्रसन्न होकर बोला—ज़रूर होंगे। माँ काली के हुक्म से क्या नहीं हो सकता। नोट की क्या बात कहती हो, अगर एक फूटा खपरा रख दो तो वैसे ही चार हो जायँगे।

तब बसन्ती ने आँचल की गिरह खोलकर कुछ नोट रौनक़ के हाथ में दिये। रौनक़ ने गिनकर देखा तो दस दस रुपये के दस नोट थे। बसन्ती ने कहा—डेढ़ सौ और एक सौ—ढाई सौ हुए। मेरे एक हज़ार रुपये तो बेखटके होंगे।

"होंगे नहीं तो जायँगे कहाँ ? अब बक्स बन्द करता हूँ।"

"बन्द कर दो।"

"देखो, ख़ूब सोच-विचार लो। और कुछ रखना हो तो रक्खो।"

"अब तो यहाँ कुछ नहीं है।"

"गिन्नी वग़ैरह ?"

"नहीं। फिर दूसरी बार देखा जायगा।"

रौनक़ ने बक्स बन्द करके पूर्वोक्त रीति से सब काम किया। जब सब हो चुका तब बसन्ती ने कहा—रात बहुत हुई। अब जाती हूँ। अब फिर कब आओगे ?

"एक महीने के बाद फिर कृष्ण चतुर्दशी की रात को तो आना ही होगा। बीच में भी दो एक बार आ सकता हूँ।"

"देखो अच्छी तरह मन्त्र जपना। मुझे हज़ार रुपये मिलने चाहिएँ।"—कहकर बसन्ती चली गई।

रौनक़ ने भीतर से द्वार में साँकल देकर एक कटोरा चरणामृत पान किया। बिछौने पर लेटकर अपने मन में हँसते हँसते बोला—एकदम ढाई सौ रुपया हाथ लगा। रौनक़ के इन दिनों बृहस्पति की दशा बीत रही है। कोई अच्छा ज्योतिषी मिल जाय तो उससे पूछूँगा कि यह मेरी दशा और कितने दिन रहेगी।

उनचासवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू प्रयागराज पहुँचकर धर्मपालसिंह के ही मकान में ठहरे। शहर के बाहर एक बड़ा-सा दोमंज़िला मकान है। मकान के चारों ओर, तीन बीघे के घेरे में, नाना प्रकार के फल-फूलों के पेड़ लगे हैं। स्थान अत्यन्त रमणीय है। गोपीकान्त को यह जगह बहुत ही पसन्द हुई।

पहले कई दिन सबेरे और शाम को गोपीकान्त और धर्मपालसिंह, दोनों साथ ही साथ, घूमने जाते थे और दो तीन घण्टे तक इधर-उधर घूम फिर कर लौट आते थे। धर्मपालसिंह के अभिमान-रहित सद्व्यवहार से गोपीकान्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। पाँच छः दिन के बाद गोपीकान्त ने कहा—चलिए महाशय, आज सबेरे सबेरे घूमकर एक मकान ठीक कर लें।

धर्मपाल—मकान! कैसा मकान?

गोपी बाबू ने हँसकर कहा—आपको और कब तक कष्ट दूँगा!

"मुझे तो कुछ भी कष्ट नहीं। आपके साथ बड़े आनन्द से समय बिता रहा हूँ। यह क्यों नहीं कहते कि यहाँ रहने से आपको तकलीफ़ होती है?"

"नहीं, मुझे तो कुछ तकलीफ़ नहीं है।"

"क्या यह बात आप हृदय से कहते हैं, या शिष्टता के

अनुरोध से ? देखिए, मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ। जो मेरे मन में है वही आपके निकट प्रकट करता हूँ। अगर यहाँ रहने में आपको किसी तरह की असुविधा होती हो तो कृपा करके कहिए—हम उस असुविधा को दूर करने की यथासाध्य चेष्टा करेंगे। यदि हमसे आपके कष्ट का निवारण न हो सकेगा तो हम स्वयं उद्यत होकर आपके लिए अलग एक मकान ठीक कर देंगे।"

गोपीकान्त—नहीं, मैंने हृदय की ही बात आप से कही है। यहाँ मुझे तिलमात्र भी कष्ट नहीं होता। आप लोग सम्बन्धी से भी बढ़कर मेरी खातिर करते हैं। मैं समझता हूँ, मेरे रहने से आप लोगों को अवश्य कुछ कष्ट होता होगा।

धर्मपाल—इसके लिए आप निश्चिन्त रहें। आपसे हम लोगों को कष्ट होने की तो कोई बात ही नहीं बल्कि आपके रहने से मुझे बहुत भरोसा रहता है। मामा ने ठीक ही कहा था, 'विदेश में बाल-बच्चों को लेकर जाता है' यदि मैं बीमार पड़ूँ तो मेरी स्त्री बड़ी मुश्किल में पड़ जायगी।

गोपीकान्त ने हँसकर कहा—इसका मुझे सुभीता है। स्त्री के न रहने से मुश्किल में पड़नेवाला यहाँ कोई नहीं।

धर्मपालसिंह कुछ देर तक गोपी बाबू के मुँह की ओर देखकर बोले—क्या आप स्त्री-हीन हैं ?

"नहीं तो।" गोपी बाबू और कुछ न बोले। धर्मपाल ने भी इस विषय में और कुछ न पूछा। इन्होंने इस बात पर लक्ष्य

किया है कि घर की बात या आत्मीय स्वजनों का प्रसंग छिड़ते ही गोपी बाबू चुप हो रहते हैं। इसी कारण, वे इस विषय में गोपीकान्त से कुछ नहीं पूछते। वे गोपी बाबू को मिर्ज़ापुर के गोपीलाल ही समझते थे। इसके अतिरिक्त गोपी बाबू के विषय में उन्हें और कुछ ज्ञात न था।

दूसरी जगह असबाब ले जाने का फिर कोई प्रसङ्ग नहीं उठा। दस दिन बीतने पर ग्यारहवें दिन गोपी बाबू को एकाएक ज्वर चढ़ आया। मामूली बुख़ार जानकर पहले दिन चिकित्सा आदि की कोई व्यवस्था नहीं की गई।

दूसरे दिन ज्वर का वेग बहुत बढ़ गया। स्थानीय डाक्टर का इलाज शुरू किया गया। उसने कहा—यह मैलेरिया बुख़ार के सिवा और कुछ नहीं है।

इसके दूसरे दिन डाक्टर के रोग-निर्णय में भूल निकली। ज्वर बिगड़ गया। गोपी बाबू की संज्ञा जाती रही। वे अचेत हो पड़े।

धर्मपाल और उनकी स्त्री दोनों, मिलकर, यथासाध्य रोगी की सेवा करने लगे। डाक्टर बाबू रोगी की बुरी हालत देखकर डर गये। बोले—लक्षण अच्छे नहीं हैं। इनके घरवालों को आने के लिए तार दे दीजिए।

धर्मपाल बाबू बड़ी चिन्ता में पड़े। उन्हें कुछ भी ज्ञात न था कि रोगी के घरवाले कौन हैं और कहाँ हैं। इस अवस्था में यदि विदेश में रोगी की मृत्यु हो जाय तो बड़े ही परिताप का

विषय होगा। वे आशा करने लगे कि यदि रोगी को दिन में एक बार भी होश हो जाय तो घरवालों का नाम ठिकाना पूछ लें।

किन्तु ऐसा सुयोग न मिला। साँझ हो चली। रोगी की अवस्था उत्तरोत्तर मन्द ही होती गई। धर्मपालसिंह की स्त्री सावित्री बाल-बच्चों के ही पीछे हैरान रहती थी, रोगी के पास देर तक बैठने के लिए उसे अवसर नहीं मिलता था। अकेले धर्मपालसिंह रोगी की सेवा में बराबर मुस्तैद रहने के कारण क्लान्त होगये। अवस्था देखकर उनकी स्त्री ने कहा—इनका टीन का बक्स खोलकर देखिए न, उसमें चिट्ठी-पत्री ज़रूर होगी। उसी से इनके घरवालों का नाम और ठिकाना मिल जायगा।

धर्मपालसिंह ने संकोच के साथ कहा—क्या यह उचित होगा?

सावित्री—इस विपत्ति के समय उचित-अनुचित का इतना सूक्ष्म विचार करने से काम कैसे चलेगा? ईश्वर न करें, यदि कुछ भला-बुरा हुआ तो इनके बन्धु-बान्धव बहुत करके यही कहेंगे कि इन (हम) लोगों ने इनकी यथेष्ट सेवा नहीं की—अच्छी तरह इलाज नहीं कराया, इसी से ऐसा हुआ। आप बक्स खोलकर देखिए। इसमें कुछ अन्याय न होगा।

तब धर्मपाल ने स्त्री की ही युक्ति ग्रहण की। खोजते खोजते गोपी बाबू के कोट की जेब में बक्स की कुंजी मिल गई। बक्स खोलने पर भीतर पाँच पत्र मिले। घर में यथेष्ट प्रकाश न रहने

के कारण वे उन चिट्ठियों को पढ़ने के लिए बाहर बरामदे में जा बैठे।

उनमें जो चिट्ठी सबसे छोटी जान पड़ी पहले उसी को खोला। सोचा कि यदि इसी में प्रयोजनीय बात मिल गई तो दूसरी चिट्ठी खोलने की ज़रूरत ही क्या है।

यह मिर्ज़ापुर में पाई हुई पहली चिट्ठी है। इसे पढ़कर धर्मपाल ने समझा कि यह कमलपुर से आई है, और ये वहाँ के ज़मींदार हैं। हरिदास थाने में रपट करने गया था—वहाँ कृतकार्य न होने पर आज़मगढ़ में मैजिस्ट्रेट के पास नालिश करने गया है। इससे ज्ञात हुआ कि कमलपुर आज़मगढ़ ज़िले में है। स्त्री के ही सम्बन्ध का कोई मुक़दमा है। "आज़मगढ़ से वारंट जारी होने की सम्भावना है—इसलिए अभी हुज़ूर को देश में आने की आवश्यकता नहीं।" संभव है, इसी वारंट के भय से ये फ़रार हों।

चिट्ठी के नीचे लिखा है—सेवक रौनक़लाल। हरिदास मुद्दई है। कौन हरिदास? मेरी रैयत हलीमपुर का वही हरिदास तो नहीं? वह भी तो आज़मगढ़ ज़िले में अपने मामा के घर रहता है। रौनक़लाल!—वही जालिया रौनक़लाल तो नहीं?

धर्मपाल ने कुछ निश्चय न कर सकने पर एक और चिट्ठी खोली। इसमें पुलिस के द्वारा हरिदास के गिरफ़्तार होने का हाल रौनक़लाल के हाथ का लिखा है। इस पत्र को पढ़कर

धर्मपालसिंह समझ गये कि रौनक़लाल ने षड्यन्त्र करके, पुलिस को घूस दे, झूठा मुक़दमा खड़ा कर हरिदास का चालान करवाया है। यह वही हरिदास है और रौनक़लाल भी वही है—उनके मन में यह धारणा पक्की हो गई। यह बात भी याद आ गई कि हरिदास ने कहा था कि 'मैं लाला जी की ज़मींदारी में जा बसा हूँ।' पर यह तो ख़ासे वैष्णव हैं, शायद इन्होंने अपना नाम और भेष बदल डाला है। इस पत्र में भी पूरा पता न पाकर इस दफ़े उन्होंने लम्बी चिट्ठी खोली।

चिट्ठी पढ़ते पढ़ते अँधेरा हो गया। नौकर पास में एक छोटी-सी टेबल रख कर उस पर लालटेन रख गया। इस चिट्ठी को दो बार पढ़कर धर्मपाल बाबू ने सब वृत्तान्त जान लिया। आवश्यक पता भी मिल गया। फिर शेष दोनों पत्र भी पढ़ लिये। रौनक़लाल ने झूठे मुक़दमे में हरिदास को फँसाया है, यह जानकर क्रोध से उनका जी जल उठा। रौनक़ ने वैर की कसर निकालने ही के अभिप्राय से यह काम किया है, इसमें कुछ भी सन्देह न रहा। धर्मपाल ने सोचा, वह ग़रीब द्रव्याभाव से अपने मुक़दमे की पैरवी भी अच्छी तरह नहीं कर सकेगा। निर्दोष होने पर भी बेचारा क़ैद हो जायगा। उसके उद्धार का उपाय धर्मपाल बाबू मन ही मन सोचने लगे।

रौनक़लाल की आख़िरी चिट्ठी पढ़कर उन्होंने जाना कि हरिदास के मुक़दमे की तारीख़ पूस बदी २ मुक़र्रर हुई है। आज अगहन सुदी १४ है। इसके भीतर ही कोई उपाय करेंगे—

यह निश्चय करके वे भीतर गये और तुरन्त मोतीलाल के नाम से अर्जेन्ट तार दिया—

"आपके भाई सख्त बीमार हैं, शीघ्र आइए।

धर्मपालसिंह

लाल कोठी, इलाहाबाद।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दो दिन बाद साँझ होने के कुछ पहले मोतीलाल अपनी भावज के साथ इलाहाबाद स्टेशन पर रेलगाड़ी से उतरे। दोनों दिन भर के भूखे थे। उस पर घोर दुश्चिन्ता अलग सताये हुए थी। दोनों के मुँह सूख गये हैं। साथ में एक नौकर और नौकरनी है। कुली पर असबाब लादकर फाटक के बाहर आते ही पण्डों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। गाँव, नाम, ज़िला, जाति, दादा-परदादा का नाम इत्यादि दर्जनों प्रश्न होने लगे। पण्डे का नाम पूछा जाने लगा। बड़ी मुशकिल से मोतीलाल ने उन लोगों से अपना पिण्ड छुड़ाकर घोड़ागाड़ी की और गाड़ीवान से कहा लाल कोठी चलो—

गाड़ी चलने पर मनोरमा ने कहा—"छोटे बाबू।" इसके आगे वह कुछ न बोल सकी। उसका गला भर आया।

"क्या है भाभी?"

"तार में क्या लिखा था?"

मनोरमा इसके पहले भी यही बात दो तीन बार पूछ चुकी है। मोतीलाल ने उत्तर भी दिया है। और समय होता तो

शायद मोती इससे नाराज़ हो उठता किन्तु इस समय की अवस्था को समझकर उसने फिर स्नेह-भरे स्वर से तार का आशय कह सुनाया।

मनोरमा ने कहा—कैसी बीमारी है, कुछ समझ में नहीं आया। आप क्या अनुमान करते हैं ?

"मैं कैसे कहूँ। अब तो अधिक विलम्ब नहीं है—अभी मालूम हो जायगा।"

दो मिनट बाद मनोरमा रोकर बोली—छोटे बाबू, उन्हें देख तो सकूँगी ?

मोती ने कहा—देखें ईश्वर क्या करते हैं। वे जो करेंगे वही होगा।

मनोरमा काँपते हुए करुणकण्ठ से बोली—मैं रास्ते भर सत्यनारायण जी से प्रार्थना करती आई हूँ, रास्ते भर गोहराती आई हूँ। क्या वे मेरे मुँह का पानी न रक्खेंगे !

मोतीलाल के नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। वह भी एकाग्र मन से भगवान् के चरणों में इसलिए प्रार्थना करने लगा जिसमें भाई को अच्छी हालत में देखे।

बीस बाईस मिनट के बाद गाड़ी एकाएक फाटक पर जा खड़ी हुई। मोतीलाल ने झाँककर देखा कि बागीचे के बीच में एक लाल रङ्ग की कोठी है। गाड़ीवान ने दरवाज़ा खोल कर कहा—बाबू, यही लाल कोठी है।

गाड़ी से उतर, फाटक खोल कर, मोतीलाल भीतर गया। सामने के बरामदे में एक नौकर बत्ती जला रहा था। उससे पूछा—बाबू धर्मपालसिंह यहीं रहते हैं ?

यह सुनकर धर्मपाल बाबू ने कमरे से निकल कर पूछा—आप कहाँ से आ रहे हैं ?

"कमलपुर से। मेरा नाम मोतीलाल है।"

"अच्छा ! आइए मोती बाबू। मैंने ही आपको तार दिया था।"

"भैया कैसे हैं ?"

"और दिन से आज कुछ अच्छे हैं।"

"क्या शिकायत है ?"

"ज्वर आता है। गाड़ी में और कौन है ?"

"मेरी भाभी।"

धर्मपाल—अरे बैजू, गाड़ीवान से कह दे कि भीतर लाकर अन्दर के दरवाजे पर गाड़ी लगावे।

बैजू कहने गया। पीछे पीछे मोतीलाल ने भी जाकर अपनी भाभी से कहा—भैया आज कुछ अच्छे हैं। कोई डर नहीं।

लौटकर मोतीलाल ने पूछा—भैया कहाँ हैं ?

"आइए"—कहकर धर्मपाल मोतीलाल को एक कमरे के भीतर ले गये। देखा तो गोपी बाबू सोये हैं। चारपाई के पास ही कुरसी पर मोतीलाल जा बैठा। धर्मपाल बाबू पैरों की

आहट बचा कर बाहर हो गये। उसी थोड़े शब्द से गोपी बाबू आँख खोलकर बोले—कौन है ?

"भैया मैं हूँ मोती; अब आप कैसे हैं"—कहकर मोतीलाल खड़ा हो गया। भाई के पैर छूकर उसने प्रणाम किया।

"अच्छा हूँ। और कौन आया है ?"

"भाभी आई हैं।"

"कहाँ है ?"

इसी समय मनोरमा ने दूसरे द्वार से कमरे में आकर स्वामी के पैरों पर अपना सिर रक्खा। उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। मोती बाहर चला गया।

तब मनोरमा चारपाई के नीचे बैठकर स्वामी के पैरों पर हाथ फेरते फेरते बोली—अब कैसी तबीअत है ?

"अच्छा हूँ। तुमको देखते ही मेरी आधी बीमारी जाती रही।" गोपी बाबू की आँखों में भी आँसू भर आये।

पचासवाँ परिच्छेद

एक सप्ताह के बाद गोपी बाबू को पथ्य दिया गया। मोती-लाल को घर का कुल भार सौंप कर, उसी दिन, तीन बजे की ट्रेन से धर्मपालसिंह किसी काम से बनारस गये। एक सप्ताह में वे वहाँ से लौटे।

सबेरे चाय पीने के अनन्तर गोपी बाबू और धर्मपालसिंह, सामने के बरामदे में, आरामकुरसी पर बैठे थे। गोपी बाबू हुक़ा पी रहे थे और धर्मपालसिंह अपने परोक्ष में आई हुई एक सप्ताह की डाक खोलकर देख रहे थे। मनोरमा के साथ मोती-लाल त्रिवेणी नहाने और वेणीमाधव के दर्शन करने गया था।

धर्मपाल बाबू जब डाक देख चुके तब गोपी बाबू ने कहा—बाबू साहब, मेरी बीमारी के समय आपने जो उपकार किया है उसे मैं इस जन्म में न भूल सकूँगा। आप न रहते तो मैं विदेश में अनाथ की तरह बेमौत की मौत मर जाता।

धर्मपाल बाबू को विनय-सूचक प्रतिवाद करते देख गोपी बाबू ने रोककर कहा—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कहें। आपने जैसी मेरी सेवा-शुश्रूषा की है वैसी मेरा भाई कर सकता या नहीं, इसमें सन्देह है। बहू जी ने जो कुछ किया है उससे यही जान पड़ता है कि वे मेरी पूर्वजन्म की माँ थीं। किन्तु बाबू साहब, एक बात मेरे मन में बहुत खटक रही है। मैंने

आप लोगेां को अपना नाम गोपीलाल बतलाया था और मैंने यह कुछ भी जाहिर नहीं किया था कि मैं कौन हूँ, मेरा घर कहाँ है तथा मेरे कहाँ कौन हैं। फिर आपने यह सब कैसे जाना? जब से मोती आया है तभी से मैं इसी उधेड़-बुन में हूँ। बात खुल जाने की लज्जा से, और एकान्त में बात करने का अवसर न पाने के कारण, मैंने यह बात अब तक आप से न पूछी थी।

धर्मपालसिंह बाग़ीचे की ओर देखकर मुस्कुराने लगे। फिर बोले—गोपी बाबू, इस चर्चा को छेड़ने की इच्छा मुझे भी कई बार हुई थी, किन्तु मैं भी संकोचवश पूछ न सका था। मुझसे एक भारी अपराध हो गया है। उसके लिए मैं आपके निकट क्षमाप्रार्थी हूँ।

गोपीकान्त ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा—बतलाइए, क्या हुआ है?

तब धर्मपालसिंह ने गोपी बाबू की उस समय की अचेत अवस्था और अपनी घबराहट का वर्णन करके बतला दिया कि किस तरह, निरुपाय होकर, बक्स से चिट्ठी निकाल कर पढ़ी थी। फिर कहा—उन चिट्ठियों के पढ़ने ही से आपका असली नाम, पता और आपके भाई का नाम मालूम हो गया, तथा इस बात का भी भेद खुल गया कि आप किस कारण से अपना नाम बदल कर तीर्थाटन करने के बहाने घूमते

फिरते हैं। और यह भी ज्ञात हो गया कि आप एक शातिर बदमाश के पञ्जे में फँस गये हैं।

गोपी बाबू ने पूछा—कैसे ?

"यह जो आपका रौनक़लाल है—यह बड़ा भयानक मनुष्य है। पहले यह मेरे ही यहाँ नौकर था। पता लगाने पर मुझे रत्ती रत्ती हाल मालूम हो गया है कि आपके यहाँ यह किस मतलब से नौकरी करने गया है और आपके साथ उसने क्या क्या दग़ाबाज़ी की है।

गोपीकान्त आरामकुरसी पर तनकर बैठ गये और दम साधकर बोले—कहिए मामला क्या है ?

धर्मपालसिंह ने रौनक़लाल का पूर्व वृत्तान्त और हरिदास पर उसने जो अत्याचार किया था वह सब समाचार सुनाकर कहा—

"आपकी चिट्ठी पढ़कर ही मैं समझ गया था कि हरिदास को झूठे मुक़दमे में फँसाने का जो कारण रौनक़लाल ने आपको लिखा है वह बिलकुल झूठ है। असल में अपने शत्रु को दबाने के लिए ही उसने यह काम किया है। जिस दिन मैंने मोती बाबू को तार दिया उसके दूसरे ही दिन मैंने आज़मगढ़ के एक ज़मींदार—अपने पुराने मित्र—बाबू महेन्द्रसिंह को रजिस्टरी करके १००) भेज दिये और लिखा कि पूस बदी २ को हरिदास के नाम पर ४११ दफ़ा का मुक़दमा पेश होनेवाला है। वह मेरी पुरानी रिआया है। उसकी तरफ़ से

किसी अच्छे वकील-मुख़्तार को नियुक्त कर देना जिसमें मुक़दमा ख़राब न होने पावे। मैं भी अवकाश पाते ही वहाँ पहुँचूँगा। जब उस चिट्ठी का उत्तर मिला तब मोती बाबू यहाँ आ चुके थे। उक्त तारीख़ को मुद्दई हाज़िर न हुआ, इससे उस पर वारंट जारी हुआ है। १२ तारीख़ को मुक़दमा फिर पेश होगा। आपको जिस दिन पथ्य दिया गया उस दिन जो मैं काशी गया था, वह आज़मगढ़ जाने ही की नीयत से। पेशी के दिन भी मुक़दमा पेश नहीं हुआ। धनीराम मुद्दई हाज़िर हुआ था किन्तु उस दिन डिपटी मैजिस्ट्रेट की तबीअत ठीक न रहने के कारण मुक़दमा फिर मुलतवी रहा। अब २२ वीं तारीख़ को मुक़दमा फिर पेश होगा। महेन्द्र बाबू के मकान पर मैं चार दिन तक रहा। कुछ स्वयं, कुछ गुप्तचरों के द्वारा, बहुत-सी बातों का पता लगा लाया हूँ। बख़ूबी मालूम हो गया है कि सिर्फ़ रौनक़-लाल की बदमाशी से आपने नाहक़ इतनी तकलीफ़ झेली है—आपके बहुत रुपये भी उसने ठग लिये हैं।"

गोपी बाबू आश्चर्य से विह्वल होकर बोले—आपको क्या मालूम हुआ है?

"आपको रौनक़लाल ने लिखा था, हरिदास लीलावती को लेकर आज़मगढ़ में आप पर नालिश करने गया था। कुलदीप-लाल को मुख़्तार करके उसने मुक़दमा भी दायर किया था, लेकिन वह डिसमिस हो गया।"

"हाँ लिखा तो था।"

"पर कुलदीपलाल नाम का कोई मुख़तार तो आज़मगढ़ में हुई नहीं। पहले भी उस नाम का कोई मुख़तार वहाँ न था। न आज़मगढ़ में ही है और न उस ज़िले की किसी भी तहसील में। गत तीन महीने के भीतर लीलावती नाम की किसी औरत ने, किसी शख़्स के ऊपर, नालिश भी दायर नहीं की है। जब नालिश ही नहीं हुई तब फिर डिसमिस काहे की? मेरे मुख़तार ने मैजिस्ट्रेट की नालिशों का रजिस्टर (काज़-लिस्ट) अच्छी तरह देखकर यह बात मुझसे कही थी।"

गोपी बाबू ने त्रस्त होकर कहा—मुख़तार से आपने क्या कहा था?

"धर्मपालसिंह ने हँसकर कहा—डरने की कोई बात नहीं। मैंने आपका नाम नहीं लिया था और न यही बताया था कि मुक़दमा कैसा है। मैंने इस सम्बन्ध में जो कुछ जाना है वह बड़े कौशल से। किसी को भी आपके नाम या घटना का पता नहीं दिया। मुख़तार से सिर्फ़ इतना ही कहा था—लिस्ट में जाकर देख तो आइए, इन तीन महीनों के भीतर लीलावती नाम की किसी औरत ने किसी के नाम नालिश दायर की है या नहीं? यदि की है तो वह किस दफ़ा का मुक़दमा है और उसका फ़ैसला क्या हुआ है?"

यह सुनकर गोपी बाबू आश्वस्त हुए। बोले—और किन किन बातों का पता लगाया है?

"रौनक़ ने आपसे कहा है कि हरिदास और आपके भाई

मोतीलाल, दोनों मिलकर उस स्त्री को बाग़ीचेवाले मकान से भगा ले गये—यह बात भी सरासर झूठ है। हरिदास ने मेरे पैर छूकर शपथ खाई है, धनीराम से किसी भी रिश्ते में उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक़दमे के पूर्व वह उसे जानता भी न था, लीलावती का नाम तक उसने कभी नहीं सुना।"

गोपी बाबू ने कहा—इसी से तो मैं सोच रहा था कि हरिदास यदि धनीराम का इतना बड़ा मित्र है—नातेदार है—तो फिर धनीराम ही हरिदास के ऊपर झूठा मुक़दमा चलाने को राज़ी क्योंकर हुआ ? रौनक़ ने लिखा है—धनीराम को दो सौ रुपये देकर अपने क़ाबू में करके थाने में उससे रपट कराई है।

धर्मपालसिंह ने हँसकर कहा—वह दो सौ रुपये रौनक़-लाल के ही पेट में समा गये। इसको घूस दी, उसको घूस दी, कह कर उसने क्या कम रुपया आपका खाया है। हाँ, क्या कह रहा था। हरिदास ने कहा, एक वकील के बेटे बाबू राम-कुमार ने दिवाली के कुछ दिन पूर्व, उसके हाथ मोती बाबू के पास एक चिट्ठी भेजी थी और ज़बानी भी कहला भेजा था कि काली-पूजा के दिन आज़मगढ़ में हिन्दू-सभा होगी, उस दिन मोती बाबू को अवश्य साथ लिये आना। आपके घर जाकर उसने वह चिट्ठी मोती बाबू को दी थी—और दूसरे दिन साँझ को फिर चिट्ठी का जवाब लेने गया था। दिवाली के एक दिन पहले वह आज़मगढ़ को रवाना हुआ। उसी दिन साँझ को उसने राम-कुमार बाबू को मोती के हाथ की लिखी चिट्ठी दी। यह बात

रामकुमार जी ने मुझसे स्वयं कही है। काली-पूजा के दिन सबेरे मोतीलाल वहाँ आ पहुँचे। उससे मिलने को हरिदास आठ बजे रामकुमार बाबू के घर गया था। यह भी रामकुमार बाबू ने कहा। रात को आजमगढ़ से कमलपुर जाकर लीलावती को छुड़ाना और फिर सबेरे वहीं लौट आना उसके लिए क्या सम्भव है?

गोपी बाबू—बिलकुल असम्भव है।

"और भी देखिए—रौनक ने लिखा था, दिवाली के दूसरे दिन बड़े तड़के उसने थाने में जाकर देखा कि हरिदास उस औरत को लेकर रपट करने के लिए बड़ के पेड़ के नीचे खड़ा है—यह बात भी कल्पित है। क्योंकि रामकुमार बाबू ने कहा—और उनके पिता वकील साहब ने भी कहा—दिवाली के बाद भी दो तीन दिन तक हरिदास उन्हीं के मकान पर था।

गोपी बाबू गाल पर हाथ रखकर हतबुद्धि हो चार पाँच मिनट तक कुछ न बोले। तब धर्मपालसिंह समाचारपत्र के पन्ने उलटने लगे। अन्त में गोपीकान्त ने कहा—उस स्त्री का क्या हुआ, इसकी भी कुछ खबर लगी?

"मैंने एक जासूस को, भेद लेने के लिए, देवीपुर भेजा था। उसने आकर कहा—गाँववाले कहते हैं कि धनीराम की छोटी बहू लीलावती रूठकर बाप के घर चली गई थी। दो तीन महीने में दिवाली के दिन वहाँ से आई है।"

यह सुनकर गोपी बाबू मन ही मन बहुत खुश हुए। सोचा—

जो हो, मैं बदनामी से तो बचा। लोगों में मेरी बदनामी नहीं हुई। किन्तु लीलावती किस तरह भागी, और उसने अपनी बात लोगों में ज़ाहिर क्यों नहीं की, यह एक कठिन समस्या मन में उलझ पड़ी। बहुत सोच विचार कर उन्होंने स्थिर किया—अपनी कार्य-सिद्धि के लिए रौनक़ ही उसे किसी उपाय से निकाल लाया होगा—और अपनी इज्ज़त बचाने के विचार से उस औरत ने सच्ची बातें लोगों से न कही होंगी।

कुछ देर बाद गोपी बाबू ने कहा—हरिदास के मुक़दमे की क्या हालत है?

धर्मपाल—हालत कुछ बुरी नहीं है। हरिदास की जिस गोशाला में पयाल के नीचे बर्तन निकले हैं उस घर की दीवार कुछ टूटी-सी है। बाहर का कोई आदमी सहज ही वहाँ जा कर बर्तन छिपा सकता है। मैंने वकीलों से राय ली है, उन्होंने कहा है कि इस कारण से हरिदास का बेलाग छूट जाना संभव है। फिर भी कौन जानता है क्या हो? फ़ौजदारी मुक़दमा है। आख़िरी फ़ैसला क्या होगा, यह अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। सुना है, धनीराम भी झूठा इज़हार देना नहीं चाहता। झूठी गवाही देने ही के डर से वह पहली बार भाग गया था, पेशी पर हाज़िर न हुआ था। मेरी राय तो यह है कि उसके ऊपर कुछ दबाव डालकर उससे सच सच बातें कहलाई जायँ। इससे हरिदास साफ़ बच जायगा और रौनक़-लाल फ़ौजदारी सुपुर्द होगा। उसको अपने किये का फल

मिलना ही उचित है। जेल न जायगा तो रौनक़लाल न जाने फिर कितने घरों को घालेगा।

"सच बात कहने से धमीराम विपत्ति में तो न फँसेगा ?"

"विपत्ति में तो फँसेगा ही, किन्तु हाकिम उसके सत्य-भाषण का ख़याल करके, उसका साधारण अपराध समझ, नाम-मात्र का दण्ड देकर छोड़ देगा।"

"वह सच बोलने को राज़ी होगा भी ?"

"आप उसके मालिक हैं। वह आपकी प्रजा है। अगर आप उसे बुलाकर स्वयं समझा देंगे तो वह झूठ क्यों बोलेगा। वह तो रौनक़लाल के द्वारा झूठ बोलने को विवश किया गया है। इसलिए हम लोगों को ऐसा यत्न करना चाहिए जिसमें हाकिम के नज़दीक वह झूठा इज़हार न दे।"

"अच्छा, मैं यत्न करूँगा। जिस दिन आप कहें—यहाँ से हम लोग कमलपुर जाकर—"

धर्मपालसिंह—नहीं, कमलपुर जाने से कुछ न होगा। मुक़दमा २२ तारीख़ को है। हम और आप दोनों जाकर महेन्द्र बाबू के यहाँ ठहरेंगे। तारीख़ के एक दिन पहले धनीराम को बुलाकर सब ठीक ठाक करना होगा। रात को उसे अपने पास रखकर दूसरे दिन अदालत में हाज़िर करना होगा। पेशी के बहुत पहले ठीक करने से, कितने ही लोग उसे कितने ही प्रकार की सलाह देंगे—भय दिखावेंगे। इससे काम बिगड़ जायगा।" आख़िर आज़मगढ़ जाने की ही राय ठीक हुई।

गोपीकान्त मन ही मन सोचने लगे, भाई के ऊपर इतने दिन वृथा ही सन्देह करते रहे। जो हो, मोती इस सन्देह की बात नहीं जान सका, यही कुशल है। बीमारी के समय मोतीलाल की अविश्रान्त सेवा-शुश्रूषा से उस पर गोपीकान्त प्रसन्न हो गये थे। अब इस अनुचित सन्देह की बात का स्मरण करके उनका स्वाभाविक भ्रातृस्नेह एकबारगी उछल पड़ा। अब मोती के साथ व्यवहार में भी वह भाव प्रकट होने लगा। मोतीलाल अपने भाई का बदला हुआ स्वभाव देखकर कुछ अचम्भे में आ गया। मनोरमा भी देवर पर स्वामी के इस भाव-परिवर्तन से मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई।

१९ तारीख को धर्मपालसिंह गोपी बाबू को साथ ले आज़मगढ़ गये।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

साँझ का समय है। महेन्द्र बाबू के एक कमरे में गोपीकान्त और धर्मपालसिंह बैठे हैं। एक आदमी धर्मशाला से धनीराम को बुला लाया।

अपने मालिक को यहाँ बैठा देख धनीराम ने भय से काँप कर उन्हें प्रणाम किया।

धर्मपालसिंह ने गम्भीर भाव से कहा—धनीराम, हम लोग सब जान चुके हैं। बर्तनों की चोरी होने की बात बिलकुल झूठ है।

धनीराम ने एक बार गोपी बाबू के मुँह की ओर और एक बार धर्मपालसिंह के मुँह की ओर चकित दृष्टि से देखकर कहा—हजूर को नहीं पहचाना!

गोपी बाबू ने कहा—ये ग़ाज़ीपुर ज़िले के एक बड़े ज़मींदार और मेरे मित्र हैं। तूने जिस हरिदास पर झूठा मुक़दमा दायर किया है वह पहले इन्हीं की रैयत था। ये उसको छुड़ाने के लिए आये हैं। तूने यह झूठा मुक़दमा क्यों दायर किया है?

धनीराम ने कुछ ठीक उत्तर न दे सकने पर हाथ जोड़कर कहा—झूठा कैसे सरकार!

गोपी बाबू ने क्रोध से कड़क कर कहा—हरामज़ादे, पाजी—

धर्मपालसिंह ने उन्हें रोक कर कहा—आप क्रोध न करें। मैं इसे समझाये देता हूँ। धनीराम, तू हम लोगों से कोई बात क्यों छिपाता है। हम तो सब जान ही चुके हैं। तूने गाँव के गुमाश्ता, रौनक़लाल, की सलाह से ही यह काम किया है। कँसेरे से गवाही दिलाने के लिए तू पहले ही से बर्तनों की मरम्मत करा लाया था। अपने घर में स्वयं सेंध लगाई थी। तू थाने में जाकर दारोग़ा को बर्तन दे आया था। और दारोग़ा का एक आदमी, रात को, हरिदास के टूटे घर में वे बर्तन पयाल के नीचे छिपा कर रख आया था। बोल, ये बातें झूठ हैं या सच?

बातें सुनकर धनीराम दङ्ग हो गया। गोपी बाबू के दोनों पैर पकड़ कर कहने लगा—हजूर मैं मूरख ग्वाला हूँ, मेरा कोई अपराध नहीं। जिलेदार रौनकलाल ही सब बखेड़े की जड़ है। जेल का डर दिखलाकर उसने मुझसे यह सब काम करवाया है। हजूर, मेरा कोई दोष नहीं। मैं हजूर का पैर छूकर कहता हूँ, मेरा कोई कसूर नहीं। मुझे माफ कीजिए।

गोपी बाबू—अगर तू कल अदालत में सब सच-सच कह दे तो तुझको माफ़ कर सकता हूँ।

धनीराम खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर बोला—अगर अब सच्ची बात कहूँगा तो मेरी क्या दशा होगी?

धर्मपालसिंह—अरे दुष्ट! क्या तुझे पाप-पुण्य का विचार नहीं है? बेचारा हरिदास बिलकुल निरपराध है। किसी का वह कभी बुरा नहीं चेतता। खेती करके अपने बाल-बच्चों को

पालता है। क़ैद होने पर उसे पत्थर तोड़ने पड़ेंगे, चक्की चलानी होगी, कोल्हू में जुतना पड़ेगा। इस दशा में वह कितने दिन जियेगा? अगर वह जेल में मर जायगा तो क्या तुझे हत्या न लगेगी? तू अपने बाल-बच्चों के साथ सुख से रहेगा और उसके बाल-बच्चे भूखों मरेंगे—क्या इसका पाप तुझे न लगेगा? क्या तू अमर है? क्या एक दिन तुझे दुनिया से राम राम न करनी पड़ेगी? तू इस पाप के फल से घोर रौरव नरक में जायगा। यमदूत तुझे भाँति भाँति की यन्त्रणा देंगे।

धनीराम कुछ देर तक नीचा सिर किये खड़ा रहा। फिर सिर उठाकर बोला—हजूर, जो होने को था वह तो हो ही गया। अब क्या करने की आज्ञा होती है?

धर्मपालसिंह—कल अदालत में सब सच सच कह देना।

"बाबू, साँच में आँच क्या है—परन्तु दारोगा ने कहा है, ऐसा करोगे तो तुम्हीं बाँधे जाओगे।"

धर्मपालसिंह—यह हो सकता है।

"तो मैं सच कैसे कहूँगा? जान बूझ कर आप ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी कैसे चलाऊँगा?"

गोपीकान्त बोल उठे—चुप रह पाजी! अपने जेल जाने का इतना डर, और एक निरपराध को जेल भेजना चाहता है! झूठा इजहार देगा तो मैं तुझे बरबाद कर दूँगा। अपने इलाक़े से निकाल दूँगा।

धर्मपालसिंह ने कहा—ठहरिए, ठहरिए। क्रोध मत कीजिए।

अगर यह झूठी गवाही देगा ही तो क्या बच जायगा? सुनो धनीराम, जो मैं कहता हूँ उसे अच्छी तरह विचार कर देखो। धोखा देकर हम लोग तुझे फँसाना नहीं चाहते। अगर यही हमारा उद्देश्य होता तो कह देते—'नहीं, तुझको जेल क्यों होगा—तुझे कुछ न होगा।' परन्तु यह तो हम कहते नहीं। सच बात कह देने से, झूठी नालिश करने के अपराध में, तुझे बहुत कम सज़ा मिलेगी। यदि झूठी गवाही देगा तो क्या तू इससे बच जायगा? आज़मगढ़ के जितने बड़े बड़े वकील हैं, सबको हमने हरिदास की तरफ़ कर दिया है। वे लोग जब तुझसे जिरह करने लगेंगे तब तू अपने बाप तक का नाम भूल जायगा, समझ रख। जिरह में तेरे चिथड़े चिथड़े उड़ जायँगे, तेरी झूठी बात कब तक टिकेगी? वकील लोग गवाहों के पेट में पैठ कर सच्ची बात बाहर कर लेते हैं। बड़े बड़े विद्वान् और चालाक लोग भी जिरह के चक्कर में पड़कर घबरा जाते हैं, तू तो मूर्ख गँवार ग्वाला है। फल यही होगा—मुक़दमा झूठा प्रमाणित हो जायगा। हरिदास रिहाई पावेगा, उलटे तुम्हीं पर झूठी नालिश करने और झूठा इज़हार देने का मुक़दमा चलेगा। तेरे पास कितने रुपये हैं? उस समय तू वकील-मुख़तारों को क्या देगा? देकर भी नहीं बच सकेगा।

धनीराम ने सोच कर देखा, बाबू का कहना बेजा नहीं है। अगर मुझ पर मुकदमा चले तो एक वकील की फीस देने ही में मेरे हल-बैल बिक जायँगे।

धनीराम बहुत डर कर बोला—तो मुझे कितने दिन के लिए जेल होगा ?

धर्मपालसिंह—तुम्हारा मुक़दमा झूठा साबित हो जाने पर, झूठी नालिश करने के लिए, कम से कम एक वर्ष और झूठी गवाही देने के लिए एक वर्ष कुल दो वर्ष के लिए जेल होगा।

"अगर मैं सच बात कह दूँ तो ?"

"अगर सच कहेगा तो हाकिम ज़रूर ही रहम करेगा। जब हाकिम सब बातें सुनेगा तब वह समझेगा—तूने अपराध किया है सही, किन्तु दूसरे के दबाव में पड़ कर। इसलिए महीने दो महीने या बहुत हुआ तो तीन महीने के लिए जेल होगा। इससे ज़्यादा नहीं।"

"अगर मुझे तीन महीने कैद की सजा हुई तो इतने दिनों तक मेरे बाल-बच्चे क्या खायँगे ?"

गोपी बाबू—सुन धनीराम, अगर सब बात सच सच कहने से तुझको जेल होगा तो जितने दिन तू क़ैदख़ाने में रहेगा उतने दिन तक मैं तेरे बाल-बच्चों के खाने पीने के लिए २५ रुपया माहवार दिया करूँगा। और तेरी खेती बाड़ी का सब इन्तज़ाम भी कर दूँगा। इसके अलावा इस साल का हाल बक़ाया सब लगान माफ़ कर दूँगा। अगर इजलास पर झूठ बोलेगा तो मेरे इलाक़े में नहीं रह सकेगा।

धनीराम कुछ देर तक चुप खड़ा रहा, फिर बोला—जब मुझ पर मुकदमा चलेगा तब मैं वकील को फीस कहाँ से दूँगा!

"अच्छा वह भी हमीं दे देंगे। अब कहो, सच सच बोलोगे या नहीं?"

"हजूर का हुक्म मैंने कभी टाला है? जो आज्ञा होगी वही करूँगा। आप ही मेरे मा-बाप हैं। मैं अदालत में सब बातें सच सच कहूँगा। किन्तु दास की एक प्रार्थना है।"

"क्या?"

"मेरे कैद होने पर हजूर ने जो २५) रु० मासिक मेरे बाल-बच्चों के खाने-पीने के लिए देने की आज्ञा की है वह रुपया जेल से आने पर मुझे ही दिया जाय। घर में जो धान-चावल है उससे किसी तरह बाल-बच्चों की गुजर हो ही जायगी। रुपया अगर मेरी घरवाली के पास पहुँच जायगा तो वह तुरन्त सुनार को बुलाकर गहना गढ़ाने को दे देगी। मुझे कौड़ी भी न मिलेगी। इससे बेहतर होगा कि कैद से छूट आने पर मैं हजूर से रुपया लेकर एक जोड़ी बैल खरीदूँगा। मेरी स्त्री बड़ी बदजात है, उसके हाथ में रुपया न दीजिएगा।"

यह सुनकर धर्मपाल बाबू के होंठों पर हँसी आगई। गोपीकान्त ने कहा—अच्छा यही होगा।

धनीराम रात को वहीं रहा।

दूसरे दिन अदालत में हाजिर होकर धनीराम ने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त सच सच कह दिया। पुलिस की तरफ़

से कोर्ट इंस्पेक्टर जिरह करने उठे। गत रात्रि में उसे गोपी बाबू ने बुला भेजा था, तथा गोपीकान्त और धर्मपालसिंह के साथ उसकी जो बातचीत हुई थी, उसको जिरह में धनीराम ने स्वीकार कर लिया। इससे उसकी बात पर हाकिम को दृढ़ विश्वास होगया।

हाकिम ने हरिदास के वकील से पूछा—यह रौनक़लाल, अभियुक्त को फँसाने के लिए, इतनी चेष्टा क्यों कर रहा है?

तब वकील ने धर्मपालसिंह के मुँह से जो सुना था, सब कह दिया।

हाकिम ने अब दारोग़ा का इज़हार लिया। उसके बयान से ज़ाहिर हुआ कि जिस घर में पयाल के नीचे से बर्तन निकले थे उस घर की एक दीवार टूटी हुई है—बाहर से आदमी सहज ही उस राह से भीतर घुस सकता है।

और किसी की गवाही बिना लिये ही डिप्टी ने हरिदास को उसी घड़ी छोड़ दिया। वकील से कहा—धर्मपाल बाबू कहाँ हैं? उनकी गवाही लेकर धनीराम और रौनक़लाल के ऊपर २११ दफ़ा के अनुसार मुक़दमा चलाया जाय।

बाबू धर्मपालसिंह खड़े हुए। उन्होंने हलफ़ लेकर रौनक़-लाल और हरिदास के सम्बन्ध की सारी घटना वर्णन की। तब हाकिम ने दोनों के विरुद्ध कार्रवाई करके धनीराम को हाजत में रक्खा और रौनक़लाल के नाम गिरफ़्तारी का हुक्म जारी किया।

कचहरी से बाहर आकर हरिदास ने धर्मपालसिंह और गोपीकान्त बाबू के पैरों की धूल सिर में लगा कर कहा—आप ही की कृपा से आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है। आप न होते तो आज मेरी क्या दुर्दशा न हो जाती।

सब लोग कहने लगे—देखो, कलिकाल में भी धर्म ही की जय हुई।

बड़ी ख़ुशी से दोनों व्यक्ति बातचीत करते करते महेन्द्र-सिंह के घर की ओर चले। हरिदास भी उनके पीछे पीछे चला। गोपी बाबू धर्मपालसिंह को साथ ले उसी रात कमल-पुर को रवाना हुए। वहाँ एक दिन रह कर दोनों फिर प्रयाग जायँगे।

किन्तु कमलपुर पहुँच कर प्रयाग की व्यवस्था बदल गई। गोपी बाबू के पास प्रयाग से एक चिट्ठी आई है। मनोरमा ने लिखी है। पत्र यह है—

प्राणनाथ,

प्रणाम। आज सबेरे छोटे बाबू को आपका पत्र मिला। आप कुशल-पूर्वक आज़मगढ़ पहुँच गये, यह सुनकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

आज आपको एक शुभ संवाद सुनाती हूँ। कहिए, इसके लिए मुझे क्या इनाम मिलेगा? आपके भाई को मैंने ब्याह कराने के लिए राज़ी किया है। जिस दिन आप गये

उस दिन रामेश्वर बाबू के घर की स्त्रियाँ मुझसे मिलने आई थीं, यह आप देख ही गये हैं। कल मैं और धर्मपाल बाबू की दुलहिन उनके घर गई थीं। रामेश्वर बाबू की ब्याहने योग्य एक सुन्दरी लड़की है। उनकी स्त्री ने बड़े आग्रह से विनती करके मुझसे कहा—इस लड़की का ब्याह तुम अपने देवर से करा दो। मैंने कहा—जो ऐसा होता तो बड़ा अच्छा होता, किन्तु मेरे देवर ब्याह नहीं करना चाहते, यही अड़चन है। रामेश्वर बाबू की गृहिणी के बहुत ज़िद करने पर मैं वादा कर आई कि उन्हें फिर समझाने-बुझाने की कोशिश करूँगी। साँझ को छोटे बाबू से इसकी चर्चा चलाई। अनेक तर्क-वितर्क, अनुनय-विनय के पश्चात् छोटे बाबू ने कहा—"अगर तुम सब मेरा ब्याह करना ही चाहती हो तो यहाँ नहीं, मैं एक दूसरी जगह ब्याह कर सकता हूँ।" मैंने पूछा—"कहाँ? उस जगह का नाम भी तो सुनूँ?" छोटे बाबू ने कहा—"आज़मगढ़ के नज़दीक मदनपुर गाँव है। बलदेव बाबू वहाँ के ज़मींदार हैं। वे पहले डिपटी मैजिस्ट्रेट थे। अब पेंशन लेकर अपनी ज़मींदारी का काम देखते हैं। उनके एक लड़की है। नाम है कनकलता। लोग उसे सुधा कहते हैं। उस लड़की के साथ मैं ब्याह कर सकता हूँ।" मैंने कहा—"लड़कीवाले की राय हो तब तो।" छोटे बाबू ने कहा—दिवाली के बाद दो सप्ताह तक मैं उनके घर पर ठहरा था। सुधा का भाई नारायणप्रसाद मेरा सहपाठी और हार्दिक मित्र है। उस समय सुधा की माँ ने

मेरे साथ सुधा के विवाह का प्रस्ताव भी किया था, किन्तु मैं राज़ी न हुआ।

लड़की बड़ी सुन्दरी और सुशीला है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि यहाँ लौटने के पहले ही आप मदनपुर जाकर लड़की को देख लें और ब्याह की बात पक्की कर आवें। हो सके तो धर्मपाल बाबू को भी साथ लेते जाइए। ब्याह का मुहूर्त्त समीप ही स्थिर कर लीजिएगा। क्योंकि विलम्ब होने से छोटे बाबू का मत फिर बदल जाय तो बड़ी मुश्किल होगी।

हम सब कुशल-पूर्वक हैं। धर्मपाल बाबू की स्त्री और बाल-बच्चे भी अच्छी तरह हैं। आप यहाँ कब तक लौटेंगे? लिखिएगा। लड़की को देख आने में विलम्ब न होना ही अच्छा है। माघ महीने में यदि ब्याह का मुहूर्त्त अच्छा हो तो स्थिर कर आइएगा।

सेविका—मनोरमा।

पत्र पढ़ कर गोपीकान्त का चेहरा ख़ुशी से खिल उठा। वे आनन्द से उच्छ्वसित स्वर में बोले—महाशय, आज तो हम लोगों का जाना रुक गया।

"क्यों?"

"यह देखो"—कहकर गोपीकान्त ने मनोरमा की चिट्ठी धर्मपाल बाबू के हाथ में दे दी।

चिट्ठी पढ़कर धर्मपालसिंह ने प्रसन्न हो कर कहा—अच्छा

तो मैं भी आपके साथ चलूँगा। कल सबेरे ही हम लोग यहाँ से रवाना हो जायँ।

घोड़ा-गाड़ी ठीक करने के लिए उसी समय सिपाही दौड़ा दिया गया। दूसरे दिन यथा-समय दोनों मदनपुर पहुँच गये। बलदेव बाबू ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। कन्या को देखकर गोपीकान्त बड़े प्रसन्न हुए। ब्याह का दिन माघ सुदी ९ स्थिर हुआ।

बावनवाँ परिच्छेद

ज्यों ही धनीराम के गवाह देवीपुर पहुँचे त्यों ही सब बात ज़ाहिर हो गई। रौनक़लाल के पास भी यह ख़बर पहुँची। सुनते ही उसके होश उड़ गये। कलेजा धड़कने लगा। झट अपना रुपया-पैसा लेकर वह घोड़े पर सवार हो थाने की ओर लपका।

आधे रास्ते में जाकर रौनक़ ने सोचा—मैं यह क्या कर रहा हूँ। वारंट तो दारोग़ा ही के पास आवेगा। इतनी देर में आ भी गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। थाने में पहुँचते ही दारोग़ा मुझे गिरफ़्तार कर लेगा। २११ दफ़ा के मुक़दमे में ज़मानत भी नहीं है। मुझे बाँध कर कल आज़मगढ़ में मैजिस्ट्रेट के पास भेज देगा। अगर मैजिस्ट्रेट वहाँ ज़मानत पर छोड़ देने का हुक्म भी देगा तो मेरा ज़ामिन कौन होगा? मैं ख़ुद आज़मगढ़ जाकर वकील से ज़मानत की दरख़्वास्त लिखा कर अदालत में हाज़िर हो जाऊँ तो अच्छा है। अगर कोई ज़ामिन होना क़बूल न करेगा तो ज़मानत का नक़द रुपया जमा कर दूँगा। अगर ज़मानत का रुपया बहुत माँगा जाय तो? पाँच सौ या हज़ार? इतना रुपया तो साथ नहीं है। जाता हूँ कमलपुर। वहाँ घर में जो रुपया गाड़ कर रख आया हूँ वह भी साथ लेता जाऊँ।

इस तरह सोच विचार कर रौनक़लाल ने घोड़े को लौटाकर कमलपुर की ओर चलाया। घोड़े को अपने मन से धीरे धीरे चलने दिया, क्योंकि पहर रात के पूर्व कमलपुर में प्रवेश करना उसे स्वीकृत न था।

कुछ दूर जाकर उसने फिर सोचा, अगर पुलिस वारंट लेकर मुझे गिरफ़्तार करने के लिए देवीपुर जाय और मुझे वहाँ न पाकर कमलपुर आवे तो? तब तो घर से बाहर होते ही मैं रुपये-पैसे समेत पकड़ा जाऊँगा। इससे बेहतर होगा कि कुछ अँधेरा होते ही मैं कमलपुर पहुँचूँ और रुपया-पैसा लेकर रातों रात वहाँ से निकल भागूँ।—इसलिए उसने घोड़े को फिर दौड़ाया।

रात के आठ बजे हैं। सोने के कमरे के ईशान कोण में रौनक़लाल का जो अन्याय से उपार्जित द्रव्य गड़ा हुआ था उसे वह खोदकर निकालने लगा। दरवाज़े में भीतर से साँकल लगी हुई थी। बाहर से कोई किवाड़ खटखटाने लगा।

रौनक़ ने पूछा—कौन है?

"किवाड़ खोलो।" रौनक़ ने बसन्ती का कण्ठस्वर पहचान लिया। झटपट बिछौने से उस खोदी हुई जगह को ढक कर द्वार के पास गया। कहने लगा—बसन्ती, अभी जाओ।

"क्यों जाऊँ?"

"आज मेरी तबीअत अच्छी नहीं है। कल आना।"

बसन्ती स्वर बिगाड़ कर बोली—हाँ हाँ, बातें बनाना खूब जानते हो ! कल आना ! भले आदमी की तरह किवाड़ खोलो, नहीं तो मैं अभी शोर-गुल मचाऊँगी—लोगों को पुकारूँगी। मुझे तुम्हारी सब करतूत मालूम हो गई। जल्द किवाड़ खोलो।

रौनक़ ने देखा कि नहीं खोलता हूँ तो बसन्ती अभी बखेड़ा खड़ा करेगी। इसलिए हाथ में लालटेन ले किवाड़ खोलकर बाहर निकलना चाहा किन्तु बसन्ती उसे ठेल कर भीतर ले गई। बिछौने के पास जाकर बोली—यह क्या है ?

"है क्या, बिछौना है।"

"क्या खोद रहे थे ?"

"खोदूँगा क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं खोदते थे ! जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं। मैं किवाड़ के छेद से सब देख रही थी।"—कहकर बसन्ती ने ज़ोर से बिछौने को खींच कर अलग फेंक दिया। भीतर से एक मिट्टी का बर्तन निकला जिसका मुँह ढकने से बन्द था। "रौनक़, यह क्या है ! यह क्या है" कहते कहते बसन्ती ने हाँड़ी के मुँह का ढक्कन हटा डाला। रुपयों और नोटों से हाँड़ी भरी हुई थी।

बसन्ती ने खड़ी होकर कहा—मेरा ढाई सौ रुपया गिन कर दे दो। तुम्हारे मन्त्र से कुछ बढ़ा हो तो वह भी दे दो।

"तुम्हारा रुपया तो बक्स में है।"

"होगा, इससे क्या। वह रुपया तुम्हीं ले लेना। मुझे इसी में से दे दो।"

तब रौनक़ ने गिड़गिड़ाकर स्निग्ध स्वर में कहा—यह रुपया कैसे दे दूँ ?—यह तो सरकारी रुपया है। यह रुपया अभी ले जाकर ख़ज़ाञ्ची के पास जमा करना है। तुम्हारा वह बक्स तो देवीपुर में है। अगर कहो तो कल मँगवा दूँ। अपना रुपया ले लेना।

बसन्ती—चलो रहने दो यह चालाकी। कल ये मुझको रुपया मँगा देंगे, जैसे मुझे मालूम ही न हो कि तुम्हारे नाम से वारंट जारी हुआ है। तुम रुपया-पैसा लेकर भागने के लिए आये हो। बाबू लोग आपस में बातचीत कर रहे थे कि वारंट का नाम सुनकर रौनक़ कहीं फ़रार न हो जाय ! मैंने यह बात किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर सुन ली थी। तब मेरे मन में चेत हुआ कि अरे दादा, उसके भागने के पहले ही अपना रुपया-पैसा उससे ले आना चाहिए। मैं तुम्हारे आने के इन्तज़ार में यहीं छिपी बैठी थी। जब तुमने अन्दर जाकर भीतर से सदर-दरवाज़ा बन्द कर दिया तभी मैं यहाँ फ़ौरन पहुँच गई और लोहे की काँटी से धीरे धीरे साँकल खोलकर दबे पैरों आँगन में आई। किवाड़ के छेद से झाँक कर देखा तो तुम अपने शयन-गृह का द्वार बन्द कर खुरपी से मिट्टी खोद रहे हो; तब मेरे कान खड़े हुए। "अब जहन्नुम में जहाँ जाना हो, जाओ। मेरा ढाई सौ रुपया दिये जाओ। अभी दो—नहीं तो मैं अभी

दौड़ो दौड़ो, ख़ून किया रे, मार डाला रे" कह कर इतने ज़ोर से चिल्लाऊँगी कि महल्ले भर के लोग दौड़ आवेंगे, नहीं तो चुपचाप रुपया गिन दो।

रौनक़ ने देखा, रुपया देने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। इस पाप को झटपट बिदा न करें तो भागने में भी विलम्ब होगा। इसलिए रौनक़ रुपया गिन गिन कर बसन्ती के आँचल में देने लगा।

बसन्ती—नोट के बदले में नोट ही लूँगी।

रौनक़ ने अनुनय के स्वर में कहा—कुल रुपये ही ले लो। नोट लेकर भागने में मुझे सुभीता होगा। रुपये का भारी बोझ मैं कहाँ लिये फिरूँगा!

"अच्छा, रुपया ही दो।"

रौनक़ ने बसन्ती को २४०) रु० देकर कहा—यह लो, ढाई सौ हो गया। अब इसे लेकर चुपचाप चली जाओ। अगर अभी पुलिस आ जाय तो मुझे भी पकड़ेगी और तुझे भी।

"अच्छा, मैं जाती हूँ परन्तु तुम ख़ूब सावधानी से भागना जिसमें पकड़े न जाओ।" कह कर बसन्ती चली गई।

रौनक़ ने सोचा—अब क्या करना चाहिए। आज़मगढ़ जाकर हाज़िर हो जाऊँ या भाग जाऊँ? पकड़े जाने पर दो वर्ष से कम तो क़ैद की सज़ा न होगी। इस उम्र में क्या फिर चक्की पीसनी होगी। अभी हज़ार रुपये मेरे हाथ में

हैं। यह रक़म लेकर गया जी, काशी, मथुरा, वृन्दावन या और ही किसी तीर्थ में जा रहूँगा और नाम बदलकर कोई दूकान खोल दूँगा। यही अच्छा होगा। बुढ़ापे में अब क़ैदख़ाने के पत्थर नहीं तोड़ सकूँगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह बात मुझे पहले नहीं सूझी थी। भाग्य से बसन्ती ने कहा। मैं इतने लोगों को सलाह देता हूँ किन्तु अपनी बेर बुद्धि छूमन्तर हो गई थी। बसन्ती बड़े मौक़े पर आई। बसन्ती, मैं तुम्हारा यह गुण कभी न भूलूँगा।

रुपये-पैसे को अच्छी तरह कमर में बाँध कर रौनक़ ने घोड़े को वहीं बँधा छोड़ दिया और आप अँधेरे में ग़ायब हो गया। पुलिस ने अब तक उसका पता नहीं पाया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

यथासमय धनीराम का मुक़दमा पेश हुआ। सब बातों की भली भाँति विवेचना करके दयालु हाकिम ने उसे छः सप्ताह क़ैद की आज्ञा दी।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

माघ महीने में, शुभ मुहूर्त में, कनकलता के साथ मोतीलाल का ब्याह होगया। इस विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में बलदेव बाबू के घर अनेक सम्बन्धियों और मित्रों का समागम हुआ था। कौतुकागार (कोहबर) में सुहागिन युवतियों ने आधी रात तक मङ्गलगीत गाकर मोतीलाल का मनोरञ्जन किया।

फिर सुधा की एक सहचरी उठकर ग्रामोफ़ोन ले आई। जिन रेकार्डों में सुधा के गाये हुए गीत भरे थे उन्हें क्रमशः ग्रामोफ़ोन के द्वारा गवा कर सबको सुना दिया। प्रत्येक गीत के अन्त में "मेरा नाम सुधा" यह सुनकर सुधा मारे लज्जा के सिमट जाती थी। सुधा का मधुर गान सुन कर सभी लोग आनन्दस्रोत में डुबकियाँ लेने लगे। रमणियों के इस विनोद-भरे कौतुक से मोतीलाल के मन में जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं हो सकता।
